

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180159

UNIVERSAL
LIBRARY

UP--786--13-6-75--10,000.

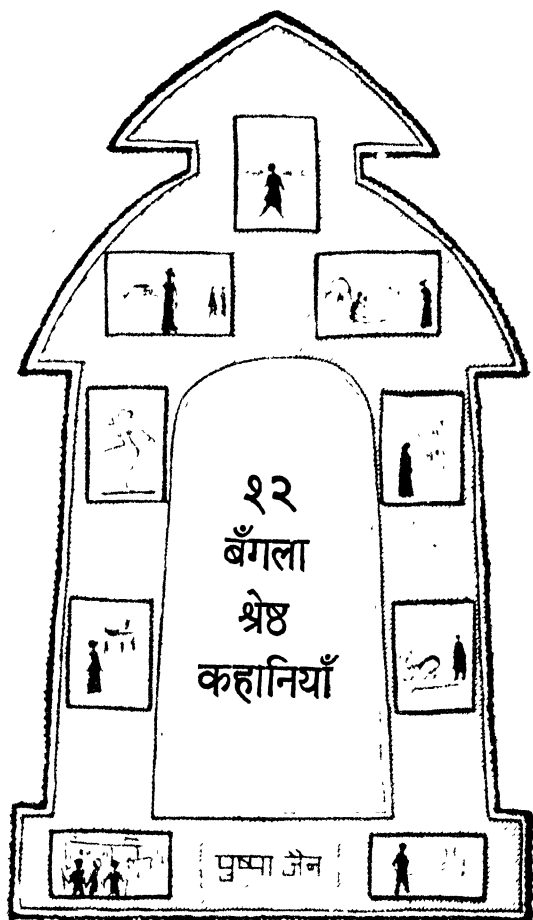
OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Ill No. *H 83.1/525 B* Accession No. *G. H. 3428*

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.



७७
बंगाली
श्रेष्ठ
कहानियाँ

पुष्पा जैन

लोकभारती प्रकाशन

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण	दिसम्बर १९६२
प्रकाशक	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
मूल्य	सात रुपए पचास पैसे
रूप सज्जा	सोना घोषाल
मुद्रक	महावीर जैन लोकभारती मुद्रणालय, इलाहाबाद

अनुक्रम

एक कापुरुष की कहानी	१
पक्का मकान	१५
नूरबानू	३३
पादटीका	४५
आइन्सटाइन और इन्दुवाला	५७
पलायिका	७५
दुर्घटना	९३
स्ट्राइक के बाद	१०६
प्रतिदिन का खदन	१२६
किमलिस	१४१
मानशुल्का	१६५
फरारी	१८५

भूमिका

श्रीमती पुष्पा जैन द्वारा अनूदित और संकलित १२ बँगला श्रेष्ठ कहानियाँ मैं पढ़ गया। कोई भी संकलन सदा संकलनकर्ता की रुचि का ही विम्ब प्रस्तुत करता है। और यह जान कर संतोष हुआ कि पुष्पा जी की रुचि यथेष्ट परिष्कृत है और व्यक्तिगत ही नहीं समष्टिगत भी है। यह पुस्तक मुझे ऐसी वाटिका सी लगी जिसमें रंगारंग के फूल खिले हैं—एक ओर डेलिया, गेंदिस और कॉस-मॉस के फूल सर उठाये खड़े हैं तो दूसरी ओर बरबीना, फ्लागज़ और पेटूनिया हैं, और तीसरी ओर पेंज़ी और डेज़ी—ऊँचे, नाटे और नन्हें पौदे; खुले खिले, और मद्धिम रंग—मुझे साल्विया अच्छा नहीं लगता पर मेरे एक मित्र उस पर फ़िदा हैं, मैं मधु-मालती पर जान देता हूँ, पर मेरी अंग्रेज़ पड़ोसिन को उसकी अपेक्षा बिगिन-बेलिया पसंद है। हो सकता है बँगला कहानियों की इस वाटिका के फूलों में कोई फूल किसी विशेष पाठक की रुचि का न हो, पर सभी पाठकों को इस फुलवारी में काफ़ी फूल अपनी रुचि के मिल जायेंगे इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

जहाँ तक कथाकारों का सम्बन्ध है, इसमें बंगला साहित्य के सिद्धहस्त, ख्यात, पुराने कथाकारों के साथ-साथ एकदम नये किन्तु सशक्त कहानी-लेखकों का भी प्रतिनिधित्व है। धाराओं की बात कइँ तो आदर्शवादी, प्रगतिशील यथार्थवादी, यहाँ तक की अस्तित्ववादी धारा का भी समावेश है। संकलन चूँकि एक महिला ने किया है, इसलिए संप्रह की कहानियों में से अधिकांश नारी-जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ मनोवैज्ञानिक तथा मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। 'एक कापुरुष की कहानी' में—अपने प्रिय के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाली की दिलेरी; 'पलायिका' में पति के अत्याचार का बदला मरकर

लेने वाली की विवशता भरी मूर्खता; 'पक्का मकान' में अपनी नाक से आगे न देखने वाली औरतों की संकुचितता; 'दुर्घटना' में अपनी असुन्दरता का प्रति-शोध सुन्दर सुखी जोड़ों से लेने वाली की कुशठा; 'नूरबानू' में मर्द के बनाये कानून का शिकार, हर हालत में पति को प्रसन्न करने वाली की ट्रेजिडी; 'प्रतिदिन का रुदन' में अनचाहे संग को निबाहने के लिए मजबूर पत्नी की बेबसी; 'स्ट्राइक के बाद' में नृशंस अधिकारियों की वासना की शिकार काम-गार लड़कियों की दयनीयता; 'मान शुल्का' में एक भोली संधाल युवती का मनोविज्ञान, जो प्यार से माँगने पर सब कुछ देने को तत्पर है, पर जबरदस्ती पास भी फटकने नहीं देना चाहती और 'फरारी' में एक कायर हत्यारे की पत्नी के मनोविज्ञान का सफल चित्रण है। कहीं-कहीं ये कहानियाँ इतने सूक्ष्म संकेत देती हैं कि अनायास दाद देने को जी चाहता है। 'किमलिस' के अन्त में झुनिया, जो 'स्नो-क्रीम' को हाथ तक लगाने को तैयार न थी, जब उसे मुँह पर पोत लेती है तो अनायास आँखें भर आती हैं। इनके अतिरिक्त 'पाद टीका', 'आइन्स्टाइन और इन्दुबाला' आदि हास्य-व्यंग्य की कहाँनिया हैं, जो मनोरंजन ही नहीं करती, पाठक को सोचने पर भी विवश कर देती हैं।

पुष्पा जी ने बड़े श्रम से मूल बंगला से अनुवाद किया है। उन्होंने कुछ बंगला शब्दों को उसी रूप में रहने दिया है, जो निश्चय ही अभिव्यक्ति को सीधी, सरल और सुगम बनाते हैं। आशा है पुष्पा जी अपना यह प्रयास जारी रखेंगी और हिन्दी पाठकों को बंगला की उत्तमोत्तम कृतियों से परिचित कराने के साथ-साथ हिन्दी के शब्द-भण्डार को बढ़ाने में भी योग देती रहेंगी।

—उपेन्द्रनाथ श्रश्क

५, खुसरो बाग रोड

इलाहाबाद

२२ नवम्बर १९६२

दो शब्द

लघुकथाओं की जन्मभूमि भारतवर्ष है। 'जातक' के माध्यम से जन्म लेकर जिन लघुकथाओं ने पंचतन्त्र व कथा-सरित-सागर के आँगन को शैशव की किल-कारियों से गुंजरित किया था, आज वे अपने पूर्ण यौवन पर हैं। भारत की हर प्रान्तीय भाषा में लिखित आधुनिक कहानियाँ उस यौवन की परिचायक हैं। चूँकि यह संकलन बँगला कहानियों का है, इसलिये बँगला साहित्य व कहानी के विषय में यहाँ कुछ कहना उचित समझती हूँ।

गत शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ने से बँगला साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ। उसी शताब्दी के मध्य में बँगला साहित्य पर एक और प्रभाव दिखा। वह है फ्रांसीसी साहित्य का प्रभाव। इन दोनों साहित्यों के प्रभावों के साथ-साथ बँगला साहित्य की उपकथा या रूपकथा वाला अध्याय समाप्त हुआ और गल्प रचना का माध्यम सामाजिक मनुष्य को बनाया गया। कथा साहित्य में समाज की ही छवि चित्रित हुई, लेकिन विच्छिन्न रूप से। उदाहरण स्वरूप भवानीचरण व प्यारी चाँद की रचनाओं का नाम लिया जा सकता है।

इसके बाद बँगला-साहित्य-जगत में आये बंकिम चन्द्र। उन्होंने अपने साहित्य का सृजन किया बंगाल के साधारण मनुष्यों के सुख-दुख को लेकर। अंत में आविर्भाव हुआ रवीन्द्रनाथ का। उनके हाथों में कथा साहित्य ने एक नया ही रूप लिया। उन्होंने अपनी कहानियाँ लिखीं पद्मानदी के किनारे के शस्य-श्यामल ग्राम अधिवासियों को केन्द्र बनाकर, उनके सुख दुख अभावादि को लेकर। बंगाल के मध्यमवर्गी समाज का आन्तरिक रूप हमें शरतचन्द्र की रचनाओं में दिखाई देता है।

कथावस्तु के निर्वाचन में रवीन्द्रनाथ ने व्यापकता का जो पथ दिखाया था, इसी पथ को पकड़ कर, बँगला कहानीकार अग्रसर हुए हैं।

गत पन्द्रह सालों में बँगला कहानियों ने विशेषकर छोटी कहानियों ने नित नई-नई परीक्षाओं से गुजरकर नये-नये रूप लिये हैं। प्रथम महायुद्ध के अन्त में बंगाली लेखकों की विचारधारा का जो नया रूप दिखाई दिया था, उसकी प्रतिच्छवि आज भी हम उस युग की कहानियों में देख सकते हैं। ऐसा लगता है इस समय पहली बार बँगला कथा साहित्य को सहज सरल यात्रा पथ से खींचकर वास्तविक जीवन के कठिन व टेढ़े मेढ़े रास्ते पर लाया गया था। पहले जिन विषय-वस्तुओं को भूल कर भी कोई नहीं छूता था, उन्हीं को प्रधान कथानक के रूप में ग्रहण करते हुए उस काल के लेखकों को पाया गया। लेकिन इससे बँगला कथा

साहित्य समृद्ध ही हुआ। सामाजिक जीवन व मनुष्य के बारे में लोगों की जो धारणाएँ थीं, उनमें द्वितीय महायुद्ध व परवर्ती काल के लेखकों को जो संशोधन करना पड़ा; उससे बँगला कथा साहित्य में जीवन की समस्याएँ तथा उसका रूप कहीं अधिक उभर कर सामने आया।

रवीन्द्रनाथ व शरतचन्द्र की प्रतिभा से बँगला कहानियों की रचनारीति की जो परम्परा शुरू हुई थी इस शताब्दी के मध्य में नाना सृजनकारों की प्रवेष्टा से क्रमशः एक-एक सीढ़ी चढ़कर वह आज जिस मंजिल पर पहुँची है उसी की एक भाँकी दिखाना इस संकलन का उद्देश्य है।

इस संकलन में आधुनिक लेखकों की एक-एक कहानी को स्थान मिला है, हालाँकि अनेक कारणों से आधुनिक बँगला कथाकारों में सब की कहानियाँ लेना संभव नहीं हो सका।

संकलन की कहानियों को 'श्रेष्ठ कहानियाँ' कहा गया है; यह कहना भी तर्क का विषय है। किस लेखक की कौनसी कहानी श्रेष्ठ है; यह हलफ़ उठाकर कहना बहुत ही मुश्किल है। साहित्य संकलन में यह विपत्ति हमेशा ही दिखाई देती है। साहित्य की आलोचना के लिये कोई एक मापदंड पूर्णरूप से सर्वजनग्राही हो, यह कभी संभव नहीं होता। उस विषय में श्रेष्ठत्व का कोई निरपेक्ष ढंग ढूँढ़े बिना मोटे रूप में हम दो चीजों को लेकर सन्तुष्ट हो सकते हैं—पहली यह कि जो कहानियाँ ली गई हैं, वे इस युग की सार्थक कहानियाँ हैं कि नहीं और दूसरी यह कि प्रत्येक कहानी लेखक की प्रतिनिधि कहानी है कि नहीं अर्थात् आज के युग की कई प्रवृत्तियों का समावेश होते हुए भी वह लेखक की अपनी विचारधारा की द्योतक है कि नहीं।

मेरे विचार से इस संकलन में संकलित कहानियाँ दोनों ही रूपों में पाठकों को पसन्द आयेंगी। ये कहानियाँ विषयवस्तु की एकरूपता या दृष्टिकोण के ऐक्य की तरफ नजर रखते हुए संग्रहीत नहीं की गई हैं। विषयवस्तु के वैचित्र्य एवं दृष्टिकोण की भिन्नता होने के कारण ये कहानियाँ बँगला के सृष्टिमूलक साहित्य का समग्र परिचय देने में सफल हों, इसकी ओर विशेष रूप से लक्ष्य रखा गया है। अपने उद्देश्य में मैं कहाँ तक सफल हुई हूँ, यह पाठक ही तय करेंगे।

अंत में इस कहानी संग्रह के संकलन में, अनुवाद में, संशोधन में, प्रकाशन में, जिन लोगों ने सहायता की है, उनका प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ। लेखकों की सहृदयता एवं सहयोगिता के लिये भी मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

पुष्पा जैन

एक कापुरुष की कहानी
प्रेमेन्द्र मित्र

रवीन्द्रनाथ के बाद का
 बंगला साहित्य
 जिनके द्वारा
 समृद्ध
 हुआ है, प्रेमेन्द्र
 मित्र का उनमें प्रमुख
 स्थान है। वर्णना व व्यंजना
 में आपके जितनी समानता का
 परिचय उस युग का और कोई लेखक नहीं दे
 पाया है। आप केवल कथाकार ही नहीं हैं, कवि
 और प्रबंधकार भी हैं और यही कारण है कि कथा-साहित्य
 व निबन्ध-साहित्य में भी आपके कविमन के दर्शन होते हैं। आपकी
 रचनाओं में कदम-कदम पर मानव के प्रति अन्तहीन सहानुभूति का आभास
 मिलता है। चलचित्र-जगत में आपका विशिष्ट स्थान है। आप
 एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक हैं। साहित्य-साधना के फल
 स्वरूप आप शारद स्मृति पुरस्कार, रवीन्द्र स्मृति
 पुरस्कार व अकेडमी पुरस्कार प्राप्त कर
 चुके हैं। हाल ही में आप पद्म श्री
 की उपाधि से भी विभूषित
 हुए हैं। पंचशर,
 जलपायरा,
 प्रथमा,
 चील बेनामी
 बन्दर, पुतुल ओ प्रतिमा
 आपकी अन्यतम रचनाएँ हैं।



एक कापुरुष की कहानी

प्रेमेन्द्र मित्र

सुबह की चाय कढ़ाया स्वयं लेकर आयी। चाय के साथ नाश्ते का परिमाण देखकर हँसे बिना नहीं रह सका, बोला—“तुम्हारी इस जगह की जलवायु अच्छी हो सकती है कढ़ाया, पर मेरी हजम करने की क्षमता अभी भी स्वदेशी ही है—इन दो दिनों में उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।”

उत्तर में सिर्फ जरा-सा हँसकर, प्लेटें टेबिल पर रखकर जैसे हो कढ़ाया जाने को हुई कि मैंने बुलाकर कहा—“तुमने भी मेरे साथ औपचारिकता करनी शुरू कर दी क्या? विमल बाबू करते तो समझता भी, पर—”

बात को बीच में ही काटकर कढ़ाया बोली—“यदि विमल बाबू की तरफ से ही कहूँ तो बुरा क्या है?” उसके बाद हँसती हुई कमरे से चली गयी।

सामने रखवा चाय का प्याला ठंडा होने लगा । काफी देर तक चुप बैठा रहा मैं ।

नहीं, कहरा का व्यवहार बिल्कुल भी अच्छा नहीं लग रहा है, यह बात स्वीकार करने में अब कोई बाधा नहीं है ।

करुणा एक नाटकीयता कर बैठेगी, इसकी अवश्य मुझे आशा नहीं थी । आशा क्यों रीतिमत् वह आशंका का ही विषय था । शुरू में उसकी सहज स्वाभाविकता देखकर आश्चर्य ही हुआ था, पर मन के किसी गोपन कक्ष में आहत अहंकार ने उसके बाद धीरे-धीरे पतनना शुरू कर दिया । मन में आया इतना होने की शायद कोई जरूरत नहीं थी । सूर्य अस्त हो गया तो हो जाय पर उसकी अंतिम आभा पश्चिम के मेघों पर जरा छाई रहती तो नुकसान क्या था !

नाटकीयता न दिखाकर करुणा अगर बहुत ही कठिन और संयत हो उठती तो शायद मैं अधिक खुश होता । पकड़े जाने के डर से वह यदि सावधान रहने का प्रयत्न करती तो शायद अधिक तृप्त होता ।

पर करुणा ने नाटकीय उच्छ्वास या कठोर उदासीनता दोनों में से कुछ भी नहीं दिखाया ।

उससे मेरा क्या बनता-बिगड़ता है, अनायास यही बात सोच सकता था और यही सोचना उचित भी था । सचमुच करुणा से मिलने की कोई आशा या आकांक्षा तो मुझे थी नहीं और उसके साथ साक्षात् होने की कोई बात भी नहीं थी । पृथ्वी की विशाल जनता में हम ऐसे निश्चिन्ह होकर खो गये थे कि किसी दिन फिर से एक दूसरे को खोज पाना बिल्कुल अभावित था ।

लेकिन वही अभावित घटना जब घट गयी तब देखा कि मैं चाहे भूल जाऊँ पर करुणा मुझे नहीं भूल सकती—मन के इस गोपन गर्व का त्याग मैं नहीं कर पाया था । इस तरह का एक गर्व मन में रहना लगता है बिल्कुल अस्वाभाविक नहीं है ।

उन दिनों की बातें बिल्कुल भूली तो नहीं जा सकतीं, विशेषकर वह एक शाम । बाहर सुबह से ही अविश्रान्त वृष्टि पड़ रही थी, इच्छा रहने पर भी कहीं बाहर जाना नहीं हो सका था । शाम को नौकर ने आकर खबर दी कि एक लड़की मिलने आयी है ।

इस होटल में मुझसे मिलने के लिए एक लड़की । पहले तो सचमुच जरा विमूढ़-सा बन गया था । नौकर के साथ जब करुणा कमरे में घुसी तब भी मेरे मुख पर निश्चय ही विस्मय के स्पष्ट भाव थे ।

नौकर के चले जाने पर करुणा पास आकर बोली—

“बहुत आश्चर्य हुआ है न ?”

“थोड़ा तो अवश्य हुआ है, पर तुम तो बिल्कुल भीग गयी हो।”—मैं सचमुच ही परेशान हो गया था।

करुणा पास की एक कुर्सी पर बैठकर बोली—“बारिश में निकलने से भीगना तो पड़ता ही है, तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं है।”

उसके बाद हँसकर बोली—“और परेशान होकर भी क्या कर लोगे ! अपने इस नारी-वर्जित राज्य में औरतों की पोशाक लाओगे कहाँ से ? कोई नाटक मंडली भी तुमने नहीं बना रखी है।”

जरा सोचकर बोला—“ऊपर दस नम्बर में एक पति-पत्नी का जोड़ा है !”

करुणा फिर हँसी—“उनके पास साड़ी-ब्लाउज माँगने जाओगे ? क्या कह कर माँगोगे ?”

हँसना बन्द करके एकाएक गंभीर होकर बोली—“उससे तो मैं भीगे कपड़ों में ही ठीक हूँ। डरो मत, मैं बीमार नहीं पड़ूंगी।

लाचार होकर उसके पास जाकर बैठ गया। मेरे कोई प्रश्न करने से पहले ही वह फिर बोली—“सोच रहे हो, इस तरह यहाँ आने का मतलब क्या है ? क्यों ?”

इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया मैंने। ऐसा लगा जैसे एक क्षण के लिए करुणा अन्यमनस्क-सी हो गयी हो। उसके बाद बिल्कुल ही रूपान्तर हो गया। समझ गया कि अपने उस दुर्निवार आवेग को वह अब तक जबर्दस्ती रोके हुए थी।

एकाएक मेरी छाती पर गिरकर व्याकुल स्वर में वह बोली—

“मुझे पटना लिये जा रहे हैं। मामा की कल चिट्ठी आयी है।”

ऐसी बात नहीं कि मैं कुछ समझ नहीं पाया। तब भी वेदनामय सत्य को जहाँ तक सम्भव हो सका अस्वीकार करता हुआ बोला—“तुम लोगों के कालेज की तो छुट्टियाँ हो रही हैं न ?”

करुणा और भी व्याकुल होकर बोली—“नहीं, नहीं, वह बात नहीं है। तुम समझ नहीं रहे हो। वे लोग अब मुझे यहाँ नहीं रखेंगे। इस बार का जाना हमेशा के लिए जाना है।”

उसका ठंडा हाथ अपने हाथ में लिये स्तब्ध बैठा रह गया। वेदना उस दिन मेरे हृदय में भी थी, पर करुणा के उमड़ते हुए आवेग की तुलना में वह शायद कुछ भी नहीं थी। मेरे प्यार में वह उद्दामता नहीं थी जो भाग्य की बाधाओं के विरुद्ध उद्धत विद्रोह कर सकती।

कुछ क्षण बाद अभ्रुसिक्त मुँह उठाकर दृढ़स्वर में करुणा बोली—“पर मैं नहीं जाऊँगी, कैसे भी नहीं जाऊँगी। क्यों जाऊँ मैं ?”

इस बात का क्या उत्तर दूँ सोच नहीं पाया। मन की गम्भीरता में शायद उस दिन उसके उस विद्रोह के प्रति कोई समर्थन नहीं था। मैं तभी जानता था कि यह विद्रोह निष्फल है।

बात को जरा घुमा देने की चेष्टा से बोला—“तुम जो सोच रही हो वह नहीं भी तो हो सकता है करुणा ; तुम शायद झूठमूठ डर रही हो।”

करुणा फिर अस्थिर हो उठी—“नहीं, नहीं मुझे मालूम है, वे लोग मुझे वहाँ जबर्दस्ती बन्दी बनाकर रखना चाहते हैं। उनकी धारणा है, यह सब बचपना ठीक करने की यही रामबाण औषधि है।”

यह कहकर करुणा तित्कता से जरा हँसी और जरा देर चुप रह कर फिर बोली—“मैं कालेज जाने के बहाने से निकल आयी हूँ। यहाँ आकर तुम्हें मुश्किल में डालने की इच्छा नहीं थी। पर आये बिना कोई चारा नहीं था। बुआ जी के यहाँ तुम्हारा आना-जाना तो करीब-करीब बन्द-सा हो गया है। वहाँ आते भी तो तुम्हें बात बता नहीं पाती।”

बात करते-करते करुणा एक बार फिर आवेग से अस्थिर हो उठी—“अच्छा वे लोग क्या सचमुच मुझे जबर्दस्ती ले जायेंगे ? हम लोग क्या कुछ भी नहीं कर पायेंगे ?”

*

उस दिन कैसा आश्वासन, कैसी सान्त्वना देकर करुणा को उसकी बुआ के घर छोड़ आया था, उसका विवरण यहाँ देने की कोई जरूरत नहीं है। पर मन ही मन चाहे जितनी व्यथा पायी हो, उसके बाद कुछ कर नहीं पाया यह बात सच है।

करुणा के साथ उसके मामाओं ने जबर्दस्ती की या नहीं यह तो नहीं मालूम, पर उसे वहाँ से पटना ले गये। जाने से पहले मिलने का भी अवसर नहीं मिला हम लोगों को।

निमन्त्रण तो नहीं मिला, पर एक दिन कहीं से करुणा की शादी हो जाने का संवाद अवश्य कानों में पहुँचा था। निर्लिप्त निर्विकार मन से यह संवाद सुना था ऐसी बात तो नहीं कह सकता पर आज विश्लेषण करके देखने से समझ पाता हूँ कि वह संवाद मिलने के बाद कई दिनों और कई रातों तक जो हताशा रही, वह प्रधानतः करुणा के दुख से ही थी। प्यार करके प्यार न पाने की

उपलब्धि उस दिन अपने अनुभव से नहीं करणा के अनुभव से हुई थी और उस उपलब्धि की वेदना में मेरी स्वयं की आत्मसन्तुष्टि मिली हुई थी या नहीं यह समझने की शक्ति उस वक्त मुझमें थी नहीं।

करणा की स्मृति जब धुंधली हो आयी थी, तब भी मन के किसी छुपे कोने में यह विश्वास शायद बाकी था कि मैं चाहे भूल जाऊँ पर वह मुझे कभी नहीं भूल पायेगी।

उस विश्वास पर रूढ़ आघात लगने के बाद मन में जो आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया शुरू हुई उससे स्वयं को न जाने कैसा लज्जित-सा तो महसूस किया पर आत्म-संयम नहीं कर पाया।

थोड़ी देर बाद जब करणा मेरे कमरे में आयी तो चेष्टा करने से वह भी मेरे आचरण व मेरी बातों में एक सूक्ष्म परिवर्तन लक्ष्य कर सकती थी।

नाश्ते की प्लेट की ओर देखकर करणा बोली— “यह क्या ? कुछ भी नहीं खाया !”

कुर्ते के बटन लगाते-लगाते घूमकर उसकी ओर देखा और हँसकर बोला— “श्रौपचारिकता के बदले श्रौपचारिकता ही जो दिखानी पड़ती है; भुखमरे की तरह प्लेटें साफ कर देता तो तुम क्या सोचतीं ?”

“तुम अभी तक वही एक बात पकड़ कर बैठे हो ?” करणा का स्वर जरा क्षुण्ण-सा था।

“एक बात को पकड़ कर बैठे रहना मेरी एक दुर्बलता है करणा, अभी तक वह सुधरी नहीं है।” मेरा स्वर काफी गाढ़ा था।

मेरी तरफ करणा की पीठ थी इसलिये उसका मुँह तो नहीं देख पाया पर उसने जो उत्तर दिया उसमें सहज कौतूहल के अलावा और किसी चीज का आभास नहीं था।

“तो और सब दुर्बलताएँ सुधार ली हैं तुमने !” मेरी तरफ घूमकर करणा फिर बोली— “अरे यह क्या, अभी निकल रहे हो बाहर ?”

“हाँ, गाड़ी का कहाँ तक क्या हुआ, एक बार देखना तो चाहिये।”

तुम्हारे देख लेने से ही तो वह झटपट तैयार हो नहीं जायगी। वह तो कह ही गये हैं देख कर आने को। उनके लौटने में देर नहीं है। तुमको यहीं रहने को कह गये हैं।”

‘तो तब तक अपने साथ बैठ कर बातें करने के लिए कह रही हो ?’ हँसकर कहने की चेष्टा की मैंने।

कौतुकमय भंगिमा से करणा ने उत्तर दिया— “वह कर सकते हो।”

मेरा स्वर तब शायद अपने-आप प्रगाढ़ हो गया—“अनायास ही कह गयीं करुणा तुम !”

“ऐसी कौन-सी मुश्किल बात है जो अनायास ही नहीं कही जा सकती ?” करुणा के मुख पर हँसी और उसके साथ-साथ विस्मय के भाव थे ।

“ऐसी कोई मुश्किल बात नहीं है करुणा ? सच कह रही हो ? मेरे साथ अकेले बैठकर बातें करने में तुम्हें डर नहीं लगता ? मुझे स्वयं को तो अभी तक डर लगता है ।”

“देख रही हूँ, तुम्हारा दिमाग काफी खराब हो गया है ।” कहकर हँसती हुई मुझे जरा अप्रस्तुत बना कर इस बार करुणा बाहर चली गयी । दरवाजे के पास से लौट कर फिर बोली—“पर तुम चले मत जाना, मैं अभी आ रही हूँ ।”

लेकिन उसके बाद करुणा काफी देर तक नहीं आयी । कमरे में चहल-कदमी करते-करते मन में न जाने कैसे एक गुस्से का-सा अनुभव करने लगा । वह मेरे अपने ऊपर था या करुणा के ऊपर यह समझना मुश्किल है । शायद वह नियति पर था ।

क्या जरूरत थी इस तरह उसके साथ साक्षात् होने की । साक्षात् होना देव-आयोजित परिहास नहीं तो और क्या था ।

कुछ दिनों की छुट्टियाँ मिलने पर मोटर लेकर जरा घूमने-फिरने निकला था । कल रात को इस शहर के बीच में जब उसका इंजिन अचानक खराब हो गया तो किसी जंगल में न होकर एक अच्छे शहर में दुर्घटना होने के कारण अपने भाग्य को सराहा था । भविष्य के बारे में उस वक्त जान पाता तो शायद जंगल को ही अच्छा समझता ।

एक तो रात का वक्त, फिर अनजान शहर । डाक बँगले और स्टेशन के वेटिंग-रूम से लेकर छोटे से छोटे होटल में भी जब जगह नहीं मिली तो हताश होकर, जिस कारखाने में गाड़ी ठीक करने के लिए दी थी वहीं लौट आया था । वहीं विमल बाबू के साथ परिचय हुआ । पास ही कोयले की खान में वे काम करते हैं । वहीं के किसी काम से उस कारखाने में आये थे । प्रवास में निकले एक बंगाली को संकटापन्न अवस्था में देखकर आगे आकर अपने घर रात बिताने का प्रस्ताव रक्खा था उन्होंने । शायद थोड़ी-बहुत आपत्ति की भी थी मैंने, पर उन्होंने कुछ नहीं सुना ।

शहर से दूर निर्जन प्रान्त में विमल बाबू का घर है । वहाँ पहुँच कर देखा, घर बिल्कुल निस्तब्ध । दरवाजे की कुंडी खटखटाते-खटखटाते विमल बाबू बोले—“आज मैं घर नहीं लौटने वाला था न, नौकर बेटा निश्चित होकर सो रहा है ।”

कुछ देर बाद एक महिला ही लालटेन हाथ में लिये बाहर का दरवाजा खोलकर

निद्रा-जड़ित स्वर में बोली—“बड़ी गहरी नींद आ गयी थी, पर तुम तो कहकर गये थे कि आज आओगे नहीं।”

विमल बाबू हँसकर बोले—“भाग्य में एक परोपकार का पुण्य बदा था इसलिए शायद आने की सुविधा हो गयी। मैं नहीं आता तो ये सज्जन अनजान शहर में विपत्ति में पड़ जाते।”

करुणा ने अब मुझे देखा। सिर पर पल्ला डालकर जाते-जाते अचानक वह चौंककर खड़ी हो गयी।

विमल बाबू तब भी कहते जा रहे थे—“तुम नौकर को बुला दो, बाहर का कमरा खोल कर एक विस्तर लगा देगा। इनको थोड़ी-बहुत तकलीफ तो होगी ही.....” अचानक करुणा के बीच में ही बोल पड़ने पर विस्मय से उन्हें रुक जाना पड़ा।

करुणा हँस कर बोली—“परदेश में थोड़ा-बहुत कष्ट ही हुआ इन्हें तो क्या।”

विमल बाबू अवाक् होकर हम दोनों के मुँह की ओर देखने लगे—“इसका मतलब ? इन्हें तुम जानती हो क्या ?”

“हाँ, थोड़ी जान-पहचान है तो !” करुणा हँस उठी थी।

“कैसी आश्चर्यजनक बात है।”

“आश्चर्य की क्या बात है ? तुम्हारा अपरिचित क्या मेरा परिचित नहीं हो सकता ? तुम्हारे साथ शादी हुए तो कुल तीन साल ही हुए हैं। उससे पहले बीस साल तक मैं सॉलिटरी सेल में थी, तुम क्या यह सोचते हो।”

विमल बाबू हँस पड़े थे—“पर भद्रपुरुष को बाहर टंड में खड़े रख कर अपने दाम्पत्य-जीवन का नमूना नहीं ही दिखातीं।”

करुणा गम्भीर होने का भान कराती हुई बोली—“अच्छा तो तुम यह समझाना चाहते हो कि मैं सिर्फ भगड़ा ही करती हूँ।”

इस बार कुछ कहना उचित सोच कर हँसने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा था—“मैं व्यापारी हूँ विमल बाबू, नमूना देख कर भूलता नहीं।”

इतने दिन बाद करुणा के प्रथम आलाप का ढंग मन में सचमुच कहीं खटका था।

✱

काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद जब सोच ही रहा था कि निकलूँ या न निकलूँ, करुणा आयी। साज-पोशाक का परिवर्तन देख कर जो पूछने जा रहा था

स्वयं ही उसका उत्तर देकर वह बोली—“जरा बाहर जाना है, चलोगे मेरे साथ ?”

आलमारी में से चादर उठाकर बोला—“सिर्फ आदेश की प्रतीक्षा है। पर जा कहाँ रही हो ?”

“बाजार सामान खरीदने।” कह कर कशणा हँसी।

“बाजार !” अवाक् होकर मैंने पूछा।

“मैं तो प्रायः जाया करती हूँ।” हँसती हुई वह बोली—“यहाँ ‘चेन्जर्स’ को छोड़ कर बाशिन्दों की स्त्रियाँ कम ही बाहर निकलती हैं पर मैं वह सब कुछ नहीं मानती। ये नहीं होते तो मैं स्वयं ही नौकर को लेकर निकल पड़ती हूँ।”

“पर आज तो विमल बाबू हैं।”

“ओ, तुमसे कहना शायद भूल गयी। उन्होंने खबर भेजी है, आज नहीं आ सकेंगे, अचानक जरूरी काम से रुकना पड़ गया है।”

कशणा बिल्कुल सहज भाव से बात कह गयी ; पर मैं रास्ते में ही बीच सड़क पर ठिठक कर खड़ा हो गया—“तो फिर ?”

“तो फिर क्या ? इसमें सोचने की कौन-सी बात है ? उनके नहीं रहने से क्या तुम्हारी देखभाल नहीं होगी।” कशणा के मुँह पर कौतुक की हँसी थी।

“तुम रास्ते में खड़े होकर सोचने लगोगे तो मुझे अकेले ही आगे जाना पड़ेगा।”

हार कर चुपचाप उसके साथ आगे चलना पड़ा। इधर सड़क बिल्कुल सुनसान थी। दूर दूर इक्के-दुक्के घर थे, उनमें भी अधिकतर खाली पड़े थे। सड़क पर आदमी नहीं के बराबर थे।

कुछ दूर चुपचाप चलने के बाद प्रश्न किये बिना नहीं रह सका—“विमल बाबू आज रात को तो लौट आयेंगे ?”

“लगता है नहीं लौट पायेंगे। अब वहाँ दो-चार दिन रहना पड़ेगा।”

फिर चुपचाप काफी रास्ता तय कर लिया। कशणा कई बार मेरी ओर घूमकर देखने के बाद हँस कर बोली—“क्या सोच रहे हो इतने गम्भीर बनकर ?”

“सोच रहा हूँ, आज ही चला जाऊँ।”

“पर तुम्हारी गाड़ी तो आज ही आज में ठीक हो नहीं जायगी।”

“गाड़ी ये लोग बाद में भेज देंगे। मैं ट्रेन से चला जाऊँगा।”

“इतनी जल्दी क्या है ? तुम्हें डर किस बात का है ?”

चलते-चलते फिर एकाएक बीच सड़क पर रुक गया—“कहा तो, डर मुझे स्वयं अपने से है। अपने ऊपर मुझे विश्वास नहीं है।”

इस बार कशणा काफी जोर से हँस पड़ी—“नहीं भी हो तो उससे किसी का क्या नुकसान होता है।”

नहीं, अब और नहीं रोक पाया स्वयं को। अचानक अपना संयम बिल्कुल खोकर उसका हाथ पकड़ बैठा—“नुकसान यदि तुम्हारा ही हो.....”

कशणा ने हाथ तो नहीं छोड़ा, पर परिहास की हंसी हंसकर मेरे समस्त आवेग को निष्ठुरता से दबाती हुई बोली—“कैसे होगा ? मुझे तो अपने ऊपर विश्वास है।”

कशणा का हाथ छोड़कर बोला—“यह विश्वास क्या अभी टूटकर चूर नहीं हो सकता कशणा ? लंगर को उखाड़कर तुमको बहा ले जाने वाली लहर क्या कभी नहीं आ सकती ?”

कशणा की नजरों में फिर वही दुर्बोध कौतुकमय हंसी दिखाई दी—“क्या मालूम, परीक्षा अवश्य अभी तक नहीं हुई है।”

उसके बाद क्या कहता ठीक नहीं कह सकता पर चूँकि रास्ता अब जन-बहुल हो गया था इसलिये लाचार होकर चुप रह जाना पड़ा।

सुबह के वक्त बाहर निकलते हुए कशणा का एक रूप देखा था और दोपहर को आहार के वृहद आयोजन के सामने आसन पर बैठ कर उसका एक दूसरा रूप देखा। सफेद ब्लाउज और चौड़ी लाल किनारी की साड़ी पहने भीगे बालों को पीठ पर डाले वह पास आकर बैठ गयी। इतनी अच्छी वह मुझे कभी नहीं लगी थी।

पंखा हिलाते-हिलाते वह बोली—“क्या देख रहे हो ? कभी देखा नहीं है क्या ?”

“लग रहा है सचमुच कभी नहीं देखा।”

“हो सकता है।”—कहकर अद्भुत रूप से वह हंसी फिर पूछने लगी, “अच्छा, मुझे सामान खरीदते देखकर तुमने क्या सोचा बताओ तो ?”

“यही सोच रहा था कि तुम मेरे लिए एक नये आविष्कार-जैसी हो।”

“ऐसी बात है क्या ? लेकिन देखो बेचारे कोलम्बस का स्वत्व खतम मत कर देना।”

“कोलम्बस का भी पहले का स्वत्व यदि रहे तो !”

“स्वत्व रहने पर भी उसकी कोई दलील तो है नहीं।” अपनी रसिकता से कशणा ने हँसकर स्वयं को ही मात कर दिया।

काफी देर तक चुपचाप खाता रहा, फिर बोला—“दलील की कीमत सबके लिए नहीं होती। वह तुच्छ वस्तु अनायास ही जलाकर फेंकी जा सकती है।”

इस बार करुणा हँसी नहीं। क्षण भर के लिए अद्भुत रूप से मुँह की ओर देखा और “तुम्हें मिठाई तो दी ही नहीं” कहकर उठ गयी।

उसके बाद मिठाई लेकर करुणा नहीं आयी, आया महाराज।

लेकिन कुछ देर बाद वह स्वयं ही पान लेकर कमरे में आयी और अचानक पूँछ बैठी—“तो तुम आज शाम की गाड़ी से ही जा रहे हो?”

आश्चर्यचकित होकर मैंने उसके मुँह की ओर देखा। सोचा मेरे मन का भ्रम है या उसके मुँह पर एक अस्थिरता की छाया है?

बोला—“ठीक है, चला जाऊँगा।”

“ठीक है चला जाऊँगा का मतलब! मैं जैसे तुम्हें जबरदस्ती भेज रही हूँ। मैंने तो तुम्हें रहने के लिए ही कहा था। तुम स्वयं ही तो जाने के लिए बेचैन हो उठे थे उस वक्त।”

स्वर की कटुता इस बार छुपी नहीं रह सकी।

हँस कर बोला—“मैं क्या तुम्हें दोष दे रहा हूँ? सचमुच जाये बिना काम नहीं चलेगा।”

जरा लज्जित-सी होकर करुणा हँसने की चेष्टा करती हुई बोली—“वह तो मालूम है, ऐसी जगह क्या तुम्हारा मन टिक सकता है। पर सुनो शाम को उस एक गाड़ी के अलावा और कोई गाड़ी नहीं है यह तो मालूम है न? ठीक साढ़े छह का टाइम है गाड़ी का, याद रखना।”

गाड़ी का वक्त मुझे याद रखने की जरूरत नहीं पड़ी। शाम होने न होते करुणा ने स्वयं ही सब तैयारी कर डाली। सामान बंधवा दिया, मोटर गैरेज में आदमी भेजकर खबर भिजवा दी; यहाँ तक कि सवारी मंगवा कर मुझे एक घंटा पहले ही स्टेशन रवाना कर दिया, यह कहकर कि रास्ते में कुछ गड़बड़ होने से ट्रेन न छूट जाय। हालाँकि रास्ता कुल पन्द्रह मिनट का था।

तैयारी में व्यस्त रहने के कारण मुझसे बात करने का मौका नहीं मिला था उसे। ताँगे पर चढ़ते वक्त वह पास आकर खड़ी हो गयी और बोली—“तुम मेरे बारे में क्या सोच रहे हो कौन जाने। शायद सोचते होंगे कि तुम्हें किसी तरह बिदा करके जान छुड़ाना चाहती हूँ, क्यों?”

“जो कुछ भी सान्त्वना है वह यही सोचकर है।”

करुणा हँस पड़ी, बोली—“सान्त्वना इतनी सस्ती होती तो क्या सचमुच मिलती?”

ताँगे वाले के ताँगा चला देने के कारण उसकी आवाज में हँसी की गूँज मिल गयी।

इस कहानी का अंत यहीं हो जाता तो अच्छा था पर वह हुआ कहाँ ।

स्टेशन जब पहुँचा, ट्रेन आने में काफी देर थी । वेटिंग-रूम में सामान रखकर इधर-उधर चक्कर काटने पर भी जब समय कटना मुश्किल हो गया तो किताबों के स्टाल पर जाकर किताबें उलटने-पलटने लगा । अचानक बगल में नजर पड़ते ही चौंक पड़ा ।

“यह क्या ! करुणा, तुम यहाँ ?”

एक म्लान हँसी हँसकर वह बोली—“अभी आयी हूँ ।”

स्टेशन के मद्धिम प्रकाश के कारण करुणा दुर्बल दीख रही थी या वह कमजोर हो ही गयी थी इसका अन्दाज नहीं लगा सका । पर लग रही थी वह बहुत ही कमजोर ।

स्टाल से जरा हटकर पूछा—“मैं ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ करुणा; अचानक स्टेशन आने के माने ?”

करुणा फिर हँसी । फिर एकाएक गम्भीर होकर बोली—“दलील जलाकर चली आयी ।”

कुछ देर तो सचमुच कुछ समझ न पाने के कारण विमूढ़-सा उसकी ओर ताकता रहा । उसके बाद व्याकुल होकर बोला—“क्या कह रही हो करुणा ?”

“क्या कोई बिल्कुल अनहोनी बात कही है ? लंगर को उखाड़कर बहा ले जाने वाली लहर क्या कभी आती नहीं ?” करुणा का स्वर जैसे धीरे-धीरे गाढ़ा हो गया ।

मेरे बिल्कुल पास आकर आँखों में आँखें डालकर वह बोली—“तुम क्या मुझे ले नहीं जा सकते यहाँ से ? ले जाओगे न, बोलो ?”

मैं बहुत ही विह्वल हो उठा—“मैं.....तुम्हें ले.....”

“सोच रहे हो, कहाँ ले जाऊँ ? जहाँ मर्जी हो ले चलो ।”

मेरे मुँह से कोई बात नहीं निकली । बस मन में एक अस्थिर आलोड़न-सा होने लगा ।

“मुझे मालूम है कि तुम्हें बहुत अमुविधाएँ उठानी पड़ेंगी, बहुत लांछनाएँ सहनी पड़ेंगी पर मैं भी तो इसके लिए प्रस्तुत होकर समस्त लज्जा-निन्दा सिर पर लेकर चली आयी हूँ ।”

करुणा कातर भाव से मेरे मुँह की ओर देखने लगी । क्या कहता । क्या कह सकता था । निर्बोध की तरह मैंने ही तो उसकी बाढ़ के रुद्ध बाँध खोल दिये थे, अब किस मुँह से उसको लौटाऊँ यही सोचने लगा ।

“पर तुमने सब बातें अच्छी तरह सोचकर नहीं देखी हैं शायद करुणा । अब जो तूफान उठेगा उसे तुम सह पाओगी क्या ? उसके साथ जूझते-जूझते क्लान्त

होकर हम शायद एक दिन एक दूसरे से ही घृणा करना शुरू कर देंगे ।”

कहणा उस वक्त भी मेरी ओर स्थिर दृष्टि से ताक रही थी, पर धीरे-धीरे बहुत ही धीरे-धीरे उसके मुँह पर जैसे विद्रूपता की हंसी फैल गयी ।

“तुम्हारे मूल्यवान उपदेश के लिए धन्यवाद । बच गयी नहीं तो अभी लंगर उखड़ जाता ।” — इस बार कहणा खिलखिला कर हँस पड़ी ।

अवाक होकर उसकी ओर देखा मैंने । तो क्या यह सब मेरा उपहास करने के लिए अभिनय था ।

सहज भाव से कहणा फिर बोली, “जाम्रो, ट्रेन आने का घंटा बज गया है । मेरी ट्रेन में भी शायद देर नहीं है ।”

“तुम्हारी ट्रेन ?”

“हाँ, कलकत्ते से बुआ वगैरह आ रही हैं । उन लोगों को घर मालूम नहीं है । ये भी नहीं हैं, इसलिये स्वयं ही लेने आयी हूँ । सुन कर बहुत हताश हो गये शायद ?”

मैं कुछ भी कहे बिना दूसरे प्लेटफार्म पर जाने के लिए ओवर-ब्रिज की ओर अग्रसर हुआ । जब अंतिम बार कहणा दिखाई दी, उस वक्त वह स्टाल की किताबों पर झुकी हुई थी ।

क्या वह सचमुच बुआ वगैरह को लेने स्टेशन आयी थी ?

जीवन में कभी भी इस सत्य का पता नहीं लग पायेगा ।



पक्षा मकान

आशापूर्णा देवी

आशापूर्णा देवी बँगला
 साहित्य की गिनी-चुनी प्रतिभा-
 सम्पन्न लेखिकाओं में से एक हैं ।
 आपके बारे में जो सबसे पहले कहना चाहिये
 वह यह है कि चरित्र-चित्रण में आपको इतनी निपुणता
 प्राप्त है कि किसी से तुलना कर सकना मुश्किल है ।
 मानव-मन के एक-एक रहस्य का आप इतनी दक्षता से उद्घाटन
 करती हैं कि पाठक चकित हुए बिना नहीं रह सकता । आपकी लेखनी
 कहीं-कहीं जरा कुटिल हो उठी है लेकिन जरा-सा ध्यान देने से ही पता लग
 जाता है कि मानव-जीवन के प्रति आपकी सहानुभूति भी कुछ कम नहीं
 है । हास्यरस की रचनाओं में भी निपुणता का परिचय दिया है ।
 कुछ ही काल पूर्व आप बँगला साहित्य के लीला पुरस्कार
 व अमृत पुरस्कार भी प्राप्त कर चुकी हैं । निवास स्थायी
 रूप से कलकत्ता ही है । प्रेम ओ प्रयोजन,
 अग्नि परीक्षा, मित्तिर बाड़ि, नवजन्म,
 योग वियोग आदि आप की
 मुख्य रचनाएं हैं ।



आशापूर्णा देवी

हल्की गढ़न का छोटा-सा दुमंजिला मकान ! हाल ही में उस पर रंग कराया गया था इसलिये नया लगता था । हल्की गुलाबी दीवारों पर गहरे सब्ज खिड़की दरवाजे, रानीगंज की खपरैल छाया छज्जा, सब मिलाकर दूर से तस्वीर की तरह लगता देखने में ।

अब देखने से उसके आदि स्वरूप की कल्पना कर पाना मुश्किल था; उतना ही मुश्किल, जितना साढ़े तीन हाथ के एक मनुष्य को आधुनिक रूप-रंग में रंगा देखकर उसकी मातृ-क्रोड़ स्थित आदिमूर्ति की कल्पना करना ।

मकान जब बना था तो इकमंजिला ही था । चारों दीवारों की चिनाई पक्की

बनाने लायक पैसा नहीं जुड़ पाया था। कौरोगेट टीन डाल कर काम चला लिया गया था।

मनोतोष और महीतोष दोनों भाइयों ने गाँव का घर छोड़ कर बाल-बच्चों सहित कलकत्ता आकर, उपनगर में एक छोटा-सा टुकड़ा जमीन खरीद कर किसी तरह सिर छुपाने लायक कौरोगेट टीन छाये दो कमरे बना ही लिये थे।

भले थो टीन की छत, पर शहर तो था। और वह भी कोई ऐसा-वैसा शहर नहीं, कलकत्ता शहर। जहाँ कल घुमाते ही पानी निकल पड़ता था, लेकिन बटन दबा कर प्रकाश करने का रिवाज उस वक्त तक उतना नहीं चला था। 'विजली की बत्ती' नामक स्वर्गीय वस्तु सिर्फ सम्पन्न व्यक्तियों को ही उपलब्ध थी।

चलो वह विद्युत् प्रकाश न सही पर किरोसिन की शिखा ही क्या कम ऐश्वर्य की चीज थी? और फूस छाई कच्ची भोंपड़ी के सामने तो यह राजप्रासाद था। भाई खुश थे और बहुएं कृतार्थ!

घर नहीं मानों बैकुण्ठ हो। देख-देख कर आँखें नहीं थकती थीं। चलते तो ऐसे पाँव रखते जैसे उनके पाँव की गन्दगी से कहीं ऋक्ष मैला न हो जाय। अब पीछे की बची हुई जमीन पर दो कमरे और बन जायें तो बस तीन लोक में और कौन-सी प्रार्थनीय वस्तु रह जायगी फिर!

मनोतोष की बहू पद्म बड़ी थी पर निःसन्तान थी। छोटी बहू चंपा के एक लड़का एक लड़की, दो बच्चे थे। लेकिन निःसन्तान होने का पद्म को कोई क्षोभ नहीं था। बाहर वालों को तो यह पता भी नहीं लगता था कि उनकी माँ कौन-सी है। और बच्चे ही क्या समझ पाते थे। बल्कि माँ की अपेक्षा बड़ी माँ से ही लाड़-प्यार अधिक मिलता था।

दोनों भाई अभिन्न हृदय थे और दोनों देवरानी-जिठानी पक्की सहेलियाँ। उन लोगों की गृहस्थी देख कर आँखें टंडी होती थीं। दो सोने के कमरे थे और फालतू जमीन पर एक छप्पर डाल लिया था, रसोई-वसोई व गृहस्थी के दूसरे कामों के लिए। ऐसे तो दोनों देवरानी-जिठानी का अधिकांश समय इसी मड़ैया में बीतता था पर पक्के कमरों का आनन्द हृदय में समाता नहीं था उनके। छोटे-मोटे असबाब व बच्चों की-सी शौकीन वस्तुओं से भर गये थे वे कमरे।

व्यापार की कोशिश में आये थे दोनों भाई, सारे बाजार में दुकान-दुकान घूमते और हर तरह की चीज घर में आकर इकट्ठी होती रहती।

कभी मनोतोष सस्ती किस्म के दो शीशे खरीद लाता, पद्म को बुला कर कहता—“यह लो जितनी मर्जी हो मुंह देखो और एक छोटी बहू के कमरे में टाँग

आओ।” और कभी महीतोष कुछ नहीं तो दो जोड़े मिट्टी के पक्षी ही खरीद लाता। एक जोड़ा लेकर पहले पक्ष के कमरे में घुसता, कहता—“किस दीवाल पर लगाने से अच्छे लगेंगे बताओ तो भाभी।”

मनातोष खरीद लाता छोटे-छोटे फ्राक, पेनि, कोट, पैट तो महीतोष लाता दो जोड़े साड़ी, दो मोटी कंधियाँ, दो नहाने के साबुन की टिकियाँ।

महीतोष एक रैपर लाकर बोला—“भैया, लो बदन पर डाल लो और अपनी इस जाकेट को त्याग दो अब, देखी जाती नहीं यह।”

मनोतोष गुस्से से रैपर लौटा देना चाहता, कहता—“तुम्हें तो कितनी जगह जाना पड़ता है, कितने दिन से एक गरम कोट के लिए कह रहा हूँ, वह तो नहीं लिया और यह वेकार का खर्च कर दिया। मेरा तो ठीक चल ही रहा था।”

हाय ! यह चलना चिरकाल के लिए संभव क्यों नहीं हुआ !

✱

इस मुखी गृहस्थी में दरार पड़ी जब पहली बार मरान की मरम्मत के लिए मिस्त्री लगे। वाणिज्य-व्यवसाय से कुछ पैसा इकट्ठा हो गया था, मनोतोष बोला “अब दो कमरे बनवा दिधे जायँ।”

महीतोष बोला—“नहीं, पहले छत पक्की हो जाय तब दूसरी बात।”

मनोतोष की युक्ति थी—“चीज-वस्तु से घर भर गया है, पहले दो कमरों की जरूरत है।” महीतोष की युक्ति भी गलत नहीं थी—“छप्पर कच्चा रखो और कमरे बनाओ ! जँहँ, पहले पक्की छत की जरूरत है।”

कहने की जरूरत नहीं है महीतोष की ही बात रही, क्योंकि बड़ी बहू उसके पक्ष में थी और उसकी अपनी बहू चम्पा तो थी ही, यद्यपि उसकी इच्छा अप्रकट ही रहती थी। दोनों देवरानी-जिथानी की साथ थी—छत पर चढ़कर बाल सुखायेंगी, बड़ी तोड़ेंगी, अचार-चटनी बनायेंगी और मुहल्ले की और सब बहुओं की तरह मुड़ेर पर झुककर आँखें भरकर देखेंगी बहिर्जगत का चलायमान दृश्य। छत के अभाव में जीवन अपूर्ण था यह उनकी अनुभूति की पकड़ में आ गया था। पकड़ में आ गया था कि इसी त्रुटि ने उनको पड़ोसियों से अप्रसक्त बना रखा था।

मुहल्ले में किसी से भी उनका सखोत्व बंधन दृढ़ नहीं हुआ था; जिस अभाव को गाँव की औरतें विशेषकर अनुभव करती हैं। पर होता भी कैसे ? मुहल्ले में रहने से ही क्या हर कोई पड़ोसी हो जाता है ? तब तो घास को भी बटवृक्ष का पड़ोसी कहना चाहिये।

इस बार के जमा किये हुए रुपये छत और जीना बनाने में खर्च हो गये।

सब खुश थे, सिर्फ मनीतोष का मुँह चढ़ा-चढ़ा था। एक दिन भी सीढ़ी नहीं चढ़ा; सीढ़ी चढ़ने में उसकी साँस फूलती थी न !...कमरे के अभाव पर किसी न किसी बहाने असन्तोष प्रकट करता ही रहता।

दूसरी बार जब मिस्त्री लगे तो दिलों में पड़ी हुई दरार और भी चौड़ी हो गयी।

महीतोष दूसरी मंजिल बनाना चाहता था। उसका तर्क था, 'उससे कमरों की समस्या भी हल हो जायगी और फालतू जमीन भी बरबाद नहीं होगी।' इस पर वही कौरोगेट के टीन डालकर बिना प्लास्टर की ईंट की इकहरी दीवाल खड़ी करके रसोईघर, भंडार, गुसलखाना बनवायेगा। पहले जब बहुओं की उम्र और भी कच्ची थी; इस वस्तु का अभाव महसूस नहीं किया। कभी खुले नल के नीचे ही काम चल जाता था। निर्दिष्ट समय पर दोनों भाई घर से बाहर नहीं निकलते। कोई अनुविधा नहीं होती थी। अब वह अनुविधा जैसे जान लेवा लगने लगी थी। खाना बनाने वाली उस पुरानी मड़ैया में फालतू सामान भर दिया जायगा—फूटे टीन, तसले, बाँस, रस्सी के टुकड़े और बचा हुआ चूना-रेत वगैरह।

इस बार भी मनोतोष की सहमति नहीं थी। उसकी दलील भी थोथी थी। "दुमँजिला बनाना है क्या लोगों की आँखों में गड़ने के लिए। सुनो इसकी निराली बात।"

महीतोष बोला—“लोगों की आँखों में गड़ने के लिए ही तो मकान बनाया जाता है।”

आखिर उसी की बात रही। सबकी आँखों के सामने भर-भर गाड़ी ईंट, सुरखी, चूना, सिमेंट आया। बड़ी-बड़ी लोहे की बीम आयी। कंथ्रीट का फ्रेम आया, खिड़की के दरवाजों के पल्ले आये।

महीतोष बहुत उत्साह से देखभाल करता और मनोतोष तटस्थ बैठा रहता। महीतोष जिस वक्त घर नहीं रहता उस वक्त मजूर-मिस्त्री कुछ कहने आते तो निर्विकार भाव से कहता—“छोटे बाबू आवें तो उनसे कहना भैया, मैं कोई नहीं हूँ।”

कभी-कभी पद्म नेक सलाह देती हुई कहती, 'क्योंजी तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? देवर क्या कहेंगे मन में, छोटी बहू क्या सोचेगी?’

मनोतोष कहता—“सोचने की क्या बात है? जो पैसा देने वाला मालिक है उसी के पास जाने को कहा है।”

कुछ दिनों से शेयर मार्केट में यातायात होने लगा था मही का, हालाँकि रुपया उसी का था। दोनों भाइयों का इकट्ठा जो इमली का व्यापार था उसकी तरफ मही अब आँख उठाकर देखता भी नहीं। कारबार की चीज का नाम लेते भी शर्म आती थी उसको।

ऊपर कमरे बन जाने के बाद एक जिद पकड़ ली मनोतोष ने कि ऊपर का कमरा नहीं चाहिए उसे। सारी उमर कभी सीढ़ी नहीं चढ़ा अब इस बुढ़ापे में चढ़ भी नहीं पायेगा। ठीक है वह नीचे के कमरे में। पर उसकी यह हठ टिकी नहीं। पति की देखादेखी पद्म की तो बुद्धि भ्रष्ट हो नहीं सकती थी। ऊपर के दोनों कमरे दोनों देवरानी-जिठानी लेंगी यही तय हुआ था। तब भी बुद्धि प्रखर होने के कारण ही दक्षिण की तरफ खुलने वाला कमरा उसने देवर-देवरानी के लिए छोड़ दिया। नीचे उसके विपरीत था, 'उज्येष्ठ का श्रेष्ठ भाग' वाली कहावत के अनुसार दक्षिण वाला कमरा स्वभावतः मनोतोष के पास था। लेकिन उस वक्त रुपये का हिस्सा बराबर-बराबर था और इस बार मनोतोष का हाथ खाली था।

अब पद्म ऊपर रहती और मनोतोष नीचे, यह बात टिकने वाली तो थी नहीं। भारी मुख और धुब्ध मन लिये उसे बहू के आँचल से धँधकर जाना ही पड़ा ऊपर। अबकी बार गृह-प्रवेश काफी धूमधाम से किया मही ने।

गर्मियों के दिन थे। मनोतोष रात को लेटा-लेटा पंखा हिलाता और असंतोष प्रकट करता, "ऐसे कमरे के मुँह पर तो झाड़ू मारो, दक्षिण बंद कमरा भी कोई कमरा है। इससे तो गोशाला अच्छी। ऊपर के कोठे में सोकर सब गत बन गयी मेरी तो।"

चंपा की लड़की पद्म के पास ही सोती थी। गर्मी से उसकी भी नींद उड़ जाती थी इसलिये सुबह उठते ही रात की अभिज्ञता का विस्तृत विवरण माँ की देती जाकर। अब बड़ी हो गई थी, 'असली माँ' कौन थी यह समझने में भूल नहीं होती थी।

एक दिन साग समकियाते-समाकियाते वही बात उठाई चम्पा ने— "जेठजी को कमरा पसंद नहीं हो तो बदल लिया जाय दीदी!"

पद्म चौंककर बोली— "यह कैसी बात कर रही है री छोटी बहू? बूढ़े आदमी की क्या पसन्द-नापसन्द?"

"क्या, यह तो तुम्हीं बता सकती हो दीदी, तब भी हमेशा से अच्छे कमरे में सोने की ही आदत है उनको, तकलीफ हो सकती है। हम लोगों की तो आधी उम्र दक्षिण बंद कमरे में बीत गयी, कभी कोई बात उठी क्या?"

कहने की बात नहीं है, छोटी बहू के प्रस्ताव में चाहे जितनी उदारता क्यों न थी पर कंठस्वर में निर्मल श्रद्धा का आभास नहीं था।

पद्म लज्जा से गड़-सी गयी। बहुत-सी इधर-उधर की बातों से पति-देवता की बुद्धि-भ्रष्टता का परिचय दे-देकर बात को छोटी बनाकर उड़ा दिया पर मन ही मन चम्पा की लड़की चंदना को कोसे बिना नहीं रह सकी। मन में बोली, 'होगी

क्यों नहीं, बेल, वह भी करेले की बेल; उसके क्या फल और क्या पत्ते ! माँ कैसी बिच्छू है ।’

जल्दी-जल्दी में गृह-प्रवेश ही हुआ था, गृह-सज्जा बाकी थी अभी ।

निस्सन्तान पद्म के शरीर में आलस्य कम था । वह नीचे के कमरे में प्रत्येक चीज भाड़-पोंछ कर ऊपर उठा कर ले आयी—नयी भकाभक दीवाल की शोभा बढ़ाने के लिए । रंग उतरी धूल से मलिन मिट्टी की मछलियाँ, पक्षी, कबूतर—सबका जोड़ा । घर सजाने के लिए मही दो-दो जोड़े लाया करता था । पद्म के अपने शौक की चीजें भी थीं—अब तक जितने रथोत्सवों में, रास में, मेलों में गयी थी, सब में से कुछ न कुछ लाकर तिल-तिल करके जोड़ा था । उस-संग्रह में थे—काँच के उत्तरा-अभिमन्यु, पोर्सिलेन की परी, जरी की तस्वीर, टीन का दीवाल-लैंप, कार्क के फूल, लकड़ी की डिबिया आदि । उसमें थे—पशम से काढ़े हुए फूलों के पौदे, मोम के खिलौने—जो उसने स्वयं बनाये थे ।

सारे जीवन का संचय था । बहुत यत्न, बहुत विवेचना करके जो जहाँ अच्छा लगा, लगा डाला । लगाने के बाद स्वयं पर न जाने कैसी शर्म-सी हुई उसे । चम्पा अगर जरा आलसी है तो क्या उसका कमरा ऐसा ही पड़ा रहेगा, यह सोच कर दूसरे दिन वह चंपा की चीज-वस्तु भाड़ने-पोंछने बैठी । दोपहर का वक्त था—चंपा ऊपर सो रही थी । नींद टूटने पर जब लड़के का खाना लेने नीचे आयी तो बोली—“अब यह बेकार की मेहनत क्यों कर रही हो दीदी ?”

पद्म उत्साह से बोली—“बेकार क्या ? कल वह कमरा किया है आज यह कर डालूँ ।”

विद्रूपता से हँस पड़ी चम्पा—“ना दीदी ना, ये सब फालतू चीजें ले जाकर ऊपर के कमरे में लगाने की जरूरत नहीं है । नयी दीवार पर बिल्कुल ही भोंडी दिखाई देगी । उन्होंने कहा है, उस कमरे के लिए चीनी मिट्टी की गुड़ियों का सेट और कुछ अच्छी तस्वीरें लायेंगे ।”

पद्म अचानक संकुचित-सी हो गयी और बेवकूफों की तरह बोल गयी—“तो फिर इन सबका क्या होगा ?”

चंपा खिलखिला कर हँस पड़ी, बोली—“होगा क्या ? कमरा तो कोई छीने नहीं ले रहा है । मेरा ही है—जैसा है रहेगा, चितू-चन्दन खेल-खेलकर जितनी खत्म कर देंगे, कर देंगे ।.....नये कमरे में ऐसी चीजें ? बाप रे बाप, क्या रुचि है !”

बात के आखिरी अंश पर जरा जोर दिया चंपा ने ।

पद्म को लगा जैसे संसार भर के आदमी उसके मुँह की तरफ ही देख रहे हों

और मुँह छुपाने लायक जगह उसे पृथ्वी पर कहीं नहीं मिल रही हो ।

हाथ का काम छोड़कर किस तरह वह उस कमरे से उठकर गयी यह शायद अन्तर्यामी ही जानते थे ।

उसके परित्यक्त कमरे में अभी भी एक तख्त पड़ा था, जीने में लगने के डर से मही ने ऊपर नहीं ले जाने दिया था; बस वही तख्त उसके उस दिन के आँमुग्रों का परिमाण जान पाया । कल चंपा ने यह बात नहीं कही । जान बूझकर ही नहीं कही उसने । सिर्फ मन ही मन हँसी थी और पति से मुँह बिचका कर बखान किया था । कितने यत्न, कितनी ममता से बिल्कुल ही नगण्य वस्तुओं को नये कमरे में सजाया था, इसी का सरस बखान ।

पद्म के कमरे की सफेद दीवाल पर जो भोंडी चीजें लगी हुई थीं वे चंपा के लिए उपभोग की वस्तुएँ थीं इसमें सन्देह नहीं रहा था पद्म को, क्योंकि पहले दिन तो उसने मुँह से चूँ तक नहीं की ।

और आज उनको लात मार कर फेंक देने का कोई मौका नहीं था । उससे तो चंपा को हँसने का बहाना और भी मिल जायगा । पर उपाय रहने पर भी पद्म क्या फेंक सकती थी यौवन भर के उस संचय को ? चंपा क्या औरत नहीं है ? विधाता ने क्या उसका हृदय नहीं बनाया है ? या बनाते समय उसमें ममता नाम की वस्तु डालना भूल गये ? बहुत आँसू बहाने के बाद जब शाम को चूल्हा जलाने का वक्त हो गया यह, सोच कर पद्म उठी तो उस वक्त चंपा पर गुस्सा नहीं था उमे, देवर के ऊपर भी नहीं था, सिर्फ पति पर एक आक्रोश, एक दुर्जय मान था उसके मन में ।.....‘चीनी मिट्टी की गुड़िया नाम की चीज क्या सिर्फ महीतोष की नजरों में ही पड़ी थी ? दो अच्छी तस्वीरें खरीदने लायक पैसे भी क्या मनोतोष को नहीं जुड़ते ?’

✱

इमली के व्यवसाय में मंदी आने के बाद से मनोतोष ‘लड़ाई के सिपाही’ जैसा हो गया था, पद्म तक उससे खुश नहीं थी ।

यथा समय चन्दना के रिश्ते की बात-चीत शुरू हुई ।

महीतोष चुपचाप पात्र देखने जाता, सिर्फ चम्पा की जानकारी में । उसकी जाने कैसे एक धारणा बन गयी थी कि बड़े भैया की तरफ से लड़की की शादी में भाँजी पड़ेगी ।

पद्म शुरू-शुरू में तो बात को इतना नहीं समझती थी, खोद-खोद कर पूछती देवर से । चन्दना के हिताहित के संबंध में उसका निश्चेष्ट रहना भी संभव था

इसका ख्याल तक नहीं था उसे। ख्याल हुआ चंपा की एक दिन की भुंभलाहट से। पद्म के सीधे-सादे प्रश्नों का सही जवाब ढालने की गरज से जब महीतोष उल्टे-सीधे उत्तर दे रहा था तो धूँधट में से झल्ला कर चंपा बोली थी—“व्याह लोगों के पीठ पीछे तो हो नहीं जायगा, होगा तो सभी देखेंगे। मेरी तो समझ में नहीं आता कि पहले से इतनी कुलबुलाहट क्यों हो रही है। हमारी तो किसी की बात में टाँग अड़ाने की आदत नहीं है।”

इसी दिन से समझ गयी पद्म और दूसरे की बात में टाँग अड़ाने की प्रवृत्ति को संवरण कर लिया उसने।.....और जब सबकी आँखों के सामने व्याह हुआ तो इतना ‘देखा’, इतना ‘सुना’, और इतना ‘खटी’ कि बुखार में पड़ गयी।

*

कमरा खाली हो तो फालतू सामान इकट्ठा होता ही रहता है। पद्म के नीचे के कमरे में एक-एक करके गृहस्थी की फालतू चीजों का अंवार लगने लगा था। अचानक एक दिन महीतोष की नजर पड़ी उस पर।

खूब चीखा-चिल्लाया वह, लात मार कर फेंक दिया टूटा टोकरा, उपलों का टीन और कोयलों का तसला। बर्तन खरीदने के लिए फटे कपड़ों की पोटली बाँध कर रख रखता था पद्म ने, उसको एक ‘शूट’ मारा और फिर बोला, ‘आज ही यह कमरा खाली हो जाना चाहिये, चित्तू का मास्टर ठीक किया है, इसी कमरे में पड़ेगा वह।’

शुरू-शुरू में जमीन पर दरी बिछाकर पढ़ना शुरू किया चित्ततोष ने। उसके बाद धीरे-धीरे लकड़ी की टेबिल, टीन की कुर्सी, नीलाम में खरीदा हुआ पुराना शेलफ आकर इकट्ठे होने शुरू हुए।

पुराने जमाने की मड़ेया को दो बल्ली लगाकर मजबूत बना दिया गया। उसी में उस कमरे का फालतू सामान रखा गया और उसके साथ वह तख्त भी, जिस पर पद्म पति के साथ बारह वर्षों तक सोयी थी।.....पर बुरा भी क्या था ? बल्कि वह मड़ेया ही सबसे ज्यादा हवादार थी। गर्मियों में दोपहर को ऊपर से उतर कर इसी मड़ेया में सोती थी पद्म, तख्त से सुविधा ही हुई।

लड़की का व्याह होने के बाद जमाई घर आता है और जमाई आता है तो उसे सिर्फ खाना तो दिया नहीं जाता, सोने के लिए जगह भी देनी पड़ती है। इसलिए चन्दना की शादी के बाद कमरे की दिक्कत पड़ने लगी। चंपा के एक लड़की और हो गयी थी। हाल की जच्चा चंपा तो बार-बार गद्दा-तकिया उठाये इधर से उधर घूम नहीं सकती थी, अतएव घूमना पड़ता पद्म और मनोतोष को।

जब भी जमाई आता, उनको आश्रय लेना पड़ता चित्तू के पढ़ने के कमरे में ।

अपना बिस्तर उठाकर पद्म जब नीचे उतर कर आती तो न जाने कैसे एक दवे अपमान से उसका सर्वांग जल जाता । नीचे के कमरे में जमीन पर सोती तो उसका वह पुराना रूप याद भी नहीं आता, जब छत टीन की थी और दीवारें उसके शौक्र की चीजों से भरी हुई थीं; जिस कमरे में सोकर स्वर्गमुख का अनुभव करती थी पद्म; जिसकी ओर देख-रेख कर आँखें नहीं थकती थीं । नहीं वे सब बातें सचमुच अब ख्याल में भी नहीं आतीं ।

इस बुढ़ापे में रोज-रोज बिस्तर उठाकर सोने के लिए नीचे चित्तूवाले कमरे में आने के अपमान से दिल तो जलता, लेकिन बात ऐसी लज्जाजनक थी कि उसे लेकर कलह भी नहीं की जा सकती थी और करते तो वह चलती भी कौन से मुँह से । आजकल मनोतोष घर पर ही जो बैठा रहता था ।

*

खींच-तान चल ही रही थी लेकिन वह भी अधिक दिन नहीं चली । अचानक एक दिन बाजार से लौटने पर सर्दी-गर्मी हुई और तीन-चार घंटों के अन्दर ही मनोतोष हमेशा के लिए ऊपर का कमरा छोड़ गया—वह कमरा, जिसके प्रति शुरू में असन्तोष प्रकट करने पर भी एक मोह-सा पैदा हो गया था उसके मन में ।...

इसके बाद स्वयं ही ऊपर नहीं जाना चाहा पद्म ने । पास-पड़ोस के घरों से सब कुछ दिखाई देता था और ऊपर जाने के बाद, बहुतें के साथ मेल-मिलाप भी हो गया था । मोटी धोती पहने उसकी बीभत्स शक्ल देखकर क्या कहेंगे वह लोग । किस मुँह से पद्म की प्रतिनी मूर्ति उनकी कौतूहलमय दृष्टि के सामने घूमती ।

अगर यह दुर्घटना न भी होती तो भी पद्म को कमरा तो छोड़ना ही पड़ता । चन्दना प्रसव के लिए आई थी, करीब साल भर की मियाद लेकर । वह कहाँ रहती उस कमरे के अलावा ?

उसी समय एक बार फिर मिस्त्री लगाये महीतोष ने । सारे घर में सफेदी करवायी और बिजली लगवा ली ।

पद्म के कमरे के विवर्ण, जीर्ण-शीर्ण खिलौनों के कंकालों को भाड़ू से नीचे उतारा गया । एक-एक करके इन सबकी सद्गति कर दी चंपा की छोटी लड़की अंजना ने ।

पर पद्म की सद्गति कैसे हो ?

चित्तू के पढ़ने के कमरे में तो हमेशा रहा नहीं जा सकता था । कालेज में पढ़ता था वह आजकल, यार-दोस्त आते रहते थे हमेशा । कुर्सी, टेबुल, सोफ़ा बगैरह

से कमरा सजा लिया था उसने। और दूसरा कमरा महीतोष की बैठक के लिए था। काम-काजी आदमी ठहरा, अलग बैठक हुए बिना कैसे चलता।

आखिर पद्म कहाँ जाय ?

समस्या को हल किया चन्दना ने, बोली—“बड़ी माँ आसानी से भंडार घर में रह सकती है। अकेली, विधवा औरत हैं, समझ में नहीं आता कि उन्हें एक अलग कमरे की क्या जरूरत है। मेरी समुराल में भी तो बुआ-सास भंडार घर में ही रहती हैं। थोड़ी तकलीफ तो जरूर होगी पर किया क्या जाय; हमेशा तो आराम-तलबो चल नहीं सकती।”

चित्तू हिचकिचाता-सा बोला—“भंडार घर में ?”

चन्दना झल्लायी—“क्यों, कमरा कौन-सा बुरा है ? छत भी टीन की है, दीवारें भी पक्की हैं। पहले भी तो इन सब कमरों की छतें कौरोगेट की ही थीं। क्यों तुम्हें याद नहीं है क्या ?”

याद क्यों नहीं है। टीन जब निकाले गये थे तो उसकी आवाज से कान बहरे हो गये थे चित्तू के। अतः दुविधा दूर हो गयी, विवेक का दंशन रुक गया।

भंडारघर में ही रहना तय हुआ पद्म का। मड़ेया से वही तख्त अब भंडार-घर में उठा लाया गया। एक पाया टूट गया था, उसकी जगह ईंटें लगा दी गयीं।

एक कोने में चूल्हा जला कर चावल राँधकर खा लेती पद्म और तख्त पर सो रहती। स्वास्थ्य उसका बिल्कुल ही नष्ट हो गया था, गृहस्थी का कोई भी काम नहीं कर पाती थी।

रसोई में खाना महारान बनाता था आजकल। भंडार से सामान निकालने, साग-भाजी मुधारने चंपा उधर आती तो जैसे आकाश को मुनाकर कहती—कहावत है न.....वही हालत हो गयी है अपनी। खटते-खटते अपनी जान निकल गयी लेकिन खाना-कपड़ा दे-देकर महारानी जी का पालन-पोषण किया जा रहा है। बलिहारी है आँखों की शरम की, खाना और सोना—भगवान जाने कैसी आदत है। ताज्जुब है, परमुंडे फलहार करना इतना अच्छा लगता है।

लेकिन बहुत अधिक दिन खाना-कपड़ा देकर नहीं पालना-पोसना पड़ा पद्म को। पहले खाना बंद हुआ और फिर कपड़ा।

काफी दिनों से बुबार में पड़ी थी पद्म इसलिये उसको भंडार-घर में नहीं रखा जा सका, कौन जाने क्या रोग था। उसी मड़ेया की बल्ली मजबूत करके आलतू-फालतू सामान एक तरफ खिसकाकर थोड़ी-सी जगह की गयी। अतीत काल में इसी मड़ेया में जिस जगह दोनों देवरानी-जिठानी काँसे की थाली में भात लेकर

बैठतीं व होड़ लगा कर सींगा चवातीं तथा मछली की पूँछ की सद्गति करती थीं वहीं पड़ी-पड़ी मरी पद्म ।

रोग के कीटाणुओं को भगाने के लिए फिर से एक बार भाड़-पोंछ कर सफेदी कराई महीतोष ने और लड़के के व्याह की जोड़-तोड़ शुरू की ।

वंश का नाम उज्ज्वल करने वाला लड़का, जो बाप-दादाओं की चौदह पीढ़ियों में पहला ग्रेजुएट था । बड़े-बड़े घरों से रिश्ते आने लगे उसके ।

अच्छी तरह देख-भाल कर अंत में ऐसी लड़की ढूँढ़ी महीतोष ने जिसमें ढूँढ़े से भी कोई दोष न निकले और साथ-साथ दहेज भी इतना मिले कि पास-पड़ोस के वामन-कायस्थों की आँखें फटी रह जायें । आखिर मिलता क्यों नहीं, ज्योत्सना के दादा-परदादाओं ने तो स्वप्न में भी बी० ए० पास जमाई नहीं देखा था ।

शादी में एक-आध बार पद्म का जिक्र न आया हो ऐसी बात नहीं थी पर तो भी अभाव उतना खटका नहीं, क्योंकि कर्मजगत से पद्म ने काफी दिन पहले ही विदा ले ली थी । उसके पास जो थोड़ा-बहुत सोना-बोना था उसी में से एक अच्छी-सी चीज रख छोड़ी थी उसने चित्तू की बहू के लिए—मरने में पहले कह भी गयी थी यह बात । वही हार बहू के हाथ में देकर चंपा बोली—“बहू, तुम्हारी एक तायस थी । यह उन्हीं का दिया हुआ है, तुम्हारे लिए रख गयी है ।”

हार की बनावट देखकर ज्योत्सना ने मन ही मन नाक सिकोड़ी और उसी वक्त तय कर डाला कि उसे तुड़वा कर एक मेट्रो पैटर्न का हार बनवा लेगी । एक इसी चीज की कमी थी उसके पास ।

नयी बहू बड़े घर की बेटी थी और उसके अलावा चंपा की मनचाही थी । अतः अपनी परिपाटी से सजाया हुआ कमरा लड़के-बहू के लिए छोड़ कर दक्षिण-बंद कमरे में आ गई वह ।

हवा के अभाव में असन्तोष प्रकट कहीं करना पड़ा महीतोष को । शादी के उपलक्ष्य में बिजली के कई पंखे खरीद लिये थे उसने ।

असन्तोष प्रकट किया चित्तू ने । बोला—‘माँ ! तुम अपनी वह भारी अलमारी इस कमरे में ले आओ, दम घुटता है उससे मेरा ।’

वह अलमारी ही चंपा के कमरे का सबसे कीमती फर्नीचर थी । चंपा गाल पर हाथ रखकर बोली—“कह क्या रहा है रे तू, वह तो साहबों के घर की चीज है, डेढ़ सौ रुपये की है ।”

“अपनी कीमती चीज तुम अपने गले में ही लटकाओ माँ, मुझे नहीं चाहिये वह ।”

“पर बहू के कीमती गहने-कपड़े रखने के लिए भी तो—”

बात बीच में ही काटकर जल्दी से चित्तू बोला—“उसके लिए क्या फ़िक्क है। उसका बाप तो घर का पूरा फ़र्नीचर देने के लिए पीछे पड़ा हुआ ही है! मुझसे उस दिन कहा भी था उन्होंने कि उनकी लड़की को शुरू से ही फ़र्नीचर का शौक है, सिर्फ़ हमारे यहाँ जगह की कमी होने की वजह से नहीं दे पा रहे हैं।”

अतः जगह बनानी पड़ी। लॉरी भरकर ज्योत्स्ना के यहाँ से आया पलंग, अलमारी, ड्रेसिंग टेबल, चेयर आदि बहुत कुछ, सत्र मेट्रो पैटर्न का, चमकता-दमकता।

चंपा की साहबों वाली अलमारी, मसहरी वाला बम्बई का पलंग और हत्ये वाली बड़ी-बड़ी चौकोर कुर्सियाँ अपना समस्त सौन्दर्य खोकर लज्जा से नतमुख हो गयीं।

समथी के यहाँ की चीज़ें चम्पा की ही सम्पत्ति थीं। जिसकी वजह से इतना मान-सम्मान था, वह उसी का लड़का था लेकिन तब भी देख-पुन कर उतना आनन्द नहीं हुआ चंपा को। गुस्सा-सा आया महीतोष पर। ऐसी-ऐसी चीज़ें भी तो मिलती हैं बजार में, पर क्या गंवारू पसंद है महीतोष की। यह भी नहीं कि सस्ती चीज़ें थीं, मुट्ठी भर-भर रुपये देकर ऐसी बड़ी-बड़ी भारी-भारी चीज़ें लाया था। उन दो-चार चीज़ों के रखने से ही कमरा भर जाता था बिल्कुल और उधर ज्योत्स्ना के कमरे में इतना सामान रखने के बाद भी कितनी जगह खाली पड़ी थी।

चन्दना शादी की धूमधाम में ही समुराल चली गयी थी। बहू के आने के बाद फिर आयी। दोनों लड़कियों और नाती को लेकर बैठक में सोने लगी चंपा। इतने आदमी तो महीतोष के कमरे में सो नहीं सकते थे। उसको नींद की जरूरत थी, आराम की जरूरत थी। इसके अलावा उसके कमरे में सारी रात पंखा चलता था, उससे चन्दना के लड़के को सर्दी-खाँसी होने का डर था।

ज्योत्स्ना समुर की खूब सेवानुश्रूषा करती, उसका कमरा भाड़ती-पोंछती और बस महीतोष बहू-बहू कहते नहीं थकता। चंपा की समस्त स्नायु-शिराओं में एक न जाने कैसी ईर्ष्या-सी संचरित होती रहती पर प्रकट नहीं कर पाती थी इसलिये बहू से चंपा उतनी खुश नहीं थी। चन्दना भी बहू की कुछ न कुछ मीन-मेख निकालती रहती—रूप की न सही, गुण की ही।

बहू अवश्य इन सब बातों की उतनी परवाह नहीं करती थी; बड़े वृक्ष से नौका बाँध रखी थी उसने।

चन्दना चली गयी तो घर खाली-खाली लगने लगा। उसका शैतान लड़का घर सिर पर उठाये रहता था। महीतोष अन्तर की लालसा व्यक्त करते हुए कभी-कभी कहता—“अब चित्तू के एक लड़का हो जाय तो अच्छा हो, क्यों?”

चंपा विरक्ति प्रकट किये बिना नहीं रह पाती—“पागलपन की बात मत करो, शादी को अभी साल भर भी तो हुआ नहीं।”

महीतोष अप्रतिभ हो जाता, लेकिन एक शिशु की किलकारियों के लिए उसका हृदय तृपित रहता।

किन्तु उसकी आकांक्षा बहुत प्रबल थी इसीलिये शायद पूरी नहीं हुई। चित्तू की शादी को साल होते-होते काल का चक्र घूम गया। तीन दिनों के ज्वर में महीतोष चल बसा। भावी शिशु की पदध्वनि उस समय मातृगर्भ में थी। ज्योत्स्ना अपने पीहर थी।

नातिन न होकर नाती होता तो क्या होता कहा नहीं जा सकता, पर लड़की चंपा को फूटी आँख नहीं मुहाती। उसको लगता, लड़की कुलक्षणी है। यत्र समझने में ज्योत्स्ना को देर नहीं लगी। पर वह अल्पभाषिणी थी, चुप ही रहती। चुप-चाप तो रहती लेकिन जिस वृक्ष से नौका बाँधी थी उसके उखड़ जाने के कारण नौका को तैरती छोड़कर लंगर पकड़ रखवा था उसने।

चन्दना की समुराल का वातावरण सुखमय नहीं था। पैसा ही तो सब-कुछ नहीं होता—सास भगड़ालू, बिल्कुल गँवार थी। चन्दना अधिकतर पीहर ही रहती थी। ज्योत्स्ना ने इस नियम को तोड़ दिया। किस कौशल से तोड़ा, यह तो वही जानती थी।

लड़की के चले जाने के बाद स्वयं को असहाय-सी महसूस करने लगी चंपा। लगता उसकी कर्तृत्व की जड़ें जैसे उखड़ती जा रही थीं। छोटी-मोटी बातों में पकड़ में भी आ जाती थी यह चीज़।

एक दिन चित्तू बोला—“माँ, एक रेडियो खरीद रहा हूँ।”

चंपा चकित होकर बोली—“क्या ? क्या खरीद रहा है ?” रेडियो शब्द से वह अधिक परिचित नहीं थी।

“रेडियो”—चित्तू ने विशद् व्याख्या करते हुए कहा—“यह भी एक तरह की गाने की मशीन है।”

चंपा ने विषाद भरी गम्भीरता से कहा—“ना बेटा, वह चीज़ खरीदने की ज़रूरत नहीं है। उनकी कितनी साध थी गाने की मशीन खरीदने की पर पूरी नहीं ही तो हुई। घर-घर और गृहस्थी-गृहस्थी करते-करते ही दिन निकल गये।”

चित्तू अप्रतिभ होकर बोला—“पर यह तो बिल्कुल वैसी चीज़ नहीं है—यह दूसरी चीज़ है। गाना तो होता है पर रिकार्ड-विकार्ड कुछ नहीं होता।”

“कुछ भी हो, गाना तो होता है। ऐसे दुख के वक्त घर में गाना-बजाना होगा तो मुहल्ले के लोग भी क्या कहेंगे।”

अचानक ऊपर से ज्योत्स्ना बात काटती हुई बोली—“तब तो फिर सारे शहर का गाना-बजाना, आमोद-प्रमोद बन्द हो जाता माँ । रोग-शोक क्या दूसरे घरों में नहीं होता ?”

इससे पहले कभी पति के सामने सास से कोई बात नहीं कही थी उसने ।

चंपा अवाक् होकर देखती रह गयी, जवाब भी देना भूल गयी ।

चित्तू भारी मुँह लिये चला गया वहाँ से ।.....घर में कई दिनों तक बोल-चाल बंद रही । अंत में स्वयं चंपा ने ही जिस दिन सोचा कि अंजना द्वारा ‘गाने की मशीन’ खरीद लाने के लिये कहलवा देगी, उसी दिन शाम को घर लौटते हुए चित्तू रेडियो खरीद लाया ।

उसकी शक्ल-सूरत चाहे जैसी थी पर ‘गाने की मशीन’ और रेडियो का अन्तर पकड़ में नहीं आया चंपा की । कविता, पद, गाने, कीर्तन—क्या नहीं होता था । गाने की मशीन में भी तो यही सब होता है ।

उसके बाद आया लड़की का पालना, बहू के लिए सिलाई की मशीन । ज्योत्स्ना पीहर जाकर अपने बचपन की किताब-कापियाँ, खेल-खिलौने, हारमोनियम वगैरह ले आयी । अब एक कमरे में पूरा नहीं पड़ता । अंजना के जरिये बात उठायी चित्तू ने । चंपा को अब ऊपर के कमरे की क्या जरूरत है ? उम्र हो गयी है, जीना चढ़ने-उतरने में भी तो तकलीफ होती है । चित्तू के पढ़ने के कमरे में आसानी से रह सकती है वह अंजना के साथ । चित्तू तो अब बाप की बैठक में ही उठता-बैठता है ।

साहवों वाली अलमारी, बम्बई का पलंग और बर्तनों का सन्दूक लेकर चंपा नीचे उतर आयी पद्म के पुराने कमरे में । पलंग खुला हो पड़ा रहा, लगाया नहीं गया । जगह ही कहाँ थी । गृहस्थों की बहुत-सी जरूरत चीजें धीरे-धीरे बेकार की चीजों में रूपान्तरित हो गयी थीं । एक दिन जिसका संचय किया था दूसरे दिन वही फालतू बन गया था । जो फेंकी भी नहीं जा सकती थीं और काम में भी नहीं आती थीं, उन सबने उस कमरे में आकर आश्रय ले लिया था ।

इसी बीच एक दिन बिना किसी आडम्बर के अंजना की शादी कर दी चित्तू ने । धूमधाम क्या करता ? आजकल तो बड़े लोग भी नहीं करते । नये जमाई के आदर-सत्कार का भी प्रश्न नहीं उठता । खाना खिलाना ही मुश्किल था, सोने के लिए जगह देना तो और भी मुश्किल था । कमरा ही कहाँ था ?

धीरे-धीरे गृहस्थों के आस-पास पचास का धक्का आकर लगा, जिस में अभाव, दुर्दिन, स्वाधीनता आदि आये । स्वाधीनता का श्रेष्ठ फल शरणार्थी आये—मकान-मालिकों की पौ बारह हो गयी । एक कमरा भी जिसके पास फालतू था, वही राजा था ।

चारों दिशाएँ 'पूर्व' की हवा से भर उठीं।...मुहल्ले में हर एक के घर एक के बाद एक किरायेदार आ गये। तीस, चालीस, सौ जो जितने का दाँव मार सका। इस लोभ का संवरण करना मुश्किल था।

जरा इधर-उधर करके बात जमाते हुए, तंगी-तुर्सी की फ़ेहरिस्त देकर बात उठायी चित्तू ने, नीचे के दोनों कमरे किराये पर देने से बैठे-बिठाये साठ-सत्तर रुपये मिल जायेंगे। उसके आफिस का ही एक आदमी पीछे पड़ा हुआ है। उतना रुपया मिलने से गृहस्थी की हालत भी काफी सुधर जायगी।

चंपा चकित होकर लड़के के मुँह की ओर ऐसे देखती रही जैसे बात समझ ही न पा रही हो। और चित्तू की बात खत्म होने पर लापरवाही से बोली—“दो कमरे किराये पर दे देगा तो चलेगा कैसे?”

अचानक अप्रतिभता छोड़कर कर्त्ता-जनोचित गंभीरता से उत्तर दिया चित्तू ने—“चलाना पड़ेगा, नहीं चलता कहने से थोड़े ही पूरा होगा। इतना आराम शायद नहीं रहेगा थोड़ा कष्ट होगा, पर किया क्या जाय।”

इतना आराम!—इतने आराम में है चंपा जो लोगों की नजरों में चुभने लायक हो? लोग याने चित्तू। चंपा के सुख के दिनों में क्या चित्तू इस घर में नहीं था। ऊपर के कमरे में, खिड़की के पास कुर्सी पर बैठी-बैठी जब चंपा लेस बुना करती थी तो क्या कभी देखा नहीं था चित्तू ने? इसीलिये—नीचे के उस गुदाम-घर का आराम छोड़ कर जरा और कष्ट उठाने के लिए कह रहा है उससे।

हाँ, थोड़ा कष्ट ही तो था और क्या!

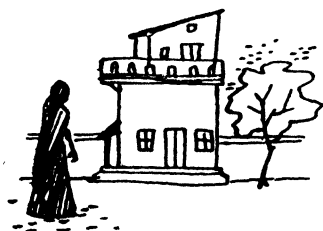
पद्म को जब भंडार-घर में आश्रय लेना पड़ा था तब उसे क्या चंपा ने बहुत अधिक कष्टदायक समझा था? चंपा भी तो अकेली विधवा औरत है, एक पूरे कमरे की क्या जरूरत है उसको?

महीतोष की मृत्यु के बाद पद्म के निरामिष खाना बनाने वाले चूल्हे की धूल-मिट्टी झाड़ कर जब चंपा ने उसको व्यवहार में लाना शुरू किया था तब क्या उसने सोचा था कि पद्म की चौकी भी धो-पोछ कर व्यवहार में लानी पड़ेगी एक दिन? ...कौरोगेट टीन जराजीर्ण हो गये थे। जरा-सी हवा चलते ही चूरा भड़-भड़ कर बदन पर पड़ता, किच-किच करते चूहे भागते फिरते, भींगुर फर-फर करते उड़ते, कैसे भी नींद नहीं आती।...पर चंपा क्या रोती? कहीं नहीं। तो फिर चुपचाप पड़ी क्या सोचा करती थी वह? क्या पद्म की मानसिक दशा की कल्पना करने की चेष्टा करती थी?.....

कुछ महीनों का किराया इकट्ठा करके घर में मिस्त्री लगाये चित्तू ने। ऊपर नया छज्जा बनवाया। ज्योत्स्ना की बहुत साध थी छज्जे की। सिर्फ पीछे के दो

कमरों के कुछ कौरोगेट बदलवाने बाकी थे, लेकिन रुपये खत्म हो गये । पर वह तो पीछे की ओर के थे । सामने से हल्की गुलाबी दीवारों पर गहरे सब्ज खिड़की-दरवाजे और रानीगंज की खपरैल छाया छज्जा, सब मिलाकर हल्की गढ़न का वह छोटा दुमंज़िला मकान देखने में तस्वीर-जैसा लगता था ।

एक दिन गंगा नहाकर वापस आते समय अचानक ऊपर की ओर नज़र जाते ही अवाकू रह गयी चंपा ।



नूरबान्

अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त

बंगला साहित्य में अचिन्त्य
 कुमार सेनगुप्त का एक विशिष्ट स्थान
 है। आप कल्लोल युग के उन असामान्य
 लेखकों में से हैं, जिनकी लेखनी की धार आज भी
 क्षुण्ण नहीं हुई है। आपकी दृष्टि तीक्ष्ण है व अनुभूति
 गंभीर, और यही कारण है कि आपकी रचनाओं में तीक्ष्णता व
 गंभीरता का एक अपूर्व समन्वय है। सामाजिक जीवन के अनेक स्तरों
 के मनुष्यों को आपने अपनी रचना का माध्यम बनाया है। आपकी लेखनी कहीं
 ओज से दुर्निवार हो उठी है, तो कहीं वेदना से स्निग्ध; और कहीं एक
 अपरूप ममता से कोमल बन गयी है। आपकी भाषा तीक्ष्ण है
 और वर्णनाशक्ति अपूर्व। आप एक सिद्धहस्त लेखक हैं।
 काफी अरसे तक आप न्यायाधीश के पद पर भी रह
 चुके हैं। कल्लोल युग, एक रात्रि, नतून तारा,
 एक अंग्रे एतो रूप, छिनिमिनि आदि
 आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं।



कुरमान काँच की चूड़ियाँ खरीदने आया था हाट में। मिजाज बिगड़ा हुआ था, बदन थकावट से चूर-चूर हो रहा था लेकिन तब भी दुकानों के चक्कर लगा रहा था। सुनहरी खरीदे या बेगनी, ठीक नहीं कर पा रहा था।

दूसरे दिन कभी हाट आता था तो तमाखू खरीदता था, प्याज-मिर्च खरीदता था, छोटी-छोटी मछलियाँ लेता था और आज उसे चूड़ियाँ खरीदनी पड़ रही थीं, बालों के फीते खरीदने पड़ रहे थे।

चूड़ी का नाप सवा तीन अंगुल था। चूड़ियों में हाथ डाल-डाल कर देखता कुरमान। नाप ठीक होता तो रंग पसन्द नहीं आता और रंग अच्छा लगता तो नाप की नहीं मिलतीं।

नूरवान के हाथ की चूड़ियाँ आज वह तोड़ आया था। फीता पकड़कर खींचने से बालों का जूड़ा खुल गया था। थोड़ी-बहुत खरोंच-खराँच भी लग गयी थी शायद इधर-उधर।

जमीन-जायदाद नहीं थी उसके पास, लेकिन देना-पावना भी नहीं था किसी का। खेतिहर किसान था वह, हल तक दूसरे से माँग कर लाना पड़ता था। जो थोड़ा-बहुत धान पिछले साल हुआ था वह भी पक्षियों ने चुग लिया था, चूहों ने खा लिया था। इस साल पौधे हो गये थे तो बालियाँ नहीं लगी थीं। जलमग्न जमीन थी, पानी का खारापन पूरी तरह खत्म नहीं हो पाया था। थोड़ा-बहुत जो धान होता था वह भी बटोर-बटार कर मालिक के खलिहान में दे आना पड़ता। उसे मिलता तीन हिस्सों में से एक हिस्सा।

बड़ी खराब हालत थी उन लोगों की, न खाने को था न पहनने को। इसलिये अकेले कुरमान के खटने से काम नहीं चलता था, नूरबानू को भी काम करना पड़ता।

नूरबानू मालिक के यहाँ धान कूटती, जूट लपेटती, कपड़े-लत्ते धोती, पानी खींचती और मालकिन की खिदमत करती—उसके बाल बनाती, बदन दबाती, मालिश करती। बचा-खुचा खाने को मिल जाता कभी-कभी और हर महीने मिलते चार रुपये।

पर जी को चैन नहीं था; मालिक दफादार नूरबानू को बुरी नजरों से देखता था।

पहले दिन ही पति से शिकायत की थी नूरबानू ने, “मालिक मुझे बुरी नजरों से देखता है।”

“क्यों, क्या करता है?”

“खकार-खकार कर खाँसता है, तिरछी नजरों से देखता है।”

“तू उसके नजदीक मत जाइयो किसी दिन भी।”

“नहीं, मैं तो घूँघट निकाल कर दूर से ही निकल जाती हूँ।”

पर दफादार अपनी हरकतों से बाज नहीं आया। एक दिन नूरबानू का हाथ पकड़ लिया।

उस दिन भी नूरबानू ने रोते-रोते कहा, “हाथ छुड़ाते वक्त चिकोटी काट ली थी।”

गुस्से से मुँह लाल हो गया कुरमान का। बोला, “तू सामने गयी क्यों थी?”

“किसने कहा मैं सामने गयी थी?”

“सामने नहीं गयी तो हाथ कैसे पकड़ लिया?”

“मैं तो ढँकी-घर में थी। वह अन्दर आकर बोला, ‘बीज कितने टोकरी हैं?’ मैं पीछे के दरवाजे से भागने लगी तो झपट कर मेरा हाथ पकड़ लिया उसने।”

इस पर भी उस दिन मारा नहीं कुरमान ने नूरबानू को। अपने भाग्य को ही

कोसा था। मन ही मन बोला था, आश्चर्य की बात है, गरीब की बहू में क्या जरा-सी भी खूबसूरती नहीं होनी चाहिये। वह गरीब है इसलिये क्या स्त्री-मुख के अनुभव व उपभोग की मात्रा भी कम करनी पड़ेगी ?

“खबरदार, सामने मत जाइयो उसके फिर कभी। जोरदार आदमी हैं वे लोग; थाना, पुलिस सब-कुछ उन लोगों के हाथ में है, उन लोगों से दूर ही रहना चाहिये। काम-काज जल्दी निपटा कर चली आया कर तु।”

लेकिन आज जब वह लौटी तो चूड़ियों से उसके हाथ भरे थे। फीता लपेट कर जूड़ा बनाया हुआ था।

फूली नहीं समा रही थी नूरबानू पर कुरमान के मुँह के भाव देखकर नशा काफूर हो गया।

“कहाँ से आया यह सब ?”

“मालकिन ने दिया है।”

पर मैं पूछता हूँ, पैसा किसका है ? इस सिंगार के पीछे किसकी आँखों की शह छुपी हुई है ? आज काँच की चूड़ियाँ हैं, कल जेवर-कपड़ा होगा। खारी जमीन को ऐसे ही धीरे-धीरे तैयार करेगा। पहले उँगली पकड़ी थी, अब पहुँचा पकड़ेगा।

“फेंक सब निकाल कर अर्भो।” गरज उठा था कुरमान।

पहनने-ओढ़ने का बहुत शौक था नूरबानू को। उसने जरा आना-कानी दिखायी और बस उसका हाथ पकड़ कर खींच दिया कुरमान ने। कड़-कड़ करती कितनी ही चूड़ियाँ टूट गयीं। एक भटका जूड़ा पकड़ कर दिया कि कुंडली बनाकर बैठा हुआ साँप जैसे कुलबुला उठा।

ढाढ़ मार कर रो पड़ी नूरबानू। चूड़ी लगकर जगह-जगह से हाथ कट गया था, खून चमक आया था।

घर के आदमी का ऐसा भयानक रूप इससे पहले कभी नहीं देखा था उसने। डर लगता है बाबा। भाड़ में जाँय चूड़ी-कंगन। किसान की बहू है वह, उसे क्या लेना-देना शौक-सिंगार से। जैसी है वैसी पड़ी रहेगी।

पर यह क्या ? हाट से प्याज-मिर्च या तमाखू न लाकर, चूड़ियाँ लाया है कुरमान उसके लिए। शर्म से पानी-पानी हो गयी नूरबानू।

पाँचों उँगलियों को एक साथ इकट्ठा किया कुरमान ने और फिर हाथ दबा-दबा कर धीरे-धीरे चूड़ियाँ पहना दीं। अचानक गुस्से में आपे से बाहर हो गया था वह, नहीं तो जिसका हाथ तक इतना कोमल था उसपर हाथ कैसे उठाता वह।

“तुमने क्यों ये बेकार का खर्च किया ? तुम्हारे पास एक अच्छा गमछा तक नहीं है, लुगी भी फट गयी है।”

“फट-फटा जाने दे सब । एक बार हँस तो दे तू अब मेरे मुँह की तरफ देखकर ।”

पीठ पर बाल खुलकर बिखर गये थे ।

“तेरा बाल बनाना नहीं देखा कभी—”

और आज सिर्फ देखा ही नहीं, सुना भी कुरमान ने । बाल बनाने के साथ-साथ चूड़ियों की खन-खन भी सुनी ।

लेकिन दफादार के घर जाना बंद नहीं हुआ नूरबानू का । चार रुपये क्या कम थे ? एक वक्त का खाना क्या कम था ? और भविष्य में कभी थोड़ा-बहुत धान-धान अगर मिलता तो वह भी क्या अग्राह्य करने लायक चीज़ थी ?

अबकी बार एक दिन नूरबानू दफादार के घर से नयी साड़ी पहन कर आयी । फालसई रंग की साड़ी थी । नूरबानू का रंग जैसे फूटा पड़ रहा था उसमें ।

“कहाँ से आयी यह साड़ी ?” कुरमान के मुँह के भाव कठोर हो गये ।

“आज ईद है यह ख्याल नहीं है ? मालकिन ने दी है साड़ी ईद की ।”

ईद का दिन था तब भी नरम नहीं पड़ा कुरमान । खीर-पूड़ी की तो शक्ल तक दिखाई नहीं देती, एक नया गमछा तो जुड़ता नहीं, ईद कैसी ?

नहीं, दिल नहीं पिघला कुरमान का । साड़ी के एक-एक तार में उसे दफादार की भद्दी बदमूरत शक्ल दिखाई दे रही थी । चर्र-चर्र करके उसने साड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

इस बार वह साड़ी खरीदने के लिए हाट नहीं गया । पैसे भी नहीं थे और इच्छा भी नहीं थी । क्षुद्र किसान है वह, उसकी बहू को सेठानी बनने का शौक क्यों होना चाहिये । टाट ओढ़ कर पड़ी नहीं रह सकती वह घर के एक कोने में ?

इतनी साज-सज्जा उसके लिए सचमुच अशोभनीय थी, यह समझते देर नहीं लगी नूरबानू को । पर पहनते वक्त क्या ख्याल में आया था कि साड़ी की एक-एक चुन्ट में साँप छिपा बैठा है जो ऊपर रेंगते-रेंगते अंत में छाती में डंक मारेगा । नूरबानू ने अपनी काली छपी हुई साड़ी ही पहन ली । रात्रि की विजल नीरवता जैसी ही उसकी यह साड़ी थी, इसलिये नींद में बिना किसी रुकावट के वह पति की बाहुओं के घेरे में चली आयी । फालसई रंग की साड़ी के लिए रत्तीभर भी अफसोस नहीं रहा उसके मन में ।

कुरमान काम से छुड़ा लाया नूरबानू को । ले आया पर्दे की हिफाजत में । भूखे-प्यासे रहकर भले ही दिन काटने पड़ें पर पाप के रास्ते के पास नहीं फटकेंगे । दरिद्रता भले ही तंग करे पर अधर्म का साया दूर ही रहे । बुरे दिनों से धबकाकर इन्सानियत का दामन न छोड़ बैठें कहीं ।

लेकिन दफादार तो जोंक था जोंक, बूढ़ा हो गया था पर अक्ल खाक की नहीं थी ।

लक्ष्मी विलास धान काटने के दिन थे, कुरमान खेत पर गया हुआ था । दबे पाँव उसके घर में घुसा आकर दफादार । हाथ में थे कानों के भुमके, पाँव की पायजेब और गले की मटरमाला ।

बोला, “कहाँ हो बीबी जान । देखो आकर क्या लाया हूँ तुम्हारे लिए ।”

बाहर निकल कर आयी नूरबानू तो देखती ही रह गयी—चाँदी के जेवर नहीं, सिर पर खड़ा बाघ ।

बहुत डर लगने लगा उसे । एक तो वह मालिक था, दूसरे जमींदार का गुमास्ता था, तीसरे दफादार था और उस पर मांस-भक्षी जानवर था ।

“चले जाइये यहाँ से ।” आँखों से आग बरसाती हुई नूरबानू बोली ।

“तुम्हारे लिए मरा जा रहा हूँ । यह देखो जेवर लाया हूँ बनवा कर ।”

“मुझे नहीं चाहिये जेवर । आप चले जाइये यहाँ से, नहीं तो अभी शोर मचा दूँगी ।”

पर शोर मचाने से पहले ही कुरमान आ पहुँचा वहाँ ।

घ्रा में जलता-भुनता आया था वह, इसलिए आँखों में कुछ धुँवलापन-सा आ गया था शायद । नहीं तो अपने घर के चबूतरे पर यह क्या देख रहा था वह? दफादार के हाथ में चाँदी के गहने और नूरबानू की आँखों में खुशी की चमक । न जाने कितना हंसी-ठट्टा, छेड़छाड़, रंगढंग; उन गहनों के पीछे न जाने कितनी मिली-जुली शर्तें ।

सिर पर खून सवार हो गया कुरमान के । असहाय की तरह चारों ओर देखा उसने । धान काटते-काटते हँसिया भी खेत पर ही छोड़ आया था ।

“क्यों आये हो यहाँ ?”

बगलें भाँकने लगा दफादार । अंत में हकलाते हुए बोला, “तुम लक्ष्मी विलास धान काटने खेत पर गये कि नहीं, यह देखने आया था ।”

“तो खेत पर न आकर मेरे घर के अन्दर क्यों आये ?”

“मन मेरा । अन्दर-बाहर की सब जमीन मेरी ही तो है । जहाँ मर्जी होगी जाऊँगा-आऊँगा ।”

इतना मुनना था कि झपट कर कुरमान ने दफादार की दाढ़ी पकड़ ली और बस शुरू हो गयी गुत्थमगुत्था । दफादार के हाथ में लाठी थी यह कुरमान देख नहीं पाया था । और उसके अलावा वह आधा पेट खाने वाला किसान था, यह भी उसने नहीं सोचा था । दफादार ने धक्का देकर उसे गिरा तो दिया ही फिर लाठी भी उठा ली ।

कुरमान को देखते ही अन्दर भाग कर छिप गयी थी नूरबानू। लाठी उठी देख हड़बड़ाकर वह अन्दर से निकल आयी और वाज की तरह दफादार पर भपट पड़ी। लाठी छीनने के लिए जोर लगाने लगी। हाथ से लाठी छुड़ा नहीं पायी इसलिए छीना-भपटी शुरू हो गयी।

न जाने इस व्यापार को किस रूप में देखा कुरमान ने कि खून खौल गया उसका। भपट कर नूरबानू को चोटी खींचने के लिए लपका। चिल्लाकर बोला, “तू क्यों पदों के बाहर निकल कर आयी ? क्यों परपुरुष के साथ छीना-भपटी शुरू की तूने ?” दफादार को छोड़कर नूरबानू को मारने दौड़ा कुरमान।

और जैसे ही वह आगे आया दफादार की लाठी पड़ी जोर से उसके सिर पर। ऐसा लगा उसे जैसे नूरबानू ने ही लाठी मारी हो। कुरमान की मार से दफादार को बचाने के लिए ही जैसे उसकी सब कोशिशें हों।

सुध-बुध खोकर कुरमान चिल्ला उठा : “एक तलाक, दो तलाक, तीन तलाक — खतम।”

बस सारी उथल-पुथल खतम हो गयी क्षण भर में। सारा भगड़ा खतम हो गया, सब चुप हो गये।

सिर पकड़ कर बैठ गया कुरमान, सारा गुस्सा भूल गया। हजार लाठियाँ पड़ने से भी इतनी चोट नहीं लगती उसके। चारों तरफ अँधेरा दिखाई देने लगा। नूरबानू का गुस्से से लाल चेहरा देखते-देखते राख-जैसा सफेद हो गया। विमूढ़-सी देखती रह गयी वह और दफादार जमीन पर पड़ी लाठी उठा कर आनन्द से मुस्कराने लगा।

धीरे-धीरे लोग इकट्ठे होने शुरू हो गये।

कुरमान कपड़े भाड़कर उठ खड़ा हुआ, नूरबानू से बोला : “तू फिकर मत कर, अन्दर जा।”

और सचमुच जैसे कुछ न हुआ हो इस तरह आँचल सँभालती हुई अन्दर चली गयी नूरबानू, घर की बहू की तरह।

लेकिन कुछ नहीं हुआ कहने से तो बात खतम हो नहीं जाती। धीरे-धीरे पंचायत बैठ गयी। तलाक दो हुई स्त्री गैर, परायी औरत होती है। उस पर पहले पति का कोई अख्तियार नहीं रहता। कहने का मतलब है कि अब वह उसे घर में नहीं रख सकता। शादी टूट गयी है अतः ऐसे ही उसे वापस नहीं लिया जा सकता। ऐसी बदकारी समाज वर्दाशत नहीं कर सकता।

दफादार दाँत निकाल कर हँसने लगा।

“गुस्से में दिमाग खराब हो जाने से मुँह से बात निकल गयी तो क्या मेरी औरत परायी हो जायगी ?” रो पड़ा कुरमान ।

बिल्कुल परायी हो गयी । एक बार जब तलाकनामा जारी कर दिया तो फिर कोई चारा नहीं । पतंग कट जाने पर डोर लपेटने से क्या पतंग को वापस लाया जा सकता है ।

“मुँह से निकली हुई बात ही बड़ी मानी जायगी ? मन नहीं देखेगा कोई ?”

मुँह की जवान की क्या कम कीमत होती है ? मजाक-मजाक में तलाक कहने से तलाक हो जाता है, यह तो जीते-जागते गुस्से की बात है—गला फाड़कर दिन-दहाड़े तलाक दिया है ।

“और वह भी कायदे के अनुसार साक्षी बनाकर ।” जरा और उकसाया दफादार ने ।

“अब क्या किसी भी तरह मैं नूरबानू को वापस नहीं पा सकता ?”

एक उपाय है । इद्दत के बाद यदि कोई नूरबानू से शादी करके उसे तलाक दे-दे तभी कुरमान उससे दुबारा शादी कर सकता है । इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है ।

कौन करेगा शादी ? कुरमान को वापस लौटा देने के लिए कौन नूरबानू से शादी करेगा ? “कोई नहीं करेगा तो मैं करूँगा शादी ।” दाढ़ी पर हाथ फिराते-फिराते दफादार बोला ।

पर शादी करते ही फौरन तलाक देना पड़ेगा । बात के खिलाफ नहीं जा पाओगे । पंचायत का हुकुम मानना पड़ेगा । इसमें हैं खादिम-इमाम, मुल्ला-मुंशी, यूनियन बोर्ड के प्रेसीडेंट, सब गुणी-मानी लोग । उनकी बात अमान्य नहीं की जा सकती ।

थोड़ा बल मिला जैसे कुरमान को । लेकिन उसके घर नहीं रह सकती नूरबानू । जवान लड़की गैर परपुरुष के घर कैसे रहेगी ? पास के गाँव में उसका एक चाचा है, उसके पास रहेगी लाचार नूरबानू, इद्दत के तीन महीने ।

रोते-रोते एक कमरे में ही चली गयी नूरबानू । जैसे कुरमान को कब्र में रखा गया हो, जमीन में मिट्टी के नीचे गाड़ दिया गया हो ।

इसके अलावा और क्या था ? कुरमान के पास से निकल कर चली गयी नूरबानू तब भी हाथ बढ़ाकर वह रोक नहीं सका उसको ।

मुँह से निकली हुई सामान्य-सी कुछ बातें इस तरह सब मटियामेट कर देंगी, यह कौन जानता था । कुरमान का गुस्सा अब उसी को कचोट-कचोट कर खा रहा था ।

दिवालिया बन कर कुरमान दक्षिण की तरफ चला गया। नूरबानू ही नहीं थी तो घर-द्वार क्या ! घर की दीमक लगी फूस की दीवारों की तरह उसकी पसलियाँ भी खोखली होती जा रही थीं। चला तो गया दक्षिण में पर मन उसका उत्तर में ही पड़ा रहा।

धान की कटाई हो चुकी थी। कुरमान लौट आया अपने गाँव, चला आया अपने घर। आकर घर का टट्टा खोला। कहाँ थी नूरबानू ? चैती मैदान की तरह उसका हृदय भी वीरान हो गया था। एक दिन रात को छुपकर आयी नूरबानू। ऐसा चेहरा हो रहा था उसका जैसे कोई गुनाह करके आयी हो। कुरमान से हटकर अलग बैठी-बैठी आँचल में मुँह छिपा कर रोने लगी।

लपक कर कुरमान ने नूरबानू को पकड़ना चाहा। उसकी इच्छा हुई कि पास बैठकर अपने हाथ से उसके आँसू पोंछ दे।

नूरबानू बोली, “नहीं। अभी मैं हलाल नहीं हुई। इद्दत के दिन पूरे नहीं हुए अभी। अभी दुबारा शादी नहीं हुई है, तलाक नहीं मिला है अभी फिर से।”

बोली, “वस तुम्हें एक बार देखने चली आयी। मन न जाने कैसा करता है।”

बड़ी कमजोर हो गयी है नूरबानू। मन मर गया है। बदन का रंग साँवला पड़ गया है। चमक-दमक पुँछ गयो है चेहरे से। मन ही मन सोचा कुरमान ने।

इधर-उधर पड़ी चीजों को जरा ठोक-ठाक कर दिया नूरबानू ने।

“तुझे क्या फिर पा सकूँगा तू ?”

“क्यों नहीं पाओगे ? पंचायत की बैठक में फैसला हुआ है। पाई- पाई वसूल हो जायेगा सब। आँख बंद करके किसी तरह बीच के ये दिन काट दो वस।”

“बताऊँ मेरे मन में क्या आता है !..... वह तुझे छोड़ेगा नहीं। एक बार कलमा पढ़ा जाते ही वह मुँह में ताला लगा लेगा, कहेगा, नहीं देता तलाक।”

“हिस्।” नूरबानू ने फन उठाकर फुफकारते हुए कहा : पंचायत उसको कैसे छोड़ेगी ?”

“नहीं छोड़े तो क्या, वह साफ-साफ इंकार कर देगा। उसको लेकर मुकदमा तो चल नहीं सकता। कहेगा, किसकी हिम्मत है जो जबरदस्ती मुझसे तलाक दिलवा ले ?”

“हूँ। करके तो देखे ऐसी बेईमानी।” फिर से गुर्रायी नूरबानू। “बदतमीज को जहर खिलाकर खतम कर दूँगे और उसकी धन-सम्पत्ति साथ लाकर शादी कर लूँगी तुमसे।”

नूरबानू की आँखों में कितना विश्वास, कितना स्नेह था।

“बदन गरम-सा लग रहा है, लगता है बुखार आयेगा।”

बदन छूने जा रही थी नूरबानू कि हाथ खींच लिया। ऐसी सोने-जैसी देह स्पर्श करने का उसे कोई अधिकार नहीं था।

किसी-किसी दिन कुरमान आधी रात को नूरबानू के घर के दरवाजे पर जाता। नूरबानू की आँखों में नींद नहीं होती, टट्टे के छेदों में आँख लगाये बैठी होती।

कहती, “क्यों पागल की तरह मारे-मारे फिर रहे हो ? लोग चोर समझेंगे। चौकीदार देख लेगा तो चालान कर देगा।”

“कब आयेगी तू ?”

“दफादार आदमी लेकर आया था। अगले जुम्मे को कलमा पढ़ेगा उसके बाद ही उससे तलाक ले लूंगी। अब तुम घर जाओ।”

घर, किसका घर ! कुरमान की तबियत करती नूरबानू को लेकर कहीं दूर चला जाय, कहीं भी। जहाँ इतनी मुश्किलें न हों। जहाँ सिर्फ सीमा-हीन आकाश और धरती हो।

लेकिन उसके कानों में बस एक ही बात गूँजती रहती, उसे जल्दी घर चले जाना चाहिये, वह परपुरुष है, उसे कोई चोर समझ लेगा।

जुम्मे के दिन शादी हो गयी, पर कहाँ है नूरबानू, शनीवार को तलाक लेकर आयी तो नहीं।

जो उसने सोच रखा है वही होगा। एक बार मुट्ठी में आने पर दफादार छोड़ेगा नहीं नूरबानू को। गला पकड़ कर दवाने पर भी उसके मुँह से तीन अक्षरों के वे तीन शब्द निकलवाये नहीं जा सकेंगे। कहेगा, मौत के अलावा और किसकी हिम्मत है जो हमें अलग कर सके। कुरमान पता लगाने गया दफादार के यहाँ, पर दावेदार की तरह नहीं, देनदार की तरह।

दफादार बोला, “मेरा कोई कुसूर नहीं है। शादी हो गयी है तब भी नूरबानू अभी तक बीवी नहीं बनी है। बीवी बने बिना तलाक कैसे दिया जा सकता है ?”

ये सब बहाने-बाजी हैं। इसका असली मतलब है नूरबानू को अपने कब्जे में रखना, चौबीस घंटों की बाँदी बनाकर रखना।

पंचायत बैठायी कुरमान ने और फरियाद की अपनी।

बुलाओ दफादार को। क्या जवाब है उसका ? क्यों नहीं छोड़ रहा है नूरबानू को ? इजहार के खिलाफ क्यों कर रहा है ?

दफादार आकर बोला, “शादी का मतलब तो पूरा हुआ ही नहीं अब तक। अभी भी नाँव कच्ची है, पक्की नहीं हुई। शादी हो गयी है पर बच कर चलती है नूरबानू। परछाँई तक से दूर भागती है। दरवाजे की चिटकनी लगाकर सोने

नहीं आती। उसने सोच रक्खा है शायद कि कलमा पढ़ते ही वह तलाक के क्राबिल हो गयी। इसी लिए अलग-अलग रहती है। अब जब कोई रिश्ता ही नहीं जुड़ा तो तोड़ने का सवाल ही कहाँ उठता है।”

ठीक तो है। पंचायत ने राय प्रकट की। पति के साथ अगर एक रात भी न गुजारे तो शादी जायज कैसे होगी? शादी का मतलब पूरा हुए बिना तलाक नहीं दिया जाता। नूरवानू के हलाल हुए बिना काम नहीं चलेगा।

कोई चारा नहीं था, हलाल होना पड़ेगा नूरवानू को। तलाक माँग कर लेना पड़ेगा भिक्षुक की तरह।

कमरे में जाकर चिटकनी लगा ली नूरवानू ने।

दूसरे दिन पक्षियों के चहचहाने के साथ-साथ तड़के ही दफ़ादार ने नूरवानू को तलाक दे दिया।

शाम की धूप चवूतरे से जाने-जाने को थी कि नूरवानू चली आयी कुरमान के घर। कुरमान चवूतरे पर ही बैठा था। हाथ में हुक्का था पर चिलम में आग नहीं थी। न मालूम कब बुझ गयी थी। दृष्टि स्थिर थी—शून्य। नस-नस ढीली हो गयी थी, जिंदगी जैसे धँसती जा रही थी। नदी के दूटते किनारे पर खड़े परित्यक्त मकान जैसा चेहरा हो गया था उसका।

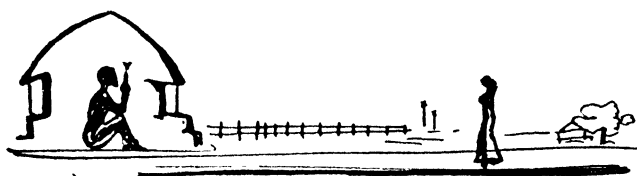
जैसे पहचान कर भी न पहचानता हो ऐसी आँखों से देखा कुरमान ने नूरवानू को। उसकी आँखों में गत रात का मुर्मा था, ओठों पर पान के सूखे दाग थे। सारे शरीर पर जैसे हर्ष का इत्र लगा हुआ था। बैगनी रंग की नयी साड़ी पहने थी वह, परत-परत में जैसे खुशी की लहर थी।

वह जल बड़ा गंदला था, कीचड़ मिट्टी से ओतप्रोत था, सड़ी वद्वू आ रही थी उसमें से।

ऐसे पानी में स्नान नहीं किया जाता।

“इदत के दिन मैं यहीं पूरे करूँगी। दिन पूरे होते ही मुल्ला को बुलाकर कलमा पढ़ लो जल्दी से। यह कहकर नूरवानू ने घर की तरफ पाँव बढ़ाया।

बुझे हुए हुक्के का कश खींचते-खींचते कुरमान बोला, “नहीं, शादी-व्याह की अब मेरी तबियत नहीं है। तू लौट जा दफ़ादार के घर।”



पादटोका

सैयद मुज्जबा अली

लेखनी हाथ में
 लेने के साथ-साथ
 जिन्होंने प्रसिद्धि-लाभ को है
 सेयद मुज़्ज़बा अली उनमें विशेष रूप
 से उल्लेखनीय लेखक हैं। 'देशे-विदेशे'
 आपकी पहली पुस्तक है। इसके बाद और भी कई
 पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से प्रत्येक लोकप्रिय हुई है।
 आपकी रचनाओं में हास्य-रस का अपूर्व समावेश मिलता है।
 आप अनेक विषयों के पंडित हैं लेकिन आपके पांडित्य ने कहीं भी
 आपकी रचनाओं को जटिल नहीं बनाया है। छात्रावस्था के कई वर्ष आपने
 शान्ति-निकेतन में व्यतीत किये हैं। वहाँ से अफ़ग़ानिस्तान और अफ़गा-
 निस्तान से जर्मनी चले गये। कुछ वर्ष अध्यापन-कार्य करने
 के पश्चात् आल इंडिया रेडियो में स्टेशन-डाइरेक्टर का
 कार्यभार ग्रहण किया। आजकल शान्ति-निकेतन
 में ही अध्यापन-कार्य करते हैं। देशे-
 विदेशे, पंचतंत्र, चाचा काहिनी,
 चतुरंग, शबनम, धूपछाया
 आदि आपकी अनन्य
 रचनाएँ हैं।

शैथन मुज्जतबा अली



का
पट्ट

ग¹त शताब्दी के अंत से लेकर इस शताब्दी के शुरू तक हमारे देश के सब गुरुकुल जैसे किसी महामारी से बिल्कुल ही उजड़ गये। पठान-मुगलों के राज में जो नहीं देखा था, अंग्रेजों के राज्य में वह सबने देख लिया। आर्थिक दबाव के कारण देश के कर्त्ता-धर्त्ताओं ने अपने बच्चों को गुरुकुल के वजाय अंग्रेजी स्कूलों में भेजना शुरू कर दिया। उस वक्त जिधर देखो अंग्रेजी शिक्षा का बोलवाला था। उस डाँवाडोल परिस्थिति में बहुत से गुरुकुल विनष्ट हो गये और बहुत से काव्यतीर्थ वेदान्त शास्त्रियों को पेट की ज्वाला से अपने प्राण गंवाने पड़े।

इससे भी खराब दशा हुई उन लोगों की जो किसी तरह संस्कृत या बंगला

के शिक्षक के रूप में हाई स्कूलों में नियुक्त हो गये । यद्यपि अपने-अपने विषयों में अर्थात् काव्य, अलंकार, दर्शन इत्यादि में और शिक्षकों की अपेक्षा इनका ज्ञान बहुत अधिक था पर सम्मान और पारिश्रमिक इनको सबसे कम मिलता था । सुना है किसी-किसी स्कूल में तो पंडित का वेतन चपरासी से भी कम होता था ।

हमारे पंडित जी तर्कालंकार थे या काव्य विशारद यह तो मुझे ठीक याद नहीं पर यह अवश्य याद है कि पंडित समाज में उनकी ख्याति बहुत अधिक थी और उनके बाप-दादा चौदह पीढ़ियों तक भारतीय संस्कृति के एकनिष्ठ साधक रहे थे, इतना ही नहीं बल्कि वे लोग कभी किसी दूसरे के घर खाना भी नहीं खाते थे । अतः तीज-त्योहार श्राद्ध-निमन्त्रण आदि में किसी के यहाँ पत्तल पर बैठने का सवाल ही नहीं उठता था ।

पंडित जी बँगला भाषा के प्रबल विरोधी थे । अगर यह कहा जाय कि उससे उन्हें घृणा थी तो अत्युक्ति नहीं होगी । बँगला में जो विशुद्ध संस्कृत की चीजें हैं वस वही पढ़ाने को राजी होते थे, जैसे कृत्, तद्धित, संधि, समास वगैरह, वह भी बँगला समास नहीं । मैंने एक दिन अपने बँगला निबन्ध में 'दोला लागा' 'पाखी जागा' उद्धृत कर दिया था तो उन्होंने सीधे दवात फेंक कर मारी थी मुझ पर । क्रिकेट अच्छा खेल है उस दिन काम आ गया था । और दूसरे ही क्षण विपूर्वक आपूर्वक, घ्रा धातु क के उत्तर देकर संस्कृत के व्याघ्र को घायल कर देने पर उन्होंने मुझे आशीर्वाद देकर कहा था कि इसी वक्त तू स्कूल छोड़कर चतुष्पाठी जा । वही तेरी असली शिक्षा होगी ।

पर पंडित जी जितना पढ़ाते नहीं थे उससे अधिक डाँटते थे और उससे भी कहीं अधिक तो टेबिल पर दोनों पाँव रखकर सोते थे । अच्छी तरह जोर-जोर से खर्राटे भरते थे, यहाँ तक कि हेडमास्टर की भी परवाह नहीं करते थे क्योंकि बचपन में हेडमास्टर साहब उनके संस्कृत के छात्र रह चुके थे । पढ़ने-लिखने में वे विल्कुल ही मूर्ख थे, यह बात पंडित जी दिनरात हर जगह उच्चकांठ से घोषित करते रहते थे । हम लोग इस कहानी को सुन-पुन कर खूब मजा लेते थे और पंडित जी को खुश करने की जरूरत पड़ने पर इसी विषय को नये रूप में छेड़ दिया करते थे ।

मुझ पर पंडित जी का जरा अधिक स्नेह था क्योंकि मैं अधिकतर विद्यासागरी बँगला का प्रयोग किया करता था । बस केवल "दोला लागा, पाखी जागा" उद्धृत कर देना उनकी दृष्टि में वर्णाश्रम धर्म पालन करते वक्त गोमांस-भक्षण जैसा हो जाता था । पंडित जी मुझको सबसे अधिक चाहते थे इसका प्रमाण वे मुझ पर हर-वक्त तरह-तरह के कटुवचनों का वर्षण कर के देते थे । अनार्य, शाखाभृग, द्राविड़

सम्भूत आदि शब्दों का प्रयोग किये बिना तो वे मुझे सम्बोधित ही नहीं करते थे । इसके अलावा ऐसी-ऐसी अश्लील बातें कहते थे कि उनकी तुलना में रखने लायक शब्द मैंने तो देश-विदेश में कहीं भी नहीं सुने । पर साथ ही साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि पंडित जी श्लील, अश्लील दोनों ही को एक सुर, एक परिमाण में कह डालते थे, विलकुल ही अचेतन व वीतराग बनकर और लाभानुलाभ की जरा भी आशा या भय किये बिना । उनकी अश्लीलता माजित न होते हुए भी बहुत ही स्निग्ध रूपा में दिखाई देती थी और यही कारण है कि जीवन के इतने अनुभवों के बाद भी आज तक मैं यह नहीं समझ पाया कि उससे मेरा क्या लाभ या नुकसान हुआ ।

पंडित जी का वर्ण श्याम था । महीने में एक बार वह दाढ़ी-मूँछ बनाते थे और घुटने तक की ऊँची धोती पहनते थे । शरीर के ऊपरी हिस्से पर एक बटी हुई रस्सी-सी रहती थी । अनजान आदमी कहते थे वह रस्सी नहीं है, चादर है । क्लास में आते ही वे उस रस्सी को उतार कर टेबिल पर रखकर हम लोगों पर रोप-भरी एक दृष्टि डालते और हम लोगों का विद्यालय न आकर खेती-बाड़ी करने जाना अधिक समीचीन होगा इस बात को हजार बार याद दिलाते-दिलाते दोनों पाँव टेबिल पर लम्बमान कर देते । उसके बाद कोई भी एक बात पकड़कर जरा डाँटते-फटकारते और फिर सो जाते । जिस दिन डाँटने के लिए कोई कारण नहीं मिलता, पर यह हमारा कुसूर नहीं होता था अर्थात् हम ऐसा कोई प्रयत्न नहीं करते थे कि उनको कोई कारण न मिले, उस दिन मन ही मन पर जरा उच्चस्वर से दो-चार कृत तद्धित आदि की व्याख्या करके उपसंहार में कहते कि इन मुखों को विद्यादान करने की प्रचेष्टा करना तो बन्ध्यागमन की तरह निष्फल है । उसके बाद कभी तो अपने भूतपूर्व गुरुकुल की बातें याद करके वड़वड़ाते हुए विश्वभर को अभिशाप देते और कभी दीर्घश्वास छोड़कर खींचने वाले पंखे की तरफ देखते-देखते सो जाते ।

सुना है, ऋग्वेद में लिखा हुआ है कि जब यमपत्नी यमी यम की मृत्यु से अत्यन्त शोकाकुल हो गयी और देवता उसको किसी भी तरह सांत्वना न दे पाये तो हारकर उन्होंने उसे सुला दिया था । मेरा भी यही विश्वास है कि गुरुकुल छिन जाने के दुख से दुखी पंडित जी को सांत्वना देने के लिए देवता उनको अर्हनिश सुला दिया करते थे । क्योंकि इस प्रकार दिन-रात, सायं-प्रातः, शिशिर-वसन्त किसी भी ऋतु में बेंच पर, चौकी पर, जहाँ-तहाँ बेखबर होकर सो जाना देवताओं का वरदान नहीं है इस बात को स्वीकार करने की हिम्मत मुझमें नहीं है ।

बहुत साल बीत गये हैं, उस स्कूल के सामने से बहती हुई सुरमा नदी से न जाने कितना पानी बह गया है पर आज भी जब व्याकरण के सम्बन्ध में उनकी बातें याद आती हैं तो उनकी जो तस्वीर मेरी आँखों के समक्ष उभर कर आती है वह उनकी जाग्रत अवस्था की तस्वीर नहीं होती। उस तस्वीर में देखता हूँ टेबिल के ऊपर दोनों पाँव रखे हुए, सिर एक तरफ को झूलता हुआ, चोटी हिलती हुई, इस रूप में काष्ठासन की शरशय्या पर शायित भारतीय परम्परा के अंतिम कुमार भीष्म देव को। पर छिः, फिर 'ढोला लागा' (चोटी हिलती हुई) समास का व्यवहार करके बेकार में पंडित जी की प्रेतात्मा को व्यथित क्यों करूँ।

इस वक्त आसाम के चीफ कमिश्नर एन० डी० बीटसेन बेल थे। साहब के दिमाग का शायद कोई पेंच ढीला था। अपने प्रथम परिचय में ही वे सबको समझा देते थे कि असल में उनका नाम 'नन्ददुलाल घंटा बजाने वाला' है। एन० डी० से बनता है नन्ददुलाल और बीटसेन बेल का मतलब है घंटा बजाने वाला—दोनों मिलकर होता है—'नन्ददुलाल घंटा बजाने वाला'।

वही नन्ददुलाल हमारे शहर में आकर उपस्थित हुए। क्लास का बड़ा-बूढ़ा लड़का पद्मलोचन समझा जाता था। उसी ने एक दिन खबर लाकर दी कि लाट साहब स्कूल का निरीक्षण करने आ रहे हैं। पद्म का बहनोई लाट का दूर-बलक है न, उसी से उसको पक्की खबर मिली है।

लाट का स्कूल आगमन निरा आनन्ददायक ही था ऐसी बात नहीं थी। एक तरफ तो बिना कहे-सुने अचानक लाट के आने की खबर से उत्तेजित मास्टरों द्वारा कुसूर-बेकुसूर डाँट-फटकार मिलने का अफसोस था तो दूसरी तरफ लाट के चले जाने पर तीन दिन की छुट्टी मिलने की खुशी थी।

हेडमास्टर साहब के दिमाग का पारा जिस वक्त सबकी जान सुखाने वाली सतह पर पहुँचने की तैयारी कर रहा था उसी वक्त खबर मिली कि हुजूर शुक्रवार को पधारेंगे।

उस दिन हम लोगों ने स्कूल शुरू होने से एक घंटा पहले हाजिरी दी। हेडमास्टर साहब स्कूल के चारों तरफ चक्कर की तरह घूम रहे थे। जिस तरफ देखो उसी तरफ हेडमास्टर—ऐसा लगता था जैसे उनके कई जुड़वाँ भाई थे, जिनको वे उसी दिन स्कूल की देखभाल करने के लिए बुला लाये थे।

पद्मलोचन बोला, "कामन रूम में जाकर तमाशा देखकर आ।"

"क्यों क्या हुआ है?"

"देख ही आ न जाकर।"

पद्म और चाहे जो भी करे पर पुरानी खबर कभी नहीं लाता था; इसलिए

हेडमास्टर के थप्पड़ का भी डर न मानकर कामन-रूम के पास जाकर खिड़की से देखा, सचमुच ही अवाक कर देने वाली बात थी। हमारे पंडित जी एक पूरी बाँह की कोरी, हल्दी के रंग की बनियान पहने बैठे हुए थे और दूसरे मास्टर उनको घेर कर उसकी प्रशंसा कर रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो बहुत से मुनि बैठे हुए अलग-अलग मुरों में स्तवन-वन्दना कर रहे हों। कोई कह रहा था, 'पंडित ने भी क्या विलक्षण बुद्धि पायी है, खूब सस्ता दाँव मारा है' (बिल्कुल गलत, पंडित जी में व्यावहारिक बुद्धि रत्ती भर भी नहीं थी), कोई कह रहा था, 'आहा,' कैसी जँच रही है' (खाक जँच रही थी, पंडित जी बिल्कुल सर्कस के जोकर की तरह लग रहे थे), कोई कह रहा था 'क्या फिट बैठी है' (चूल्हे में जाग्रो, बनियान का भी क्या फिट बैठना और न बैठना)। अंत में पंडित जी के यार मौलवी साहब, दाढ़ी हिलाते हुए बोले, 'समझे भट्टाचार्य, इस तरह की बनियान बस दो ही बनी थी, उसमें से एक तो खरीदी थी पंचम जार्ज ने और दूसरी खरीदी है तुमने। इन दोनों को बनाने में ही कम्पनी का दिवाला निकल गया था; और किसी की तकदीर में ऐसी बनियान नहीं है अब'।

चरारासी नित्यानन्द ने दूर से इशारा किया—बाबू आ रहे हैं।

एक छँलाग में सीधे क्लारा पहुँच गया।

सेकेंड पीरियड बँगला का होता था। पंडित जी के आते ही हम सब लोग हँसते हुए बनियान की तरफ देखने लगे। इसी बीच रेवती ने जानकारी दी कि शास्त्रों में सिला हुआ कपड़ा पहनना पाप बताया हुआ है इसीलिए पंडित जी पंजाबी कुर्ता नहीं पहनते, पर चूँकि आज लाट साहब के आने की वजह से नंगे बदन नहीं आ सकते थे अतः बनियान पहनकर आये हैं। बनियान बुनी हुई चीज है; सिला हुआ कपड़ा पहनने के पाप से बचने के लिए पंडित जी ने यह तरकीब निकाली है।

बनियान देखकर हम लोग इतने मुग्ध हो गये थे कि उस वक्त हम सब उनकी गाली-गुफता, तीक्ष्ण दृष्टि वगैरह सबके लिए तैयार बैठे थे, पर न जाने क्यों उस दिन उन्होंने अपनी रुटीन के माफिक कुछ भी नहीं किया। डाँटा भी नहीं, आँखें भी लाल नहीं कीं, और लाट आ रहे थे इसलिए टेबिल पर पाँव लम्बे करने का तो सवाल ही नहीं उठता था। वह कुर्सी पर अत्यन्त गंभीर होकर बैठे रहे।

पद्मलोचन को डर-वर जरा कम ही था। खुशी में पागल होकर बोला, 'पंडित जी बनियान कितने में खरीदी आपने?' आश्चर्य, पंडित जी खिसियाये नहीं जरा भी। मरी हुई आवाज में बोले, 'सवा रुपये में'।

आधा मिनट भी नहीं बीता होगा कि पंडित जी ने दोनों हाथ से कभी इधर तो कभी उधर खुजाना शुरू कर दिया। पीठ पर जहाँ हाथ नहीं पहुँचता वहाँ कभी

बायें हाथ से तो कभी दाहिने हाथ से खुजाने की चेष्टा करते तो कभी मुँह बनाकर बनियान के अन्दर हाथ डालकर इधर-उधर खर्र-खर्र खुजाते ।

एक तो जीवन में कभी शरीर के उत्तमांग में उन्होंने कुछ पहना ही नहीं और जब पहना तो बनियान पहनी, वह भी कोरी बनियान ।

घोड़े की पीठ पर पहले-पहल जीन रखने से वह आकांक्ष को और दोनों पाँव उठाकर जिस तरह तड़पता है अंत में पंडित जी की भी वही हालत हो गयी । कभी कछुआ स्वर से अस्फुट आर्तनाद करते हुए कहते, 'हे राधामाधव यह कैसी प्रसव-यन्त्रणा है' और कभी एक हाथ से दूसरे हाथ को दबाकर दाँत भींचकर स्वयं को रोकने की चेष्टा करते—क्योंकि लाट साहब के सामने तो सारा बदन खुजाया नहीं जा सकता था ।

आखिर मैं बिना बोले नहीं रह सका—'पंडित जी आप बनियान उतार दीजिये । मुझे खिड़की से लाट साहब आते हुए दिखाई दे जायेंगे । मैं बता दूँगा, उस वक्त आप पहन लीजियेगा ।'

पंडित जी बोले, 'अरे जड़भरत, इस प्रसव-यन्त्रणा को अब उतारना नहीं है । ऐसे ही पहनने का अभ्यास हो जायगा । मैं हाथ जोड़कर बोला, 'एक दिन में अभ्यास नहीं होगा पंडित जी, आप उसे उतार ही दीजिये ।'

असल में पंडित जी उतारना ही चाहते थे, सिर्फ हम लोगों में से किसी एक के मॉरल सपोर्ट (Moral support) की प्रतीक्षा कर रहे थे । तब भी संदेहात्मक दृष्टि से बोले, 'तू तो निरा मर्कट है—मुझे डुबोयेगा तो नहीं अंत में ? तूने मुझे होशियार नहीं किया और लाट आ गये तो ?'

मैंने इहलोक-परलोक दोनों को साक्षी बनाकर कसम खायी तब कहीं जाकर उन्होंने बनियान उतारी । बनियान को टेबिल पर रख कर उसको ऐसी घृणा भरी नजरों से देखा उन्होंने कि अगर कोई उनकी चोटी भी काट देता तो भी वे उसकी तरफ इससे अधिक घृणामय दृष्टि से नहीं देख सकते थे । फिर खोया हुआ शरीर वापस मिल जाने पर जी भरकर खुजाया उन्होंने । छाती, कमर सब लाल-लाल चकत्तों से भर गयी ।

उसके बाद कोई विपद नहीं घटी । पंडित जी रह-रहकर राधामाधव का स्मरण करते रहे, मैं खिड़की से बाहर देखता रहा और उधर दूसरे छात्रों ने बनियान के नाम-धाम, किस दूकान से खरीदी, सस्ती है कि महंगी आदि बातों को लेकर आलोचना करनी शुरू कर दी ।

मैंने समय पर वार्निंग दे दी और पंडित जी ने फिर उस यन्त्रणा को अपने उत्तमांग पर धारण कर लिया ।

लाट आये और साथ में डिप्टी कमिशनर, डायरेक्टर, इन्स्पेक्टर, हेडमास्टर, नित्यानन्द और लाट साहब के ए. डी. सी., फे. डी. सी. न जाने कौन-कौन बरामदे में भीड़ लगाकर खड़े रहे। हलो पंडित कहकर साहब ने हाथ बढ़ाया। राज-सम्मान पाकर पण्डित जी की सारी यन्त्रणा जैसे धूमन्तर हो गयी। बार-बार झुके, झुक कर साहब को सलाम किया। यह अनादृत पंडित श्रेणी जरा-सा सम्मान पाकर ही किस तरह विगलित हो जाती थी यह उनकी उस वक्त की मुखाकृति देखे बिना अनुमान लगाना मुश्किल है।

हेडमास्टर साहब पण्डित जी की कृत तद्धतिवाली सनक जानते थे, इसलिये उन्होंने निर्भय होकर व्याकरण के सर्वोच्चस्थल से विहंग शब्द की व्याख्या पूछी। हम करीब दस लड़के एक साथ चिल्ला उठे, 'विहायस पूर्वक गम धातु ख'। लाट साहब हँसकर बोले, 'वन ऐट ए टाइम प्लीज'। आश्चर्य! लाट साहब ने हम लोगों से 'प्लीज' कहा। उसके बाद किसी के मुँह से बात नहीं निकली। हेडमास्टर साहब ने फिर पूछा, 'विहंग' पर हम लोग चुप,—प्लीज का नशा तब तक उतरा नहीं था। अंत में यह हुआ कि व्याकरण में निपट मूर्ख लड़के ने हमारा पहले वाला सुना-सुनाया उत्तर दुहराकर नाम कमा लिया और हम लोग बेवकूफों की तरह देखते ही रह गये।

लाट साहब ने तब तक पंडित शब्द के मूल को लेकर हेडमास्टर साहब के साथ अंग्रेजी में बातचीत करनी शुरू कर दी थी। हेडमास्टर साहब ने क्या कहा यह तो मुझे नहीं मालूम, हाँ रवीन्द्रनाथ ने अवश्य पंडितों के धर्म की जड़शीलता की ओर व्यंग करने हुए कहा है कि जिसका सब कुछ पंड अर्थात् नष्ट हो गया है वही पंडित है।

शायद रवीन्द्रनाथ को यह नहीं मालूम था कि अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप हमारे पंडितों का बिल्कुल ही सर्वनाश हो गया है, नहीं तो व्यंग करने से पहले जरा सोच कर देख लेते।

खैर, छोड़ो वह बात। लाट साहब चले गये। जाने से पहले पंडित जी की तरफ एक हल्का-सा नाँड करते गये और बस पंडित जी गर्व से ऐसे फूले कि बनियान पहनने के कारण होने वाली खुजलाहट भी भूल गये। हम लोगों ने दो-तीन बार याद दिलाया तब वहीं जाकर वह उनके श्री अंग से विलग हुई।

तीन दिन की छुट्टी के बाद फिर बंगला क्लास लगी। पंडित जी उस दिन टेबिल पर दोनों पाँव रखकर सोये नहीं, बस आँखें बंद करके बैठे रहे। इस बारे में बिल्कुल ठीक अन्दाज़ न लग पाने के कारण उस वक्त तक क्लास में हो-हल्ला शुरू नहीं हुआ था।

किसी की तरफ भी देखे बिना अचानक पंडित जी बादलों की तरह गरजे, 'अरे, ओरे शाखामृग ।'

जिनका कंठ नीला है वे हैं नीलकंठ—अर्थात् योग रुद्धार्थ होता है शिव । और शाखाओं पर जो मृग विचरण करता है उसे कहते हैं शाखामृग, अर्थात् बन्दर, यानी क्लास में मैं । अतः उत्तर दिया—'जी' ।

पंडित जी ने पूछा, बता तो लाट साहब के साथ कौन-कौन आया था । मैंने पूरी सूची दुहरा दी । यहाँ तक कि चपरासी नित्यानन्द को भी नहीं छोड़ा ।

बोले, 'नहीं पूरा नहीं हुआ । और कौन था ?' मैं बोला, 'कहा न, कितने ही ए० डी० सी० या प्राइवेट सेक्रेटरी वगैरह थे साथ में । वे सब तो क्लास के अन्दर आये नहीं थे ।'

पंडित जी ने भरे हुए मेघों की तरह घोर गर्जना को और भी गंभीर करते हुए कहा, 'एक ही बात को पच्चीस बार क्यों दुहरा रहा है रे मूर्ख ! मैं न तो बहरा हूँ और न तेरी तरह अमानुष हूँ ।'

मैं कातर स्वर में बोला, 'और तो कोई भी नहीं था पंडित जी, पद्मलोचन से क्यों नहीं पूछ लेते, वह तो सबको जानता है ।'

अचानक पंडित जी ने आँखें मलीं और मुंह बिगाड़ कर बोले, 'ओ हो, ये लेखक बनेंगे । आँखों से तो दिखाई नहीं देता, काना दिवान्ध कहीं का'—रात्रन्ध्य होता तो भी एक बात थी । क्यों, लाट साहब का कुत्ता दिखाई नहीं दिया ? यही पर्यवेक्षण शक्ति लेकर—

मैं जल्दी से बोला, 'हाँ,-हाँ देखा था । वह तो एक सेकेंड के लिए क्लास में घुसा था ।'

पंडित जी बोले, 'कभी-कभी बन्दर और कुत्ता एक साथ रहते हैं न ! अच्छा वह बात जाने दे । कुत्ते में क्या वैशिष्ट्य था बता तो ।'

तकदीर से याद आ गया । बोला, 'जी एक टाँग कम थी इसलिए लँगड़ा-लँगड़ा कर चल रहा था ।'

'हूँ' वह कर पंडित जी ने फिर आँखें बन्द कर लीं । काफी देर बाद बोले, 'सुन ! शुक्रवार के दिन छुट्टी के बाद भी काम होने की वजह से काफी देर हो गयी थी जाने में मुझे । घाट पर जाकर देखा कि मेरी नौका का माँझी एक अपरिचित व्यक्ति के साथ बातचीत कर रहा था । आदमी मुसलमान था । उसके सिर पर मखमल की तंग टोपी थी । मुझको सलाम-वलाम करके उसने अपना परिचय दिया । वह हमारे गाँव के मुनव्वरउल्ला का साला है; लाट साहब का अर्दली है इसलिए साहब के साथ यहाँ आया हुआ है । वहन से मिलने जाने के

लिए उस दिन की छुट्टी ली थी उसने । घाट पर चूँकि दूसरी नौका नहीं थी अतः वह मेरी नौका से जाना चाहता था ।’

पंडित जी का घर नदी के उस पार होने के कारण वे बरसात में नाव से ही जाया करते थे और सबको अनायास लिपट दे दिया करते थे ।

पंडित जी आगे बोले, ‘उस आदमी के साथ बात-चीत हुई थी । लाट साहब की सब खबरें मालूम रहती हैं उसको, तेरी तरह काना नहीं है वह, जो कुछ भी देखता है सब याद रखता है । लाट साहब के कुत्ते की एक टाँग कैसे रेल के पहिए से कट गयी यह भी उसने खोल कर बताया ।’

उसके बाद फिर काफी देर चुप रहने के बाद मन ही मन पंडित जी धीरे-धीरे बोले—मैं, ब्राह्मणी, वृद्धा माता, तीन लड़कियाँ, विधवा बुआ और दासी, सब मिलकर हम लोग आठ जने हैं ।’

इतना कह कर अचानक बात पलट कर उन्होंने मुझसे पूछा, ‘मदनमोहन गणित कैसा पढ़ाता है रे ?’

मदन मोहन बाबू हमारे गणित के मास्टर हैं और कभी पंडित जी के छात्र थे । मैंने जवाब दिया, ‘अच्छा ही पढ़ाते हैं ।’

पंडित जी बोले, ‘अच्छा-अच्छा तो सुन । मुनंवरउल्ला के साले ने बताया कि लाट साहब के कुत्ते पर प्रति मास पचहत्तर रुपये खर्च होते हैं । अब देखता हूँ तूने गणित कैसा सीखा है ? बता तो अगर एक कुत्ते के पीछे हर महीने ७५) खर्च होते हों और उस कुत्ते की तीन टाँगें हों तो हर टाँग पर कितना खर्च हुआ ?’

मैं तो डर रहा था कि पंडित जी कोई कठिन सवाल पूछेंगे । सन्तोष की साँस लेकर जल्दी से बोला, ‘जी पच्चीस रुपये ।’ पंडित जी बोले, ‘साधु, साधु ।’

फिर कहने लगे, ‘अच्छी बात है । पर मैं, ब्राह्मणी, वृद्धा माता, तीन लड़कियाँ, विधवा बुआ और दासी सब मिलकर आठ होते हैं और इतने लोगों के जीवन-यापन के लिए मुझे महीने में पच्चीस रुपये मिलते हैं । अब बता तो समझूँ कि तुझमें कितनी अक्ल है; यह ब्राह्मण-परिवार लाट साहब के कुत्ते की कितनी टाँग के बराबर हुआ ?’

मैं अवाक् !

‘बोल ना !’

मैं सिर झुकाये बैठा रहा । सिर्फ मैं ही नहीं पूरी की पूरी क्लास ।

पंडित जी हुंकार कर बोले, ‘उत्तर दे ।’

मूर्ख की तरह एक बार पंडित जी के मुँह की तरफ आँखें मिचमिचा कर

देखा—देखा उनका मुँह लज्जा, घृणा, तिक्तता से विकृत हो गया था । क्लास के सब लड़के समझ गये थे कि पंडित जी किस तरह हम लोगों को साक्षी बनाकर आत्म श्रवमानना के निर्मम परिहास को अपने ऊपर थोप रहे थे ।

पंडित जी मानो उत्तर की प्रतीक्षा में ही बैठे रहे । उस दाहण निस्तब्धता को भेदकर कितनी देर बाद पीरियड खत्म होने का घंटा बजा, मुझे मालूम नहीं । पर उस निस्तब्धता की निपीड़ित स्मृति कभी भी मेरे हृदय-पटल से नहीं उतरेगी ।

जिस मूर्ख ने, निस्तब्धता सुनहरी है (Silence is golden) कहा है वह मरने से पहले अगर एक बार मिल जाय तो.....।



आइन्सटाइन और इन्दुबाला

विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय का नाम 'पथेर पांचाली' के लेखक के नाम से विख्यात है । ग्राम-जीवन का जितना स्पष्ट व गहन वर्णन आपकी रचनाओं में मिलता है इतना शायद ही कहीं मिलता हो । एक ग्रामीण के जीवन से संलग्न छोटी से छोटी चीज भी आप की नजरों से नहीं बची है । भाषा सरल व समृद्ध है ।

बी० ए० पास करने
के बाद कुछ
समय

चौबीस परगना
जिले के हरिनामि

नामक स्थान पर स्कूल-

मास्टरी की और फिर भागलपुर के

पास के एक जमींदार के स्टेट की मैनेजरी की ।

वहाँ से लौट कर फिर से कलकत्ते में स्कूल-

मास्टरी की । आपका जन्म सन् १८९७ में और स्वर्गवास

१९५० में हुआ !

दृष्टि-दीप, नवागत, पथेर पांचाली, तृणांकुर, आरण्यक, अपराजित, विघ्न मास्टर आदि आपकी उल्लेखयोग्य रचनाएँ हैं ।



आइन्सटाइन क्यों दार्जिलिंग जाते-जाते रानाघाट उतर गये थे या वहाँ के स्थानीय म्युनिसिपल हॉल में “On...इत्यादि-इत्यादि के सम्बन्ध में भाषण देने के लिए उत्सुक हुए थे, यह कहना मुश्किल है। चूँकि मैं उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था अतएव प्रत्यक्षदर्शी विवरण आप लोगों के सामने प्रस्तुत करने में लाचार हूँ। तो भी जैसा मैंने दूसरे के मुँह से सुना है वैसा बता सकता हूँ।

असली बात तो यह है कि नात्सी जर्मनी से निर्वासित होने के बाद आइन्सटाइन शायद आर्थिक कठिनाई में पड़ गये थे इस कारण वक्तृता करके कुछ अर्थ उपार्जन के उद्देश्य से ही उनका भारत आगमन हुआ था। वे विभिन्न स्थानों में वक्तृता देते हुए घूम रहे थे यह बात सभी जानते, अतः मैं नये रूप में उसी को फिर से नहीं दुहराऊँगा।

कृष्णनगर कालेज के गणित के तत्कालीन अध्यापक रायबहादुर नीलाम्बर चट्टोपाध्याय एक योग्य व्यक्ति थे। सिनेट हॉल में “On the unity & universality of forces” पर अद्भुत वक्तृता सुनकर वे भी अन्य

चिन्तनशील व्यक्तियों की तरह अभिभूत हो गये थे । अपने कालेज में आइन्सटाइन को एक बार बुलाकर भाषण कराने की उनकी बहुत इच्छा थी पर प्रिन्सिपल ने आपत्ति खड़ी कर दी ।

वे बोले — “नहीं-नहीं रायबहादुर, ऐसे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर ऐसे दिनों में एक जर्मन —”

उत्तेजित होकर रायबहादुर बोले, (वे उसी तरह उत्तेजित हो गये थे जिस तरह संध्या समय राममोहन बकील की बैठक में भागवत पाठ के समय किसी के द्वारा विरुद्ध तर्क उपस्थित करने पर वे उत्तेजित हो जाया करते थे) — “यह क्या कह रहे हैं महाशय आप ! जर्मन से क्या मतलब ? जर्मन ? आइन्सटाइन जर्मन हैं ? उन जैसे महामानव का, उन जैसे ऋषि वैज्ञानिक का भी देश होता है ? जाति का बंधन होता है ? मैं कहता हूँ —”

प्रिन्सिपल बोले — “मैं भी नहीं कहता कि वह होता है । पर आज-कल की जैसी अवस्था है —” दोनों प्रवीण अध्यापक घोर तर्क में जुट गये ।

प्रिन्सिपल दर्शन-शास्त्र के पंडित थे, उन्होंने मध्ययुगी स्कलस्टिक दर्शन के प्रधान आचार्य जान स्कोट्स का उदाहरण दिया । आयर्लैंड में जन्म ग्रहण करने पर भी नवीं शताब्दी के प्राचीन-पन्थियों द्वारा उत्पीड़ित होकर फ्रांस में आश्रय लेने के लिए बाध्य होना पड़ा था उन्हें । फिर आयर्लैंड लौट पाये थे क्या वे ? असल में आदमी को कहाँ देखते हैं लोग, उसके मतमत को ही मूल्य देते हैं ।

जो भी हो, अंत में जब प्रिन्सिपल राजी नहीं हुए तो मजबूर होकर रायबहादुर को चुप होना पड़ा । इसी बीच उनके कानों में पड़ा कि आइन्सटाइन शीघ्र ही दार्जिलिंग जायेंगे । भारतवर्ष आने के बाद से अब तक अनेक स्थानों में वक्तृता देने में व्यस्त रहने के कारण वे हिमालय नहीं देख पाये थे । इस बार इतने पास आकर दार्जिलिंग देखे बिना जाने का इरादा नहीं था ।

रायबहादुर ने सोचा कि दार्जिलिंग जाते वक्त बीच में रानाघाट उतार कर वहाँ एक सभा में आइन्सटाइन से वक्तृता करा दी जाय तो कैसा हो ?

ग्रांड होटल में आइन्सटाइन से मिले जाकर रायबहादुर ।

आइन्सटाइन बोले, “भारतवर्ष के दर्शन के बारे में मुझे कुछ बताइये ।”

रायबहादुर विपत्ति में पड़ गये । वे थे गणित के अध्यापक; दर्शन, विशेषकर भारतीय दर्शन की कोई खबर नहीं रखते थे, तब भी तकदीर से बीच-बीच में गीता पढ़ने का अभ्यास था । अतः कूलहीन समुद्र में गीता-रूपी नाव का अवलम्बन लेकर दो-एक बात कहने की चेष्टा की उन्होंने । जैसे ‘वासांति जीर्णानि’ वगैरह ।

आइन्सटाइन बोले, “वेदान्त-दर्शन पर मैक्समूलर के प्रबन्ध पढ़कर किसी समय

संस्कृत सीखने की बड़ी इच्छा हुई थी। दर्शन में मैं स्पिनोजा का शिष्य हूँ। स्पिनोजा वा दर्शन गणित के फार्म की तरह क्रमबद्ध है। स्पिनोजा का मन गणितज्ञ जैसे स्रष्टा का मन था, इस वजह से मैं भी उनकी ओर आकृष्ट हो गया था। किन्तु वेदान्त के सम्बन्ध में मैक्समूलर का प्रबन्ध पढ़कर मुझे जैसे एक नये राज्य का संधान मिल गया था। यूक्लिड की तरह स्पिनोजा भी विशुद्ध वास्तववादी थे। वहाँ कूड तर्क भी बंधे पथ पर चलता है। पर मैं अन्दर ही अन्दर कल्पना-विलासी हूँ—।”

रायबहादुर अवाक होकर आइन्सटाइन के मुँह की ओर देखते हुए बोले, “आप !”

आइन्सटाइन मुस्कुरा पड़े, बोले, “व्यों, आप मेरे काल और क्षेत्र के मिलन को कल्पना के साँचे में ढाल कर विवेचना नहीं करते क्या ?”

रायबहादुर और भी अवाक हुए। हिचक-हिचक कर बोले, “नये डाइमेंशन के अनुसंधान-कर्त्ता आप हैं—आपको कल्पना-विलासी कहते हुए—”

पर साथ ही साथ वर्तमान युग के इस श्रेष्ठतम वैज्ञानिक के कविमुलभ दीर्घ केश व स्वप्न-भरी अपूर्व आँखों पर नजर पड़ते ही रायबहादुर के मुँह की बात मुँह में ही रह गयी। रायबहादुर ने सोचा कि कल्पना प्रखर हुए बिना शायद बड़ा वैज्ञानिक नहीं बना जाता। वे कुछ कहने जा ही रहे थे कि आइन्सटाइन ने पास की छोटी टेबिल से चुस्ट का डिब्बा उठाकर रायबहादुर के सामने रखवा। अपने हाथ से एक चुस्ट निकाला और छुरी से उसका अग्रभाग काटकर रायबहादुर के हाथ में दिया। रायबहादुर का बंगाली मन संकुचित हो उठा। इतने बड़े वैज्ञानिक के सामने वे सिगार जलायेंगे, जो गणित के एक नगण्य मास्टर हैं ? और फिर वे साहब हैं यह भी तो देखना चाहिए। साहब जात जाग्रत देवताओं की जात होती है। रायबहादुर ने एक सिगार लेकर कहा—“आप ?”

“धन्यवाद। मैं धूम्रपान नहीं करता।”

“ओ !”

“मैं एक बात सोच रहा था।”

“क्या, कहिए।”

रानाघाट में सभा करने से कितने लोग इकट्ठे हो जायेंगे कुछ अन्दाज है आपको ? कैसी जगह है रानाघाट ?”

“जगह अच्छी ही है। लोग भी काफी हो जायेंगे।”

“कुछ रुपयों की अभी जरूरत है। जो थे जर्मनी छोड़ आया हूँ। बैंक से एक मार्क भी नहीं निकाल पाया। एक तरह से बिल्कुल दिवालिया ही समझिए मुझे।”

“मैं रानाघाट में जी-जान से कोशिश कर रहा हूँ सर ।”

“वहाँ बड़ा हॉल मिल जायगा क्या ?”

“इतना तो नहीं, तब भी म्युनिसिपल हॉल है । बुरा नहीं है, काम चल जायगा ।”

कुछ देर बाद रायबहादुर ने विदा लेनी चाही, सोचा इतने बड़े आदमी के समय पर अत्याचार करना अच्छी बात नहीं है ।

आइन्सटाइन बोले—“मेरे कुछ छपे हुए कागज़ व हैंडबिल लेते जाइए । भाषण का विषय क्या होगा यह आपको बाद में बताऊँगा । हाँ, टिकट के दाम कितने रखे जाँय ?”

“बहुत ज्यादा नहीं—यही ले लीजिये—”

“तीन मार्क—दस शिलिंग ?”

“जी नहीं सर ! बहुत ज्यादा हो जायगा । ये सब गरीब जगहें हैं । दस शिलिंग आजकल दस रुपये के आस-पास होगा । उतने दामों का टिकट खरीदने वाले नहीं हैं इस मुल्क में सर ।”

“पाँच शिलिंग ?”

“अच्छा उतना रख लीजिये, पर छात्रों के लिए एक शिलिंग ।”

आइन्सटाइन हँस कर बोले, “यूनिवर्सिटी के छात्रों को टिकट नहीं खरीदना पड़ेगा । मैं स्वयं भी स्कूल-मास्टर हूँ । मेरे ऊपर उनका स्वत्व है । बम्बई व बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में भी यही हुआ था । वहाँ भी छात्रों ने टिकट नहीं खरीदा था । यहाँ भी वे बिना टिकट आ सकते हैं । ये लीजिये छपे हुए हैंडबिल वगैरह—”

रायबहादुर ने बिल हाथ में पढ़ने के लिए उठाए पर देखकर विषण्ण हो गये, बोले—“यह क्या सर, ये तो फ्रेंच भाषा में लिखे हुए हैं !”

“फ्रेंच में तो हैं ही । पेरिस में वक्तृता देते समय छपवाये थे । क्यों, फ्रेंच कोई नहीं समझेगा क्या ? मैंने तो उस दिन सुना था कि यहाँ यूनिवर्सिटी में फ्रेंच पढ़ायी जाती है ।”

“जी नहीं । शायद एक-दो आदमी समझ लें । फ्रेंच उस तरह नहीं पढ़ायी जाती । यहाँ अंग्रेजी ही चलती है । कोई नहीं समझेगा सर ।”

“तो यह बात है । अच्छा तो आप अनुवाद करके वहाँ किसी प्रेस में छपवा लीजियेगा क्या ?”

“वह... अच्छा सर ।”

रायबहादुर ने मन ही मन सोचा—यहाँ से बालीगंज जाकर विनोद का

धारणापन्न होऊँगा। छोकरा अच्छी फ्रेंच जानता है। इतने बड़े आदमी के सामने कैसे कहा जाय कि 'नहीं जानता'।

विनोद चौधरी उनका बड़ा साला है। पंडित आदमी है। कई भाषाएँ जानता है वह। उसने सोत्साह बिलों का बँगला व अंग्रेजी अनुवाद करके कहा, "चटर्जी महाशय, मैं रानाघाट अवश्य आऊँगा उस दिन। थियोरी आफ रिलेटिविटी के साथ मेरा भी थोड़ा-बहुत परिचय है, पर वह है लिडेन वुल्टेन की पाप्युलर किताब के सहारे। तब भी आइन्स्टाइन को मैं इस युग का ऋषि मानता हूँ। सचमुच के द्रष्टा ऋषि। सत्य का जो आविष्कार करते हैं वही मन्त्रद्रष्टा ऋषि होते हैं। लम्बे-लम्बे हलमार्क इक्वेशन मैं न तो समझ पाता हूँ और न कर पाता हूँ पर कौन किस दर का है उतना—"

राय बहादुर ने देखा चतुर साला उनको इंगित करके बात कह रहा है। हँसते-हँसते बोले, "अर्थात्, लगता है उसके साथ-साथ मेरी दर भी ठीक कर डाली विनोद बाबू? ठीक है, ठीक है।"

"राम राम ! छिः छिः, मैं क्या ऐसी बात कह रहा हूँ चटर्जी महाशय ?"

"नहीं कहते क्या ?"

"स्पेस—टाइम—कन्टिन्यूअम के मोहजाल में पड़कर मैंने कब और किस अवस्था में क्या-क्या कहा है, वह सब क्या हलफ उठाकर कहा जा सकता है चटर्जी महाशय ? अच्छा अब इस वक्त यहाँ से नहीं जा रहे हैं आप।"

"नहीं-नहीं, मेरा रहना नहीं हो सकेगा। बहुत से काम करने हैं। भद्रपुरुष को दो पैसे मिल जायँ इसका भार मेरे ही ऊपर है। चल्नू, म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन, वाइसचेयरमैन को पकड़ूँ जाकर। एक नम्बर के घाघ हैं सब। हॉल अगर मिल जाय तो—"

"कह क्या रहे हैं आप चटर्जी महाशय ? आइन्स्टाइन का नाम सुनकर कोई हॉल नहीं देगा ? ओहो ! सुनकर भी दुख होता है कि इतने बड़े वैज्ञानिक को आज इस वृद्धावस्था में पैसे के लिए वक्तृता देते हुए घूमना पड़ रहा है—द वर्ल्ड डज नॉट नो इट्स ग्रेटेस्ट—"

"तुम अभी भी बच्चे हो विनोद। वो जो तुमने आखीर में कहा वही बात ठीक है। बहुत भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। पाँच चालीस की ट्रेन से ही जाता हूँ।"

*

इसके बाद कई दिनों तक रायबहादुर बहुत ही व्यस्त रहे। रानाघाट म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन, वाइसचेयरमैन, स्कूल के हेडमास्टर, वकील, मुख्तार, सर-

कारी कर्मचारियों व व्यवसायियों आदि लोगों से मिल-मिल कर सब बताया । आश्चर्य हुआ उनको यह देखकर कि सभी को यथेष्ट उत्साह, यथेष्ट आनन्द था । ऐसा लगता था जैसे सभी आकाश का चाँद पाने के लिए उत्सुक हो उठे हों ।

वृद्ध मुख्तार अभय बाबू बोले, “क्या नाम बताया साहब महाशय का ? आ — क्या ? आ-इन्स-टाइन ? ठीक है, ठीक है । हाँ म...श...हू...र नाम है । सभी जानते हैं, सभी पहचानते हैं । वह लोग हैं स्व नाम धन्य पुरुष—नाम सुना हुआ तो है ही ।” गुस्से में भरकर रायबहादुर मन ही मन बोले—तुम्हारा सिर सुना हुआ है, डैम्ड ओल्ड ईडियट । जैसे वह तुम्हारा कपड़े का व्यापारी श्याम-चाँद पाल हो ? स्वनाम धन्य पुरुष—सात जन्मों में अगर कभी यह नाम तेरे वानों में गया हो । भूठे गवाह बना-बना कर तो जन्म बिताया है, अब आइन्सटाइन को स्वनाम धन्य पुरुष कहने चला है । इडियोसी की भी एक सीमा होनी चाहिए ।

निर्दिष्ट दिन रायबहादुर कृष्णनगर कालेज के कुछ छात्रों को साथ लेकर सुबह की ट्रेन से रानाघाट उतरे । उनके साले विनोद चौधरी ने अफसोस प्रगट करते हुए चिट्ठी लिखी कि विशेष कार्यवश उसका आना सम्भव नहीं हुआ, आइन्सटाइन की वक्तृता सुनना क्या सबके भाग्य में होता है, इत्यादि । उसके लिए रायबहादुर के मन में भी दुख था, छोकरा सचमुच पंडित आदमी है, आज की ऐसी सभा में आने का सुयोग बेचारे को नहीं मिला । तकदीर है ।

रानाघाट स्टेशन से बाहर आने पर सामने की प्राचीर पर दृष्टि पड़ते ही रायबहादुर ठिठक कर खड़े हो गये । यह क्या ! दीवाल पर एक काफी बड़ा बहु-रंगा विज्ञापन लटका हुआ था । उसमें लिखा था —

वाणी सिनेमा-घर में (नीले रंग से)

आ रही हैं ! आ रही हैं !! (काले रंग से)

आ रही हैं !!! (काले रंग से)

कौन ?? (काले रंग से)

कब ?? (काले रंग से)

सुप्रसिद्ध चित्रतारिका इन्दुबाला देवी (लाल रंग से)

आज रविवार २७ कार्तिक शाम को ५।। बजे (नीले रंग से)

जन साधारण का अभिवादन करेंगी (काले रंग से)

प्रवेश शुल्क—५), ३), २), श्रीर १ रु० (काले रंग से)

महिलाओं के लिए—५) श्रीर २) (काले रंग से)

ऐसा सुयोग कोई मत छोड़ियेगा (लाल रंग से)

यह अच्छी मुसीबत आ पड़ी जाने कहाँ से । कार्तिक मास के अंतिम दिनों

की सुबह भी माथे पर पसीना आ गया रायबहादुर के। रुमाल निकाल कर पसीना पोंछा और एक बार फिर अच्छी तरह तारीख पढ़ी उन्होंने। नहीं-नहीं, आज ही है। आज ही रविवार २७ कार्तिक है। अन्धमनस्क मन कुछ दूर आगे चलने पर एक और वैसा ही विज्ञापन देखा। थोड़ी दूर आगे बढ़ते कि वही रंग-विरंगा विज्ञापन। म्युनिसिपैलिटी के वाइस चेयरमैन के घर पहुँचते-पहुँचते करीब ३६ विज्ञापन विभिन्न स्थानों पर चिपकाये हुए देखे उन्होंने।

वाइस चेयरमैन श्री गोपाल बाबू बगीचे के सामने के छोटे बरामदे में बैठे चिकनी धोती पहने तेल मल रहे थे। राय बहादुर को देखकर जरा सँभलकर बैठे। हँस कर बोले—“बड़े भाग मेरे। इतनी सुबह ? नमस्कार।”

“नमस्कार, नमस्कार ! स्नान की तैयारी हो रही है ? छुट्टी के दिन भी इतनी जल्दी ?”

“जी हाँ, स्नान सुबह ही कर लेता हूँ।”

“घर पर ही ?”

“नहीं जी, चूनी जाता हूँ। गोता लगाये बिना स्नान करने से—आदत बचपन की ही है। बैठिये, बैठिये आज जब आये हैं तो दोपहर को गरीब के घर ही रुखा-सूखा—”

“उसके लिए फिकर मत करिये आप। नो फार्मैलिटी। मेरा मौसिरा भाई नीरेन यहाँ रहता है, उसके यहाँ नहीं गया तो वह गुस्सा करेगा। पिछली बार भी नहीं जा पाया था।”

“तो फिर चाय तो चलेगी ?”

“उसमें आपत्ति नहीं है, पर वह तो बाद को देखेंगे। असल में जिस कारण आना हुआ, वह—यह क्या गड़बड़ देख रहा हूँ ? ये कौन इन्दुबाला देवी आ रही है आज ही वाणी सिनेमा में—”

“हाँ देखा तो मैंने भी है।”

“दिन शायद आज ही है।”

“हाँ मैं भी वही सोच रहा था। क्लेश होगा न।”

“अब तो हम लोग दिन भी नहीं बदल सकते। पूरी तैयारी हो गयी है। हम लोगों के भी हैंडबिल, विज्ञापन बाँटना आदि सब कुछ हो गया है। आइन्स्टाइन इसी दार्जिलिंग मेल से आ रहे हैं।”

“मैं भी तो यही सोच रहा था। अब.....पर जानते हैं मुझे क्या लग रहा है ? जो लोग सिनेमा में इन्दुबाला को देखने जायेंगे, वे साहबों का लेक्चर सुनने नहीं आयेंगे। साहबों की सभा में जो आने वाले होंगे वे जरूर ही आयेंगे।”

आइन्सटाइन को 'साहेब' कहकर सम्बोधित करते देख रायबहादुर मन ही मन कुढ़ गये। ऐसी जगह लाने चले हैं वे विश्व के श्रेष्ठतम वैज्ञानिक आइन्सटाइन को। वह क्या जूट मिल का मैनेजर है, या रेल का टी० आई०, जो 'साहेब' 'साहेब' कर रहा है। कुछ तो सोच-समझकर बात करनी चाहिए। लेकिन मुँह से बोले, "हाँ, यह तो ठीक है।"

वाइसचेयरमैन श्रीगोपाल बाबू रानाघाट में अपने निश्चल आतिथ्य के लिए प्रसिद्ध थे। चाय आयी और साथ में एक तश्तरी में नाश्ता भी। चाय-पान के पश्चात रायबहादुर उठे। बोले, "अच्छा चलूँ, और भी कई जगह जाना है। कइयों से मिलना पड़ेगा, बहुत कुछ ठीक करना पड़ेगा। और हाँ, म्युनिसिपल हॉल की चाबी—"

श्रीगोपाल बाबू बोले—“हाल के नौकर राजनिधि को अभी भेज देता हूँ। मेरा घर का नौकर भी साथ चला जायगा। वे लोग हॉल खोलकर सब ठीक कर देंगे। वहाँ फ्री रीडिंग-रूम है, आज छुट्टी के दिन सुबह लोग अखबार पढ़ने आयेंगे। उन लोगों में जो छोकरे-छाकरे होंगे उनको पकड़ कर कुर्सी-बेंच लगवाए ले रहा हूँ। कुछ ख्याल मत करियेगा।”

श्रीगोपाल बाबू ने स्नान करके घर आने पर उनकी बड़ी लड़की (श्रीगोपाल बाबू आज तीन सालों से विधवा हैं, बड़ी लड़की समुराल से आ गयी है, वही गृहस्थी की देखभाल करती है) बोली, “पिताजी, हम लोगों के लिए पाँच टिकट ला दो।”

“किसके टिकट?”

“क्यों, वाणी सिनेमा में शाम को इन्दुबाला आ रही है न—नाच-गाना होगा। हमारे मुहल्ले से सब लोग जा रहे हैं।”

“कौन जा रहा है?”

“सभी जा रहे हैं। अभी-अभी रागु, अलका, टेंपि, यतीन काका की लड़की डेंडस वगैरह आयी थीं। वह सब मिलकर एक साथ बाँक्स ले रही हैं, बाँक्स लेने से औरतों का २॥) का रिजर्व टिकट मिलता है। हम लोगों के लिए भी एक बाँक्स ले लो।”

“हाँ, बाँक्स नहीं कुछ और लूँगा। रुपये आसमान से बरसते हैं न। सन् १९०३ में कंधे पर जो एक बार जुआ रखी तो वह फिर उतरा ही नहीं। बस रुपये दो, रुपये दो—”

यह कहते-कहते अप्रसन्न मुख से दराज खोलकर एक दस का नोट और कुछ खुदरे रुपये निकाल कर लड़की के हाथ में दे दिये।

जरा देर बाद पड़ोसी राधाचरण नाग ने बैठक में भाँक कर कहा, “क्या हो रहा है श्रीगोपाल बाबू ?”

“आइए-आइए डाक्टर साहब, कहिए क्या खबर है ? चल रहे हैं न शाम को ?”

“हाँ, वही पूछने तो आया था। आप लोग जा रहे हैं न।”

“जायेंगे क्यों नहीं। रानाघाट की तकदीर में ऐसा दिन कभी नहीं आया। जरूर जाना चाहिए।”

“मैं भी यही सोच रहा था। खर्च—वह तो लगा ही रहता है। पर ऐसा सुअवसर—घरवालों ने पकड़ लिया, दिये दस रुपए निकाल कर। अब छप्पन के करीब उम्र होने को आयी, जाने किस दिन आँखें बन्द हो जाँय, उससे पहले ही—”

“जरूर-जरूर, क्यों नहीं। वह सब सुनने का सौभाग्य जीवन में कब आता है ? हम रानाघाट के निवासियों का बड़ा सौभाग्य है जो यह दिन देखने को मिला।”

“मैं भी घर पर यही कह रहा था। उम्र होने को आयी, देख लूँ, सुन लूँ—फुछ रुपये ही तो जायेंगे।”

“उसके अलावा इतने बड़े एक विख्यात.....”

“उसमें क्या शक है। आजकल तो जहाँ देखो इन्दुबाला देवी। सुगन्धित तेल के विज्ञापन में देखो तो इन्दुबाला, साड़ी के विज्ञापन में देखो तो इन्दुबाला की तस्वीर। उसको प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य और वह भी रानाघाट जैसी घटिया जगह—क्या सौभाग्य की बात नहीं है ? जरूर है।”

श्रीगोपाल बाबू मुँह बाये नाग महाशय की तरफ देखते रह गये, पहले तो उनके मुँह से कोई बात ही नहीं निकली। करीब दो मिनट बाद जरा अटक-अटक कर बोले, “पर मैं उसके बारे में नहीं कह रहा था। मैं तो म्युनिसिपल हॉल में होने वाले साहब के लेक्चर के बारे में कह रहा था।”

भवें सिकोड़कर राधाचरण बाबू ने पूछा, “कौन साहब ?”

“क्यों आप नहीं जानते ? आइन्सटाइन—मिस्टर आइन्सटाइन—”

उदासीन स्वर में अचानक याद आ जाने की भंगिमा से राधाचरण बाबू जोले, “ओ, वही जर्मन कि इटालियन साहब ? हाँ, सुना तो था, मेरा जमाई कह रहा था। किस विषय पर तो लेक्चर देंगे जाने। वह सब और अब इस उम्र में ; लिखने-पढ़ने का भंभट तो बहुत पहले खतम कर दिया। वह सब करें स्कूल-कालेज के छोकरे-छाकरे—हाँ !”

श्रीगोपाल बाबू प्रतिवाद के क्षीण स्वर में कुछ कहने ही जा रहे थे कि राधाचरण बाबू फिर बोले, “तो आप क्या करेंगे सुनूँ जरा ?”

—“मेरी लड़कियाँ तो सिनेमा जा रही हैं, पर मुझे तो साहब की वक्तृता में जाना ही पड़ेगा। राय बहादुर नीलाम्बर बाबू बहुत कह गये हैं।”

—“कौन रायबहादुर ? ये नीलाम्बर बाबू कौन हैं ?”

—“कृष्ण नगर कालेज के प्रोफेसर। उन्हीं की कोशिश से यह सब हो रहा है। वह आकर विशेष—”

राधाचरण बाबू आँख मटकाते हुए बोले, “अरे भाई, एक बात कहता हूँ सुनो। एक ही दिन की तो बात है, चलो देख आया जाय। पिवचर की इन्दुबाला और जीवित इन्दुबाला में बहुत फर्क है। जीवन सफल हो जायेगा यह। वह सब साहब-वाहब तो बहुत देखे हैं। दोनों वक्त रानाघाट स्टेशन पर खड़े होकर दार्जिलिंग मेल, शिलांग मेल के वक्त देखो, कितने ही साहब दिखाई दे जायेंगे। पर भाई यह सुयोग—समझे कि नहीं ?”

कुछ अन्यमनस्क से होकर श्रीगोपाल बाबू बोले—“पर . . . पर—लेकिन रायबहादुर को वचन जो दे रक्खा है, वह क्या सोचेंगे—”

मुंह बिगाड़कर खीजते से राधाचरण बाबू ने जवाब दिया, “हाँ...। वचन दे रक्खा है रायबहादुर को। बड़े रायबहादुर हैं। इतना ओब्लिगेशन किस बात का है। कह देना, घर की सब लड़कियाँ जा रही थीं इसलिए मुझे भी साथ जाना पड़ा। जब वह ज़िद पकड़ कर बैठ गयीं तो क्या करता। और फिर बात बिल्कुल भूठ भी नहीं है।”

श्रीगोपाल बाबू ने खिन्नता से कहा, “वो—वो, वो तो ठीक ही है। वह बात तो—”

राधाचरण बाबू बोले, “राय बहादुर आर्ये तो अब यही कहना, समझे। उनसे भी वाणी सिनेमा में जाने का अनुरोध क्यों नहीं करते।

“जा रहे हैं ?”

“हाँ चलता हूँ। शाम को ठीक वक्त पर आऊँगा।”

✱

रायबहादुर स्थानीय जमींदार नीरेन चटर्जी के घर बैठे सभा के सम्बन्ध में परामर्श व आयोजन कर रहे थे।

नीरेन बाबू रायबहादुर के मौसरे भाई हैं, स्थानीय जमींदार व वकील। वकील

के देखते तो शायद ऐसे कुछ नहीं हैं, पर जमींदारी की आय व पूर्व-पुरुषों की संचित अर्थराशि के कारण कितने ही उन तक नहीं पहुँच पाते। शिक्षित आदमी तो हैं ही।

दोपहर का भोजन धनी मौसरे भाई के यहाँ किया रायबहादुर ने—मात्रा कुछ अधिक ही हो गयी। दो-एक बार निद्राकर्षण द्रुग् भी पर कर्तव्य की खातिर सो नहीं पाये।

नीरेन बाबू बोले, “अच्छा भैया, आज के भाषण में मुख्य बात क्या होगी ?

“ठीक तो नहीं मालूम, पर on the unity of forces यही विषय है। इसी से समझ लो।”

“उन्होंने स्पेस की अवस्था शोचनीय बना दी है, तुम क्या कहते हो ?”

“अर्थात् ?”

“Space को सीमाबद्ध कहते हैं। पहले की तरह असीम, अनन्त space अब नहीं रहा।”

“एम० एस० सी० में तुम्हारे पास मैथेमेटिक्स था ? Geometry of Hyperspace पढ़ा है तुमने ?”

“मिक्स्ट मैथेमेटिक्स था। आप जो कह रहे हैं वह मुझे मालूम है।”

“बहुत खुशी हुई नीरेन यह देखकर कि तुम सिर्फ जमींदारी ही नहीं करते बल्कि संसार के बड़े-बड़े विषयों की भी थोड़ी-बहुत खबर रखते हो। बहुत ज्यादा नहीं, पर तब भी The very little that you know is unknown to many.”

अच्छा भैया, “वे क्या आज ही चले जायेंगे ?”

“सम्भव है। कह रहे थे दार्जिलिंग जायेंगे। दार्जिलिंग जाते हुए ही रास्ते में यहाँ उतरेंगे। उनको आज दो पैसे मिल जाँय इस बात का विशेष ख्याल रखना पड़ेगा हम लोगों को।”

“आज सभा के बाद मेरे घर लाइये न एक बार भैया उनको ? अपने यहाँ रात को ठहरा भी सकता हूँ। आज दार्जिलिंग के लिए और कोई गाड़ी भी नहीं है। रात को यहीं रह जायेंगे। कोई असुविधा नहीं होगी।”

“अच्छा कहूँगा उनसे।”

“ऐसी कोशिश करिएगा जिससे रात को रह जाँय। कल ही अखबार में एक रिपोर्ट भेज दूँगा। फ्री प्रेस और आनन्द बाजार के रिपोर्टर यहाँ हैं।”

रायबहादुर समझ गये कि उनके मौसरे भाई की नजर कहाँ है। वह सब बातें उठाने से कोई लाभ नहीं है, इस वक्त तो किसी तरह कार्य सिद्ध हो जाय बस। किसी तरह मीटिंग खतम हो जाय तो जान बचे।

इतने में ही घर के अन्दर से नीरेन बाबू की लड़की मीना आकर बोली, “ताऊजी, पिताजी से कहकर हम लोगों को टिकट के रूपए दिलवा दीजिये न।”

नीरेन बाबू धमकाकर बोले, “जा जा, अन्दर जा, अभी तंग मत कर। काम कर रहा हूँ।”

मीना शिशु-मुलभ स्वर में बोली, “तुमसे तो कहा नहीं पिताजी, मैं तो ताऊजी से कह रही हूँ।”

रायबहादुर ने पूछा, “किसके टिकट री मीनू?”

मीना बोली, “आप जाने कहाँ रहते हैं। हमारे पड़ोस की सविता आपके कालेज में पढ़ती है, वह कह रही थी कि आप रास्ते में चलते-चलते गणित के प्रश्न सुलभाते हैं। सच है क्या यह ताऊजी?”

नीरेन बाबू फिर धमकाते हुए बोले, “ओ बड़माश कहीं की, चल यहाँ से। तंग किये जा रही है। जानते हैं भैया किसके टिकट के लिए कह रही है, वही कौन इन्दुबाला आ रही है न आज यहाँ वाणी सिनेमा में। नाच-गाना होगा, जाने कौन वक्तृता भी देगा। उसी को देखने के लिए सारा मुहल्ला टूट पड़ा है। लड़कियाँ तो मुबह से ही जान खा रही हैं।”

“तो जाने दो न उन लोगों को। ग्राइन्सटाइन के लेक्चर में ये लोग क्या जायेंगी। लेकिन अगर देख लेतीं तो जिन्दगी भर को कहने के लिए एक बात रहती। क्यों री मीनू कहाँ जायगी?”

“हम तो ताऊ जी सिनेमा ही जायेंगे। ‘मिलन’ फिल्म में इन्दुबाला को देखने के बाद से उसको प्रत्यक्ष देखने की बड़ी इच्छा है। रानाघाट में ऐसे लोग आयें—”

आगे की बात रायबहादुर ने पूरी करते हुए कहा, “यह स्वप्न के भी बाहर की बात है। यही न मीनू? टिकट के लिए पैसे दे दो लड़की को नीरेन।”

अब मीना जरा साहस से बोली, “आपको और पिता जी को जाना पड़ेगा हम लोगों को लेकर, मैं नहीं जानती ताऊ जी, पिता जी का मन तो कर रहा है जाने का, सिर्फ आपके डर से—”

नीरेन बाबू डाँटते हुए बोले, “तो फिर शैतान लड़की—”

मीना हँसती-हँसती घर के अन्दर चली गयी। जाते-जाते कहती गयी, “पिता जी, तुम्हें जाना ही पड़ेगा हम लोगों को लेकर। छोड़ूंगी नहीं, कहे दे रही हूँ।”

✱

दार्जिलिंग मेल का समय हो गया था। साढ़े पाँच बजे थे।

रायबहादुर, कुछ छात्र, नीरेन बाबू और श्रीगोपाल बाबू स्टेशन पर जाकर उपस्थित हुए। पर यह क्या ?

इतनी भीड़ क्यों है। प्लेटफार्म पर इतने लड़के, विद्यार्थी, लोग क्यों। क्या सचमुच आज आइन्सटाइन की उपस्थिति के लिए यहाँ के सब लोगों में जोश भर गया है।

ये सब दार्जिलिंग मेल पर क्या उनको उतारने के लिए आये हैं ? अभ्यर्थना तो इतने बड़े वैज्ञानिक के उपयुक्त ही है। प्लेटफार्म पर सिर ही सिर दिखाई दे रहे हैं। हो-हुल्लड़ मचा हुआ है। रायबहादुर पुलकित हो उठे। मेल ट्रेन ने धड़धड़ाते हुए आकर प्लेटफार्म में प्रवेश किया।

एक सेकेन्ड क्लास के डिब्बे से छोटा बैग हाथ में लिए दीर्घकेशी आइन्सटाइन उतरे। साथ ही साथ पास के एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे से एक सुन्दर तरुणी, शरीर पर कीमती साड़ी, पाँव में जरीदार काश्मीरी सैंडिल पहने—हाथ में वैनिटि बैग झुलाती उतर पड़ी। तरुणी के साथ और भी दो तरुणियाँ थीं—दोनों ही श्यामांगी—दो नौकर थे जो लगेज उतारने में लग गये।

कोई आदमी बोला, “वह जो उतरी हैं वही तो इन्दुबाला देवी हैं —”

पल भर में प्लेटफार्म के सब लोग उधर दूट पड़े। उस गजब की भीड़ में से राय बहादुर आइन्सटाइन को लेकर बड़ी मुश्किल से गेट की ओर अग्रसर होने लगे।

आइन्सटाइन समझ नहीं पाये, उन्होंने सोचा उन्होंने को देखने के लिए इतनी भीड़ इकट्ठा हुई है। राय बहादुर से पूछा, “ये सभी क्या स्थानीय यूनिवर्सिटी के छात्र हैं ? उनके साथ मेरा परिचय नहीं करायेंगे मिस्टर चटर्जी ?”

रायबहादुर ने इस उदार सरलचित्त वैज्ञानिक तपस्वी का भ्रम दूर करने की चेष्टा नहीं की। रानाघाट में और यूनिवर्सिटी। हाय रे, यह देश कौन-सा देश है यह ये अभी तक नहीं समझ पाये। सभी जगह तो योरोप नहीं है।

नीरेन बाबू ने कोशिश करके किसी तरह प्रसिद्ध स्थानीय व्यवसायी धनी गोपाल पाल की पुरानी सन् १९१७ के माडेल गाड़ी का इन्तजाम कर लिया था। इसी में सब बैठकर म्युनिसिपल हॉल की तरफ चले। गाड़ी में बैठते समय देखा गया उस वक्त भी बहुत से आदमी स्टेशन के गेट की तरफ लपक रहे थे। जाने कौन एक आदमी कह रहा था, “गाड़ी को आये काफी देर हो गयी है, वह देख प्लेटफार्म पर लगी हुई है। जल्दी भागो।” भीड़ में से जाने किसने जवाब दिया, “यहीं से होकर तो जायेंगी, भीड़ में जाने की क्या जरूरत है। बड़ी भीड़ है। वह तो जाना-पहचाना चेहरा है, देखते ही पहचान जायेंगे। कितनी पिवचरों में तो देखा है। उस दिन भी मिलन फिल्म में—”

आइन्सटाइन उत्सुकता से बोले, “ये लोग भी शायद स्टेशन भाग रहे हैं ? उन लोगों को मालूम भी नहीं है कि जिसे देखने के लिए जा रहे हैं, वह उनके सामने ही गाड़ी में बैठा है। अच्छा मजाक है, क्यों ? मिस्टर चटर्जी, यहाँ यूनिवर्सिटी किस तरफ है ?”

सौभाग्य से भीड़ में एक आदमी के आइन्सटाइन की गाड़ी के सामने आ जाने से फुलब्रेक लगाने की कर्कश ध्वनि व ‘वह गया, वह गया’ के कोलाहल में उनका प्रश्न दब गया। स्टेशन तथा भीड़ को पीछे छोड़कर कुछ दूर आगे जाते ही मोड़ पर श्रीगोपाल बाबू व नीरेन बाबू उतर गये।

रायबहादुर ने पूछा, “अभी आ रहे हैं न आप लोग ?”

श्रीगोपाल बाबू ने क्या कहा अच्छी तरह समझ में नहीं आया रायबहादुर के। नीरेन बाबू बोले, “उन लोगों को वहाँ पहुँचाते ही आ रहा हूँ। लड़कियों को ले जाने वाला और कोई आदमी नहीं है घर में। टिकट में जब इतने रुपये गये हैं—”

*

सामने ही म्युनिसिपल हॉल था, स्टेशन के पास ही। पर यह क्या ? साढ़े पाँच का समय दिया गया था। पौने छः बज चुके और कोई भी नहीं आया। आदमी का नाम-निशान तक नहीं था। बस म्युनिसिपल आफिस का क्लर्क जीवन भादुड़ी एक छोटी टेबिल पर टिकट सजाये श्रोताओं को विक्रय करने की प्रतीक्षा कर रहा था।

मोटर के हॉल के सामने आकर रुकते ही आइन्सटाइन का हाथ पकड़कर उतारा रायबहादुर ने। मुँह पर हँसी लाने की चेष्टा करते हुए बोले, “हे वैज्ञानिक श्रेष्ठ, सुस्वागत है ! रानाघाट की धरती पर आप के पदार्पण का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अक्षय होकर विराजमान रहे। हम रानाघाट-वासी आज धन्य हो गये।”

साथ ही साथ चकित व उद्विग्न दृष्टि से जनशून्य हॉल की तरफ नजर उठा कर देखा। लोग कहाँ हैं ? कहाँ थे रानाघाट-वासियों के दूसरे प्रतिनिधि ?

आइन्सटाइन विस्मित दृष्टि से जनशून्य हॉल की ओर देख कर बोले, “अभी तक नहीं आया कोई भी ? सब स्टेशन पर ही भीड़ लगाये हुए हैं। मिस्टर चटर्जी, एक ब्लैक-बोर्ड की व्यवस्था करनी पड़ेगी। वक्तृता के समय थोड़ा-बहुत लिखना पड़ता है बीच-बीच में।”

ब्लैक-बोर्ड ! रायबहादुर स्थानीय व्यक्ति हैं। नाड़ीज्ञान है उन्हें इस जगह का। वे शून्य व हताश दृष्टि से चारों ओर देखने लगे।

जीवन भादुड़ी पास आकर धीरे-धीरे बोले, “बस तीन रूपयों की बिक्री हुई है। वह भी रूपये अभी नहीं मिले हैं। क्या करूँ बताइए सर ? मुझे कितनी देर और ठहरना पड़ेगा। मुझे घर लौटकर बाल-बच्चों को लेकर वाणी सिनेमा भी जाना है। कलकत्ते से इन्दुबाला आयी हैं—घर में सब ने ज़िद पकड़ रखी है। पैंतीस रूपये महीने में मिलते हैं—छोड़िए क्या बताऊँ, दुख-सुख तो लगा ही रहता है। उन जैसे तो कोई रोज कलकत्ते से आता नहीं। पाँच रुपए खर्च हुए, हो गए। मुझे जरा छुट्टी देनी पड़ेगी सर। ये साहब कौन हैं ? इन साहब का लेक्चर सुनने के लिए आज लोग इकट्ठा नहीं होंगे—कौन आयेगा सर आज यहाँ !”

जीवन भादुड़ी कैश समझा कर खिसक गए। हॉल में चेयर और बेंचों के जत-हीन अरण्य में मात्र दो प्राणियों को देखा गया—ग्राइन्सटाइन और रायबहादुर।

ग्राइन्सटाइन बैग खोलकर चीजें निकाल-निकालकर टेबिल पर रखने में व्यस्त थे, जिनकी उन्हें वक्तृता के समय जरूरत पड़ती। उसी मौके पर रायबहादुर बाहर जाकर सड़क पर इधर-उधर उद्दिग्ध होकर देखने लगे।

लोग जा रहे थे, लड़कियाँ सजधज कर घोड़ागाड़ियों में जा रही थीं, पथिकों का भुंड का भुंड द्रुत कदमों से भाग रहा था—पर लक्ष्य था सबका वाणी सिनेमा।

रायबहादुर के एक परिचित वकील छड़ी हाथ में लिये जल्दी-जल्दी जन-साधारण का अनुसरण कर रहे थे, रायबहादुर को देखकर बोले—“क्यों, साहब आ गये ? कितने आदमी हो गये हैं अन्दर ? आज अनफाच्युनेटली उसके साथ वलैश हो गया न ! दूसरा दिन होता तो—क्या करूँ मैं तो लाचार हूँ—घर से सब औरतें-बच्चे गये हैं, उनके साथ कोई नहीं है, मजबूर होकर मुझे—इस लिए—”

रायबहादुर मन ही मन बोले—हाँ नितान्त अनिच्छा होने पर भी।

*

आधा घंटा बीत गया। साढ़े छः बजे, पौने सात बजे, सात बज गये, पर किसी की शक्ल दिखाई नहीं दी।

उधर वाणी सिनेमा आदमियों से ठासठस भरा हुआ था। टिकट नहीं मिल पाने के कारण बहुत से लोगों ने बाहर जमघट लगा रखा था। एक भुंड जोर-जबर्दस्ती करके अन्दर घुसने की विफल चेष्टा कर चुका था। औरतों के बैठने की दोनों ओर की बालकनियों की ऐसी हालत थी कि आशंका थी कहीं टूट कर न गिर जाय। स्टेज का पर्दा उठा। चित्रतारिका इन्दुबाला सबके सम्मुख खड़ी थीं। अपने ही गाये हुए मिलन फिल्म के देश-विख्यात, बच्चे-बच्चे की जुबान पर चढ़े कुछ गीत—‘जंगला हाथोआय चमक लागाय,’ ‘ओरे अचिन देशेर पोषा पाखि’ ‘राजार कुमार पक्खीराज’ इत्यादि गीत सुनाये उन्होंने।

उसी समय रायबहादुर नीलाम्बर चट्टोपाध्याय भीड़ ठेलते-ठेलते हॉल में प्रवेश करते ही सामने श्रीगोपाल बाबू को देखकर ठिठक गये। पास ही थोड़ी दूर पर

नीरेन बाबू बैठे थे। रायवहादुर बोले — “अरे बाह, आप भी यहाँ ?”

अचानक चोर की तरह पकड़े जाने से घबरा कर सिर खुजाते-खुजाते श्रीगोपाल बाबू बोले — “मेरी इच्छा तो नहीं थी, पर क्या कहूँ—औरतें—उन्हें लाना—। साहब का लेक्चर कैसा हुआ ? आदमी इकट्ठा नहीं हुए क्या ?”

“कैसे होते ? आप सभी तो यहाँ हैं। जाता कौन ?”

“साहब कहाँ हैं ? चले गये ?”

“वह क्या खड़े हैं—?”

रायवहादुर के पीछे ही खड़े थे आइन्सटाइन।

श्रीगोपाल बाबू ने जल्दी से उठकर आइन्सटाइन का हाथ पकड़ कर आदर सहित उनको अपनी कुर्सी पर बैठाया।

✱

एक अखबार की कटिंग काटकर रखी थी, वह यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

यहाँ आलू की दर क्रमशः बढ़ती जा रही है ; धान की कीमत कुछ गिरने की ओर है। मलेरिया थोड़ा-थोड़ा देखा गया है। स्थानीय सुयोग्य सब-डिविजनल आफ़िसर महोदय की चेष्टा से स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों की दृष्टि इस ओर गयी है।

गत सप्ताह स्थानीय वाणी सिनेमा में सुप्रसिद्ध चित्रतारिका इन्दुबाला देवी का शुभागमन हुआ। नृत्यकला की निपुणता और किन्नर-कंठ-संगीत से उन्होंने सबका मन हर लिया। विशेषतः चमगादड़ नृत्य में उन्होंने जिस श्रेष्ठ कला का प्रदर्शन किया, उसे रानाघाट-वासी कभी नहीं भूलेंगे। इस उपलक्ष्य में उक्त सिनेमा-गृह में अभूतपूर्व जनता इकट्ठा हुई थी—वह भी एक देखने लायक चीज थी। लोगों की भीड़ में औरतों की बालकनी के नीचे की कड़ी झुक गयी थी। ठीक वक्त पर नजर पड़ जाने से एक दुर्घटना होते-होते बच गयी।

विश्व-विख्यात जर्मन वैज्ञानिक आइन्सटाइन, कल दार्जिलिंग जाते समय रास्ते में यहाँ म्युनिसिपल हॉल में वक्तृता देने के लिए उतरे थे। उनको भी उस दिन वाणी सिनेमा में इन्दुबाला के नृत्य के समय उपस्थित देखा गया।



पल्लिका

विमल कर

मानव मन की
 एक-एक जटिलता का
 विश्लेषण जितनी निपुणता
 से विमल कर ने किया है वह नवीन
 लेखकों में शायद ही कोई विरला कर पाया
 हो। आपकी दृष्टि तीक्ष्ण व सत्यान्वेषी है। आप
 यह अच्छी तरह जानते हैं कि मनुष्य दुर्बल होता है। लेकिन
 यह दुर्बलता रहने पर भी आपको मनुष्य से प्यार है। हो सकता
 है इस दुर्बलता के कारण ही आपको मनुष्य से इतनी सहानुभूति हो।
 कहानी के रचना-विन्यास में भी आपने उल्लेखनीय सफलता
 दिखायी है। जन्मस्थान राठ परगना है। बाल्यकाल
 कोयले की खान वाले अंचल में बीता है। आजकल
 स्थायीरूप से कलकत्ता ही रहते हैं।
 पलायिका, बनभूमि, निर्वासन, सुधा-
 मय, फानुसेर आयु, त्रिपदी
 आदि आपकी मुख्य
 रचनाएँ हैं।

पल्लविका

कुंए की पक्की जगत पर साड़ी, ब्लाउज, तौलिया, साबुन-दानी पड़ी थी ।

चाबी का गुच्छा पड़ा था गूलर के पेड़ के नीचे ।

तीसरे पहर उसने बाल बनाये थे, कंधे के कोने से माँ ग में सिद्धर भरा था । घर एक बार फिर भाड़-पोंछ कर, विस्तर ठीक करके बड़ी चादर बिछा दी थी । तब तक साँभ

हो आयी थी,
हेमन्त की
घुँधली शाम
उतर रही थी ।
वह मुँह-हाथ
धोने कुंए पर
चली गयी ।

कुंए की
तरफ का
हिस्सा बिल-
कुल निर्जन
था, भयंकर
रूपसेस्तब्ध ।
कुछ पपीते के
पड़े थे, मरे-

अधमरेकदली-

वृक्षों का एक झुंड था और पास ही खड़ा था एक निष्पन्न हरीतकी वृक्ष । उसके बाद ही दीवाल थी । दीवाल के बाद था ऊबड़-खाबड़ मैदान, मैदान के बाद जंगल और जंगल के बाद पहाड़ ।

गूलर का पेड़ घर के करीब-करीब सामने था, सोने के कमरे से लगा हुआ । पेड़ के घर का फाटक मुश्किल से पच्चीस-तीस कदम था ।

साड़ी, ब्लाउज, साबुन, तौलिया कुछ भी ढूँढ़ना नहीं पड़ा । लालटेन लेकर कुंए पर आते ही सब कुछ रक्खा हुआ मिल गया ।

गूलर-वृक्ष के नीचे पड़े चाबी के गुच्छे पर बसन्त बाबू की नजर पड़ गयी थी । लालटेन हाथ में लिये वे घर के आस-पास देख रहे थे ।

बिगल कर



यामिनी ने पहले घर के अन्दर बारीकी से ढूँढा था और फिर बाहर । कहीं न पाकर कुँए में टार्च का प्रकाश फेंक कर काफी देर तक देखा था । कुँए के अन्दर के अंधकार व जल दोनों ने शान्ति से यामिनी की टार्च के प्रकाश का आघात भेल लिया, कुछ भी जवाब नहीं दिया ।

उसके बाद यामिनी ने केलों के भंखाड़ आदि में दीवाल के आस-पास अच्छी तरह देखा । कहीं दिखाई न देने पर दीवाल फाँद कर दूसरी तरफ गया । मैदान में काफी देर इधर-उधर ढूँढा । कई बार नाम लेकर भी बुलाया । पर व्यर्थ । बुलाते समय हर बार यामिनी को ऐसा लग रहा था कि उसकी आवाज अनिला के कानों में जा रही है । क्यों ऐसा लग रहा था यामिनी समझ नहीं पाया ।

इसके बाद भी यामिनी आकर सोया नहीं । करीब-करीब सारी रात कुँए में टार्च का प्रकाश फेंक कर बैठा रहा । शायद लाश ऊपर तैर आये । अगहन की ठंडी बर्फीली हवा ने उसे कँपा कर रख दिया था, उद्वेग, दुश्चिन्ता, भय ने उसे अशहाय, अशक्त बना दिया था । रात की उस निस्तब्धता और व्याप्त शून्यता में चेतना निःशेष नहीं होने तक क्लान्त फौजदार की तरह यामिनी बैठा रहा ।

दूसरे दिन सुबह भी अनिला की लाश पानी पर नहीं आयी । कुँए का जल शान्त था ।

शाम को वसन्त बाबू बोले, “नहीं, वहाँ कुँए में नहीं डूबी है ।”

यामिनी बोला, “रेल से कटकर भी नहीं मरी है ।”

“नहीं—” वसन्त बाबू ने धीरे-धीरे सिर हिलाया; गले का स्वर शिथिल था, हताश था । कुछ देर बाद बोले, “कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है । शायद कहीं चली गयी है ।”

“भाग गयी है ।” कह कर यामिनी बरामदे के खम्भे की ओट में हो गया ।

लड़के के स्वर में तीव्र घृणा व गुस्से का आभास मिला वसन्त बाबू को ।

(उसके कुछ दिन बाद)

पत्नी का सन्दूक टटोलने पर यामिनी को कुछ चिट्ठियाँ मिली थीं । तौलिये में लिपटी शादी की साड़ी के नीचे फिनायल की गोलियों की खुशबू में बसी चिट्ठियाँ । चिट्ठियाँ यामिनी की ही थीं, शादी के बाद की लिखी हुई । दो-चार चिट्ठियों पर नजर दौड़ायी यामिनी ने । एक में लिखा था; वस बहुत हो गया, अब नहीं ; कौन से सुख से लड़कियाँ पीहर रहती हैं भगवान जाने । कब आ रही हो तुम ?

(कब आ रही हो तुम ?) यामिनी ने खिड़की की ओर देखा । दीवाली के दिन छोटे भाई रतू ने गूलर की एक शाखा पर कंदील लटका दिया था । यामिनी

ने देखा जले, फटे कंदील का कुछ हिस्सा अभी लटक रहा था ।

बसन्त बाबू ने अपने कुछ घनिष्ठ सम्बन्धियों को चिट्ठी लिखी थी; उनके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे । वृह के अन्तर्धान होने की बात स्पष्ट शब्दों में नहीं लिखी थी, घुमा-फिरा कर लिखा था; आजकल वृह यहाँ नहीं है ।

यामिनी की बहन बसन्ती ने भाभी का साड़ी-प्लाउज, बालों के चुटीले, पाउडर का डिब्बा वगैरह सब उठा कर रख दिया था । बहुत ही मजबूर होकर सिर्फ कंधा ले लिया था—बड़े दाँतों वाला कंधा । बच्चा है रुतू, बात कहीं सारी जगह बखानता न फिरे इस डर से यामिनी ने भाई को घर से बाहर निकलने के लिए मना कर दिया था । रुतू कुँए पर, गूलर के नीचे खेलता रहता, दूर लाइन पर आती ट्रेन की आवाज सुनता तो फाटक पर जाकर खड़ा हो जाता ।

(करीब महीने भर बाद)

अनिला के बारे में बसन्त बाबू के पास कोई चिट्ठी नहीं आयी ।

यामिनी जानता था कि अनिला के बारे में उसके सब परिचितों को पता चल गया है यद्यपि मुँह से कोई कुछ नहीं कहता । माँ की मृत्यु के बाद थोड़ी लपेटे कम्बल का आसन बगल में दबाये जब बाहर निकलता तो पहले तो परिचित अवाक् हो कर देखते फिर पास आकर पूछते, “यह क्या भेष बनाया है ?” अपरिचित मुँह से कुछ कहते नहीं सिर्फ देखने । यामिनी समझ जाता कि उसके घर का शोक सर्ववदित हो गया है ।.....अनिला के चले जाने के बाद उसे सबकी आँखों में वह विस्मय तो दिखाई देता पर शोक नजर नहीं आता । ऐसा लगता अपरिचित इस घटना से लज्जित है और परिचित उत्पुक । अपरिचित हँसते हैं, उसकी ओर उँगली उठाकर दिखाते हैं । एक दिन जाने किसने उसे देख-कर गाना गाना शुरू कर दिया था । ‘यामिनी ना जेते पालाले हे.....।’

(यामिनी के जाने से पहले ही भाग गयी रे...)

बसन्ती ने भाभी की कई चीजें एक के बाद एक ले लीं; पाउडर का डिब्बा, तेल की शीशी, हल्की छोटी दुलाई, फैशनेबुल चप्पलें आदि ।

रुतू, अब ट्रेन की आवाज पर काय नहीं देता । स्कूल जाता, खेलने भागता । कोई पूछता तो कह देता, भाभी अपनी माँ के पास गयी है । बात उसकी दीदी ने उसे सिखा दी थी ।

(काल प्रवाह...)

बसन्त बाबू सुबह-शाम करीब मील भर घूमते । सुबह अखबार पढ़ते और शाम को भागवत । नींद आने के लिए सोने से पहले सिर में कविराजी तेल मलते, पानी डालते । और रात को नींद में बड़बड़ाते, वृह मेरा दूध इतना गाढ़ा मत करो....।

यामिनी ने अपनी दवाइयों की दुकान थोड़ी और बढ़ा ली। प्रकाश की व्यवस्था जरा अच्छी कर ली, साइनबोर्ड नया बनवा लिया। अब दुकान पर पेंट-बुशर्ट पहनकर आता, सिगरेट बहुत पीता। एक दाँत में सोना मढ़वा लिया। घर में अपना सोने का कमरा बिल्कुल बदल डाला। गूलर के पेड़ की तरफ दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ बनवा लीं—शीशे लगी खिड़कियाँ। दक्षिण की तरफ का दरवाजा बड़ा करवा लिया। सामान-असबाब में कुछ-कुछ अदल-बदल हो गयी। कमरा काफी प्रकाशमय और खुला-खुला हो गया।

वसन्ती सुबह के वक्त काम में थोड़ी व्यस्त रहती, उसके बाद प्रायः सारा दिन ही खाली रहती। खाना बनाने के लिए मिसरानी थी और घर के काम के लिए नौकरानी मंगला। पिता के पास थोड़ी-बहुत देर बैठने के अलावा सारे दिन बिस्तर पर लोट लगाती, कहानी-उपन्यास पढ़ती और किसी दिन दोपहर को, किसी दिन रात को माला के छोटे भैया को छोटी-छोटी चिट्ठियाँ लिखती।

रुनू स्कूल में स्काउट हो गया था। वह अपनी पोशाक, स्कार्फ, सीटी, रस्सी आदि को लेकर व्यस्त रहता।

(इसके बाद)

चार चम्मच ओट्स खाकर वसन्त बाबू ने पानी का ग्लास उठा लिया।

“थोड़ा और खा लीजिए.....”

“अब नहीं खाया जा रहा है। कैसा फीका-फीका तो लग रहा है—”

“वह सब कुछ नहीं। बहुत फायदे की चीज है। दस दिन खाने के बाद ही देखियेगा.....”

“दस दिन—” बनावटी डर से देखा वसन्त बाबू ने। पानी का ग्लास स्वयं नहीं रखना पड़ा। उसने हाथ से लेकर नीचे रख दिया और चम्मच फिर से वसन्त बाबू के हाथ में दे दिया।

वसन्त बाबू ओट्स की प्लेट में चम्मच डालकर चलाने लगे।

“पूरा खा लेने के बाद आपको जाकर धूप में बैठना पड़ेगा।”

“धूप में—”

“आप धूप में पाँव करके बैठियेगा, मैं मालिश कर दूँगी।”

“बाय के तेल की मालिश ?”

“नहीं, एक तरह की दवाई है। वह दे गये हैं।”

वसन्त बाबू ने देखा—बैठ के छोटे मोढ़े पर बैठी थी तपती। सिर से पल्ला ढ़ालकर गर्दन पर आ गया था। नयी, कोरी, हैंडलूम की साड़ी थी, सुर्ख रंग की। तपती का पूरा चेहरा दिखाई दे रहा था वसन्त बाबू को। इस तरफ के गोरे

गाल पर चोट का लम्बा निशान था। एक नजर वह निशान देखा बसन्त बाबू ने, फिर आँखें हटा लीं। पूर्ण तृप्ति से मन जैसे उत्पुल्ल हो गया था। सामने माघ की धूप फैली हुई थी, चमचमा रही थी।

“वह—”

तपती ने सिर पर पल्ला खींच कर मुँह फिराया।

दो चम्मच ओट्स खाकर परम तृप्ति के साथ बसन्त बाबू बोले, “चलो, यह तो मैं खा लूँगा पर बताओ तो यामिनी ने और क्या-क्या खिलाने को कहा है?”

तपती ने मुँह नीचा कर लिया। बसन्त बाबू ने देखा, नये सिन्दूर की रेखा कितनी मोटी थी, कितनी अनिपुण थी। माथे पर दाग लग गये थे, वालों में भी इधर-उधर भड़ गया था। एक परम निश्चिन्तता, निर्भरता, शान्ति की मुस्कान उनके मुँह पर फूट उठी।

आजकल यामिनी दुकान से जरा जल्दी ही लौट आता। आते वक्त ‘मालती कुटीर’ के सामने रुक कर माली से फूल लेता, बखशीश देता। घर में पाँव रखते ही जरा ऊँचे गले से कुछ कहता, किसी प्रकार की एक आवाज संकेत के समान यथास्थान पहुँचा देता और अपने कमरे में चला जाता। बत्ती जलाता, फूल रखता, जूते निकाल चप्पल पहनता; इतने में ही तपती आ पहुँचती।

“चाय—?” पत्नी की ओर उत्कुल्ल नेत्रों से देखता यामिनी।

“पियो। ठंड भी क्या कम है। सर्दी खाकर लोटे हो।”

“तुमने वदन पर कोई गरम कपड़ा नहीं डाला?”

“घर में क्या डालती वदन पर।”

“घर में ठंड नहीं है—?” यामिनी हँसता।

“रसोई में थी।”

“आँच ताप रही थी?”

“मुझे नहीं लगती इतनी ठंड।”

“कहाँ, रात को तो ऐसा नहीं दिखता। पूरे के पूरे पर अकेली कब्जा जमाये रहती हो?”

“किस पर?”

“मुझ पर।”

“वदतमीज।”

“तो फिर लिहाफ पर—”

“चलो, झूठे एक नम्वर के!” तपती ने स्वामी पर कटाक्ष फेंका।

“अच्छी बात है, आज दिखा दूँगा।”

“दिखा देना ।”

मुन्दर सुकोमल पत्नी की तरफ कुछ पल निहारता रहता यामिनी; उसके बाद, अचानक कहता, “अच्छा देखूँ, आज कैसा जूड़ा बनाया है ।”

“चलो हटो—”

“क्यों ?”

“रोज-रोज जूड़े का क्या देखना ।”

“दिखाओ ना ।”

“नहीं । तुम्हारी भी जाने क्या आदत है । वहू ठहरी, कितनी तरह के जूड़े बनाऊँगी । रोज जैसा ही बनाया है ।” गर्दन पर गिरा पल्ला खींचकर जूड़ा जैसे छुपाना चाहा तपती ने ।

यामिनी उठा, पल्ला हटाकर जूड़ा देखा और एक गुलाब खोस दिया बालों में । फिर कसकर एक चुम्बन लेकर बोला, “फूल है, वेर का काँटा तो है नहीं जो चुभेगा ।”

सिर पर पल्ला डालकर जूड़ा ढकते-ढकते बनावटी अनिच्छा के स्वर में तपती बोली, “हर वक्त क्या सिर पर पल्ला रहता है, उतर जाता है । छोटी दीदी फूल देखती हैं तो हँसती हैं । पिता जी भी देख लेते हैं ।”

“देख लेने दो ।” यामिनी ने सिगरेट जला ली ।

✱

वसन्ती ने पान की पीक फेंकी—गंदे के भाड़ पर छींटे पड़े । तपती ने घास पर पीक थूकी—घास आरक्त हो उठी । वसन्ती के बाल खुले थे और तपती ने बालों में एक गाँठ लगाकर बाकी ऐसे ही छोड़ दिये थे । दोपहर की धूप में जरा इधर-उधर घूमती दोनों जनीं । नीले आकाश में चीलें उड़ रही थीं । जम्हाई ली तपती ने कई बार ।

“क्यों, इतनी जम्हाई क्यों आ रही है ?”

तपती लज्जा से जरा हँसी ।

“रात को सोयी नहीं क्या ?” वसन्ती ओठों ही ओठों में मुस्कुरायी ।

“सोती क्यों नहीं— ।” तपती वसन्ती की आँखों से आँखें नहीं मिला पा रही थी ।

“मुझे क्या पता, मैं तो देखने जाती नहीं । पर आँखों के नीचे बड़ी स्याही फैलती जा रही है तुम्हारी—”

“आहा—”होठ काटकर भर्त्सना के स्वर में तपती ने कहा ।

“आहा नहीं, चलो शीशे में देखोगी ?”

“देखा है ।”

“देखा है ?.....हाँ, देखा क्यों नहीं होगा, तुम्हारा तो हमारे जैसा काँच का आइना है नहीं, दूसरी तरह का है, बिल्कुल जीता-जागता.....” सिर हिला-हिला कर मजाक करते हुए बसन्ती ने कहा ।

“ए छोटी दीदी, बदतमीजी मत करो । मैं तुम्हारी वुजुर्ग हूँ, समझी ?” डाँटने के स्वर में तपती ने कहा ।

“हिश—”बसन्ती ने ओठ मटकाए ।

सदियों की धूप थी; घूमते-घूमते वे घर के सामने से पिछवाड़े चली आयी थीं । कुँए के पास सिमेंट का पक्का चबूतरा था, बिल्कुल सूखा । केलों के भाड़ के पास एक कूत्ता पड़ा सो रहा था, कौवा काँव-काँव कर रहा था । चिड़ियाँ फुर्र-फुर्र करती चारों तरफ उड़ रही थीं, चावल चुग रही थीं ।

कुँए के पास पहुँच कर तपती बोली, “तुम लोगों के कुँए का पानी बड़ा मीठा है ।”

“गहरा बहुत है न !” कुँए की जगत पर हाथ रखकर बसन्ती जरा झुकी ।

“जाल पर पत्ते कितने पड़े हैं ।” कुँए पर तार के जाल पर पड़े हुए पत्तों को देखते-देखते तपती बोली ।

“पत्ते-वत्ते कुँए में नहीं पड़ते इसीलिए तो पानी साफ रहता है । पहले बड़ा कूड़ा-करकट पड़ता रहता था ।” कुँए की जगत से हाथ उठाकर बसन्ती सीधी खड़ी हो गयी ।

तपती कुँए की जगत पर बैठ गयी ।

बसन्ती बोली, “मुझे भी नींद आ रही है भाभी, चलो सोयें चलकर ।”

पपीते के पेड़ की तरफ देख रही थी तपती; बोली, “मेरा एक दिन कुँए पर नहाने का बड़ा मन है ।”

“ऐसे मन की जरूरत नहीं है; चलो उठो ।” उँगली उठाकर रसोई के पास बने गुसलखाने को दिखाती हुई बसन्ती बोली, “गुसलखाने में जिस पानी से नहाती हो वह यही पानी तो है ।”

तपती उठी । जम्हाइयाँ आ रही थीं उसे एक के बाद एक ।

✱

रुतू आठवीं क्लास में आ गया था, अब भाभी से लाँग लगाकर धोती

पहननी सीखी उसने। भैया उसके लिए मास्टर रख रहे हैं यह सुनकर भैया पर बड़ा गुस्सा था उसे। भाभी को मध्यस्थ बनाया उसने—“हाफ इयरली के बाद रखते हैं अब मास्टर, तुम भैया से कहो मुझे अभी नहीं चाहिये मास्टर। और फिर यह मास्टर तो बहरा है। तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, मेरी अच्छी भाभी, कहो न भैया से।”

“बहरा मास्टर ही तो अच्छा है।” तपती हँसी, “तुम गलत पढ़ो या सही, समझ ही नहीं पायेगा।”

“क्या कहा? समझ नहीं पायेगा—?” रू की आँखों से जैसे आग निकलने लगी, “बहरे बहुत चालाक होते हैं। खाली बनते हैं बहरे, सुनाई सब देता है।”

“तुम्हारा सिर—।” तपती हँसी।

“बहरे सुनते नहीं?” रू को भाभी की हँसी अच्छी नहीं लगी वरन् उत्तेजित हो गया वह।

“तुम्हीं बताओ कैसे सुनेंगे?” तपती को मजा आ रहा था।

“मुझे मालूम है।” रू के स्वर में दृढ़ता थी।

“तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम।”

“मैं झूठ बोल रहा हूँ?” रू बहुत ही असन्तुष्ट उत्तेजित हो गया था। कई बार प... प... करके बोला, “पहली भाभी तो बहरी थी; मैंने एक दिन कह दिया था, बहरों की ऐसी की तैसी। उसी वक्त मुझे मारना शुरू कर दिया था सुनकर।”

तपती शाम की चाय बना रही थी। ससुर के लिए कप में चाय उँडेलते-उँडेलते जाने कैसे तो हाथ हिल कर थोड़ी चाय जमीन पर गिर गयी। रू पास बैठा नाश्ता कर रहा था। तपती को चाय का रंग फीका-फीका-सा लगा। प्याले की चाय फिर से टी-पाँट में डाल दी उसने और साय ही मुट्ठी भर कर चाय की पत्ती भी डाल दी उसमें। फिर और एक मुट्ठी।

“तुम.....” क्या तो कहने जा रही थी तपती कि रुक गयी।

पूरी में आलू रखकर लपेटा रू ने और मुँह में गस्सा तोड़ा। फिर भाभी की तरफ देखने लगा; क्या कहेगी भाभी, यह सुनने की प्रत्याशा में।

रू की दृष्टि से तपती जाने कैसे एक परेशानी का अनुभव करने लगी। जैसे रू उससे कह रहा हो—मैं ठीक कह रहा हूँ, तुम कुछ भी नहीं जानतीं।

“तुम्हें मालूम नहीं है कि भाभी से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये।” विरक्त, असन्तुष्ट, गम्भीर स्वर में तपती ने कहा।

“वाह!” रू ने विस्मय प्रकट किया।

“क्यों? वाह क्या—?”

“भैया कहते थे, दीदी भी कहती थी।”

तपती को लगा कि वह अब तक क्या तो प्राणपण से रोकने की कोशिश कर रही थी लेकिन अब नहीं रोक पा रही है। उसका एक तरह का संयम शिथिल होता जा रहा है।

“वह कहते थे तो क्या तुम भी कहोगे?” मुंह नीचा करके तपती ने चाय ढालनी शुरू कर दी।

“मैंने बस एक बार ही कहा था।” रतू ने जैसे अपराध करने पर माफी माँगने के स्वर में कहा।

कमरा सुनसान था। अपरान्ह की धूप उस कमरे में नहीं आती थी। कड़ियों से लगे रोशनदान में से आकर थोड़ी धूप सिर्फ ऊपर की दीवाल पर पड़ती थी। कमरे में न तो मक्खियाँ थीं और न ही मधुमक्खियाँ, तब भी सारा कमरा जैसे गूँज रहा था।

इतनी देर में रतू ने गटगट करके पानी का पूरा ग्लास खाली कर दिया था। पानी पीकर उठ रहा था कि तपती ने उसकी तरफ देखा।

“चाय पिओगे?” स्वर काफी मुलायम था तपती का।

“पिऊँगा।” साथ ही साथ रतू ने जवाब दिया। चाय पर उसका लोभ बहुत अधिक था। आसानी से कोई देना नहीं चाहता था।

“तो कुल्ला कर आओ। मैं पिता जी को चाय देकर आती हूँ।”

चाय का रंग देखकर लग रहा था कि बहुत कड़ी हो गयी थी। कड़वी-कड़वी। समुर की चाय में ज्यादा दूध डाल दिया तपती ने। रंग बदल गया।

समुर को चाय देकर, आकर बैठी तपती। रतू बैठा था चाय के इन्तज़ार में।

रतू की चाय में ज्यादा दूध और शक्कर डालकर मिलाते-मिलाते तपती ने पूछा, “दीदी कहाँ है?”

“कपड़े धोने गयी है?”

“लो—” रतू की तरफ चाय का कप बढ़ा दिया तपती ने और अपने लिए चाय ढालने लगी।

जीभ से चुस्की ले-लेकर रतू चाय पीने लगा।

“कड़वी लग रही है?” तपती ने पूछा।

“जरा-जरा.....”

“और दूध दूँ?”

“नहीं।”

दो घूंट चाय पीकर कुछ क्षणों तक तपती रतू की ओर अन्यमनस्क नेत्रों से

देखती रही। कप में चाय की एक पत्ती आ गयी थी, चम्मच से निकाल दिया उसको। तपती को ऐसा लग रहा था जैसे कमरे में भौरों का गुंजन हो रहा हो।

“रुतू !”

“हाँ।”

“पहली भाभी तुम्हें प्यार नहीं करती थी ?” तपती ने दबे स्वर में इस तरह पूछा जैसे रुतू के साथ मित्रवत् बातें कर रही हो।

उलझन में पड़कर रुतू ने भाभी की ओर देखा। जैसे प्रश्न का जवाब वह जानता तो हो पर बहुत दिनों का पुराना पड़ जाने के कारण याद न कर पा रहा हो।

तपती ने प्रतीक्षा की जवाब की। कैसी एक ममता सी हो आयी उसे रुतू पर, “प्यार नहीं करती थी तुम्हें इस तरह, क्यों—?”

“करती थी।” रुतू बोला।

तपती रुकी एक क्षण को। चाय का एक घूंट भर कर बोली, “मुझसे ज्यादा ?”

रुतू ने जवाब नहीं दिया। यह प्रश्न उसके लिए त्रिलकुल नये-नये सीखे गणित के समान था। क्या जवाब दे ठीक नहीं कर पा रहा था वह।

“पहली भाभी को वे लोग और क्या-क्या कहते थे ?” तपती ने पूछा।

“डाँट-फटकार की बातें।”

“हूँ.....।”

“बहुत कुछ कहते थे, मुझे याद नहीं है।”

“कुछ भी नहीं ?”

“बहरी कहते थे।”

“और ?”

“काली, माँ काली कहते थे।”

“क्यों, बहुत काली थी क्या ?”

“मेरी जैसी थी।”

“तुम काले कहाँ हो।”

बात रुतू की मनोनीत थी। शर्म से जरा हँस दिया वह, “पर तुम्हारे जैसा गोरा कोई नहीं है भाभी।”

“अच्छा ऐसी बात है ?”

“हाँ.....” रुतू ने सिर हिलाया। “जो जितना पुण्य करता है, वह उतना ही गोरा होता है।” परम निश्चिन्तता के साथ रुतू ने कहा।

तपती चकित रह गयी मुनकर। ओठों की कोरों पर हँसी लाकर बोली,
“किसने कहा तुमसे ?”

“पाँडे जी ने।”

“वह कौन हैं ?”

“हमारे स्कूल के हिन्दी टीचर। सफेद चिट्ठा है उनका रंग—साहवों जैसा। माँस-मच्छी कुछ नहीं खाते। खाली पूजा करते हैं। तिलक लगाते हैं। पाँडे जी बहुत पुण्यवान हैं।” पाँडे जी की पंचमुखी प्रशंसा करके रून् ने जरा दम लिया;
“पाँडे जी कहते हैं, सच बोलने में पुण्य है।”

तपती ने आँचल मुँह में लेकर हँसी रोकी। “ठीक कहते हैं पाँडे जी। जो जितना सच बोलता है, उतना ही गोरा होता है। सच बोलना ही तो पुण्य है।”

भाभी की बात से रून् का विश्वास जैसे और पक्का हो गया। मन ही मन सोचकर देखा, स्कूल में दो-चार बार वह रोज ही झूठ बोलता है। नहीं बोलता तो और भी पुण्य मिलता।

“तुम्हारी पहली भाभी से और क्या-क्या कहते थे वे लोग ?” तपती ने पूछा। और अब यह करीब-करीब निःशंक थी कि रून् जो भी कहेगा सच ही कहेगा, विल्कुल सच।

रून् अब तक भाभी के साथ काफी वनिष्ठ हो गया था; पर तब भी प्रश्न ने उसे जरा असमंजस में डाल दिया। जाने क्या-क्या कहते थे, रून् को क्या याद था सब और वह क्या समझता था सब।

“पिताजी कहते थे, बेवकूफ।” पिताजी और क्या कहते थे, रून् ने जैसे सोचा जरा, “एक दिन पिताजी भाभी पर बहुत गुस्सा हुए थे, बोले थे, दिमाग खराब हो गया है.....पागल है।”

“तुम्हारे भैया क्या कहते थे ?” बेह्या की तरह तपती ने प्रश्न किया।

“दादा चिल्लाते थे।”

“गाली-गुफता भी देते थे ?”

“देते थे।” रून् ने सिर हिलाकर सम्मति प्रकट की।

“मारते-पीटते भी थे ?”

“भैया—” रून् इस वक्त भी पहली वाली बात सोच रहा था, गाली-गुफता की बात, बोला, “भैया भाभी को झूठ कहते थे, मूर्ख कहते थे।” कहकर रून् रुका, क्या याद आकर भी जाने याद नहीं आ रहा था ऐसे भाव से देखा उसने तपती की ओर।

तपती को गुस्सा-सा आ रहा था रून् पर। जैसे रून् की यह विस्मृति अनुचित

हो । उत्सुकता के क्रमशः तीव्र से तीव्रतर होने पर तपती अब अधीर हो गयी थी ।
रुनू पर लगी हुई अपनी आँखें नहीं हटा पा रही थी वह ।

“भैया—” अचानक रुनू बोला, “भैया ने एक दिन भाभी को मारा था, मसहरी का बाँस टूट गया था—” बात कहते-कहते रुनू के गले का स्वर भयभीत हो उठा, आँखों में कण्णा दिखाई दी, अटक-अटक कर बात खतम की उसने, “भाभी को खाना नहीं दिया था, कमरे में बंद कर दिया गया था ।”

तपती खोयी हुई-सी बैठी । उस अँधेरे छायाछन्न कमरे में न जाने कैसी एक निर्जन निस्तब्धता छा गयी । रोशनदान में से आता हुआ प्रकाश भी चला गया था । पालतू बिल्ली मीट-सेफ के पास आकर क्षीण स्वर में रोयी और चली गयी, अपने हिलते हुए पेट का भार अब वह उठाये नहीं फिर पाती थी । दूर सड़क पर जाती बैलगाड़ी के पहियों की चूँ-चूँ तपती को मुनाई दे रही थी । बसन्ती हाथ-पाँव को धोकर आ रही थी, उसके पाँवों की आवाज़ व दिखावटी खाँसी की खाँ-खों भी कानों में आ रही थी ।

“तुम्हारी दीदी क्या कहती थी रुनू ?”

“कपटी, नीच, चमार.....”

तपती को जैसे होश ही नहीं था । गम्भीर आछन्न स्वर में बोली, “और तुम्हारी भाभी ?”

“भाभी कहती थी, तुम लोगों को मैं सबक सिखाऊँगी ।”

“कहती थी, सबक सिखाऊँगी ?”

“हाँ, कहती थी । कहती थी सबको सबक सिखाऊँगी ।”

तपती ने और कुछ नहीं पूछा ।

(स्वागत)

एक दिन तपती ने स्वप्न देखा, वह किसी स्टेशन पर खड़ी है । घटाटोप अंध-कार छाया हुआ है । गाड़ी आयी । डिब्बों के बाहर वत्ती नहीं थी; सिर्फ जनाने डिब्बे के बाहर छोटी-सी वत्ती टिमटिमा रही थी । एक लड़की दरवाजा खोलकर डिब्बे में चढ़ी । सारी गाड़ी में एक भी आदमी दिखाई न देने पर, उतने घटाटोप अंध-कार से डरकर, जनाने डिब्बे के सामने आकर तपती उस लड़की को रोकने जा रही थी ‘इस गाड़ी से मत जाओ’ कि अचानक ऊपर नजर पड़ी तो देखा डिब्बे के बाहर जनाना लिखा हुआ नहीं था, औरत की तस्वीर नहीं बनी हुई थी । सिर्फ ‘स्वागत’ लिखा हुआ था ।

तपती वह शब्द पढ़ रही थी, कुछ समझ रही थी, कुछ नहीं भी । डिब्बे का हत्था पकड़कर दो पैड़ी ऊपर चढ़कर और भी अच्छी तरह देखने जा रही थी कि

गाड़ी ने सीटी दे दी। तपती ने उतरना चाहा लेकिन गाड़ी ने छुक-छुक करके चलना शुरू कर दिया। उतर नहीं पायी, डरकर हत्था मजबूती से पकड़े रही वह।

डिब्बे का दरवाजा आधा खुला हुआ था, अन्दर बैठी लड़की ने उसे अन्दर बुलाकर दरवाजा बन्द कर लिया।

लड़की का रंग काला था। मुँह बहुत कोमल था। आँखों में जैसे नींद भरी हुई थी। नीचे का ओंठ कसकर दाँतों से भींच रखी था। बहुत जिद्दी मालूम पड़ रही थी। सिर पर पल्ला था, माँग में सिन्दूर था, पाँव नंगे थे, डोरिये की साड़ी पहने हुए थी।

“अच्छा हुआ उतरी नहीं।” लड़की बोली।

“मुझे तो जाना नहीं है।” तपती ने जवाब दिया, मैं तो आपको उतरने के लिए कहने आयी थी।”

“मुझे ? क्यों—?”

“इस गाड़ी में चढ़कर आपने गलती की है।”

“गलती।” लड़की ने जैसे विद्वान्ता नहीं किया।

“हाँ ! यह गाड़ी नहीं जायगी। हम लोगों की गाड़ी यह नहीं है।” तपती ने समझाने की कोशिश की, “एक भी आदमी नहीं है गाड़ी में।”

“हैं, हैं। बहुत आदमी हैं। सब शान्ति से सो रहे हैं।” लड़की कुछ विरक्त-सी होकर बोली।

शान्ति से सो रहे हैं ! तपती अवाक् रह गयी सुनकर। जीवन का कहीं चित्त मात्र नहीं है इसलिए क्या शान्ति से सो रहे हैं। आश्चर्य है।.....पागल है—बिल्कुल पागल। कसूना हो आयी तपती को उस पर।

“आप कहाँ जा रही हैं ?” कुछ क्षण लड़की की ओर, उसके नंगे पाँव, उसकी हर वक्त पहनने वाली मैली साड़ी की तरफ देखकर पूछा तपती ने।

“क्या—?”

“कहाँ जा रही हैं आप ?”

“मरने।” कठोर मुँह बनाकर बोली लड़की। और फिर तीक्ष्ण दृष्टि से तपती की तरफ देखने लगी।

“म . . . र . . . ने।”

“अरे भई शान्त करने, जवाला शान्त करने।” लड़की की आँखों से पतंगें छूट रहे थे। “मरने में ही शान्ति है।..... इस संसार में जिंदा रहना ही दुःखमय है, बिना पानी की मछली की तरह तड़पना पड़ता है।”

तपती को डर लग रहा था पर उस वक्त उसे जाने क्यों ऐसा महसूस हो रहा

था कि वह लड़की उसका कुछ नहीं बिगाड़ पायेगी, कुछ भी नहीं। लड़की के गले, हाथ, माथे के सिंदूर की तरफ देखकर तपती बोली, “आप क्यों मरने जायंगी ?”

“बताया तो।” लड़की के चेहरे पर क्रोध के चिह्न थे।

“स्वामी—”

“सबक मिलेगा। लड़की की आँखों से जैसे आग निकलने लगी, मुख पर सुतीव्र घृणा व आक्रोश के भाव थे। “उन सबको मैं सबक सिखाऊँगी—उस बुड्ढे को, उसके लड़कों-बच्चों को—सबको।”

सबक सिखाने वाली बात सुनकर तपती जैमे कुछ पल के लिए मन ही मन गंदले पानी में हाथ-पांव मारने लगी और फिर प्राणपण से जोर लगाकर ऊपर सिर निकाला उसने। आँखें फाड़-फाड़ कर अपलक नेत्रों से लड़की की ओर देखा।

“आपके चले जाने से सबको सबक मिल जायगा, क्यों ?” तपती ने धीरे-धीरे, लड़की की आँखों में आँखें डालकर कहा, जैसे जवाब देने से पहले बात समझने के लिए काफी वक्त दे रही हो उसे।

“क्यों नहीं मिलेगा ? जरूर मिलेगा।” लड़की ने पल भर का भी समय नहीं लिया। साथ ही साथ दृढ़ निःशंक स्वर में जवाब दिया, “उन सबको सबक मिलेगा और मैं जिदा रहूँगी, मुझे शान्ति मिलेगी।”.....कहते-कहते मुँह फिरा लिया उसने, सिर का पल्ला खींचकर उतार दिया। कसकर बाँधे गये बालों का जूड़ा दिखाई दिया तपती को।

उसके बाद बड़बड़ाकर जाने क्या कह रही थी, तपती को सुनाई नहीं दे रहा था। मधुचक्र की तरह बँधा जूड़ा देखते-देखते एक बार सिर्फ इतना सुना, “बुड्ढे का दूध उवालो.....” ‘सबक.....’ और फिर सुना ‘शान्ति मिलेगी’। इसके बाद कुछ नहीं सुना, नहीं देखा तपती ने। ऐसा लगा जैसे कमरे में अँधेरा करके कोई चला गया।

अँधेरा होने के बाद कुछ देर तक तो तपती कुछ भी नहीं समझ पायी पर ऐसा दिखाई दिया जैसे वह सीट पर बैठी है, यामिनी के हाथ में ताड़ के पत्ते की पीपनी है.....उसके बाद यामिनी अदृश्य हो गया। समुर, बसन्ती, रतु, प्लेटफार्म, ओवरब्रिज एवं काफी प्रकाश देखकर तपती ने यामिनी को बुलाया। यामिनी मालकटे पर एक पाँव रखे खड़ा था। ताड़ के पत्ते की पीपनी दूल्हे के मोर में परिणत हो गयी। ‘आ रहा हूँ’ इशारे से कह कर यामिनी जाने पान-सिगरेट लेने, जाने कुली बुलाने चला गया।

वही लड़की जाने कब उसके पास आकर बैठ गयी। तपती पहचान गयी।

अनिला उसी की ओर देख रही थी। अनिला के चेहरे पर एक वक्र हँसी फूट रही थी। अनिला बोली : (बहुत सुखी हो ?) हूँ, तपती ने सिर हिलाया। (तुम्हें तुम्हारे पीहर नहीं जाने देना चाहते न।) नहीं चाहते, तपती ने सिर हिलाया। (मुझे भी नहीं जाने देना चाहते थे। तुम्हें सोयी हुई को जगाकर नहीं कहते, 'एक ग्लास पानी देना ?') हाँ, कहते हैं, तपती ने सिर हिलाया। (मुझसे भी कहते थे। बुड्ढा दूध गाढ़ा करने के लिए मना नहीं करता ?) हाँ, तपती ने सहमति में सिर हिलाया। (मुझसे भी करता था।.....बूढ़े के दिल में दया-माया है क्या ?.....छोटे लड़के की शैतानियाँ बर्दाश्त करनी पड़ती हैं न ?) पड़ती हैं, बहुत करनी पड़ती हैं, तपती ने सिर हिलाया। थोड़ी देर के लिए अनिला चुप हो गयी। (लड़की का मन तो साफ है पर चेहरा साफ नहीं है, बड़ा लालायित सा है, साड़ी-वाड़ी पहनने के लिए नहीं माँगती तुम्हारी ?) माँगती है, प्रायः माँगती है। (मेरी भी माँगती थी.....अच्छा सबक सिखाया है मैंने सब को—अब कोई कुछ नहीं चाहेगा। कम दुख दिया है मुझे, खूब खून पिया है।) पल्ला ठीक करके उठ खड़ी हुई अनिला। प्लेटफार्म का शोरगुल सुनाई पड़ने लगा था। तपती ने सामने देखा, यामिनी मौर लगाये दूल्हा बना आ रहा है। सुन्दर लग रहा है।

नौद टूटने पर, खुमारी में, आछन्नता में व अर्द्ध चेतनावस्था में सबसे पहले गाड़ी के डिव्वे की बात याद आयी तपती को। 'स्वागत' शब्द और टिमटिमाती बत्ती जैसे अभी तक उसकी नजरों के सामने थी। एक बेचैनी-सी महसूस की तपती ने और फिर वदन तोड़ते हुए अँगड़ाई ली। उसके बाद एक बार पलकें खोलें; खोलते ही वन्द कर लीं, फिर खोलें। कई बार आँखें खोल कर वन्द करके अपने अस्तित्व व चेतना में लौटी तपती और फिर उठ बैठी।

उषा के आलोक में कमरे में नजर दौड़ायी उसने। गूलर-वृक्ष की ओर की शीशों वाली बड़ी खिड़कियों से चैत की हवा आ रही थी; शीतल, मंद सुगन्ध समीर। जम्हाई ली तपती ने। माथे पर बिखर गये बालों को हाथ से ऊपर कर दिया, फिर बगल के तकिये पर कोहनी रखकर पति की ओर देखा एक बार।

यामिनी के ओठों के बीच से सोने से मढ़े दाँत का भग्नांश दिखाई दे रहा था। गाल पर एक जगह छोटा-सा तिल था। छाती पर, बनियान में तपती के सिन्दूर के दाग लग गये थे।

पहले, पति की छाती पर हौले से हाथ रखवा उसने, फिर धीरे से सिर। गाल के स्पर्श से, कान से, स्वामी के हृद्पिंड की धड़कन का अनुभव हो रहा था उसे।

धड़कन मुनते-मुनते आँखें गूलर-वृक्ष की ओर की खिड़की पर टिकाकर मन

ही मन अनिला को बुलाया तपती ने । बोली, 'इन्हें किसी को सबक नहीं मिला । तुम मर गयीं, इन्होंने तुम्हारे गहने बेचकर दुकान बढ़ा ली, घर सजा लिया, शादी कर ली और सुख-चैन से दिन बिता रहे हैं ।'

तपती की आँखों के सामने धुँधलापन आ गया । एक दुर्बोध यन्त्रणा व रुदन उसके हृदय से पके फोड़े के समान रिस-रिस कर उठने लगा । उस उमड़ते हुए रुदन के आवेग को रोकते-रोकते तपती फिर एक बार बोली, 'तुम्हें शान्ति भी नहीं मिली । जहाँ मिट्टी ही नहीं होगी, वहाँ घड़ा कौन बनायेगा । तुम बेवकूफ थीं, बेवकूफ, बेवकूफ !'

यामिनी की छाती पर सिर रगड़-रगड़ कर चैत की उस भोर में तपती अनिला के लिए रोने लगी ।



दुर्घटना

नारायण गंगोपाध्याय

अन्तर्मुखी व
 बहिर्मुखी मनुष्य—इन
 दोनों भावनाओं का समन्वय
 करना बहुत आसान काम नहीं है ।
 असल में यह एक दृःसाध्य कार्य है । इस
 दृःसाध्य कार्य में सफलता प्राप्त करके नारायण
 गंगोपाध्याय ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है । आप
 एक दक्ष लेखक हैं । मानव-जीवन के प्रति आपकी रचनाओं में
 श्रद्धा के दर्शन होते हैं । अधिकांश लेखक जहाँ मनुष्य के साथ मनुष्य के
 सम्पर्क को लेकर व्यस्त हैं, आपने वहाँ उसके साथ-साथ मनुष्य और प्रकृति
 के सम्पर्क पर भी ध्यान दिया है । आपकी भाषा काव्यमय है ।
 आपकी रचनाओं में कोमलता व कठोरता का सुन्दर साम-
 अस्य दिखाई देता है । जन्म-स्थान दिनाजपुर है, लेकिन
 रहते स्थायी रूप से कलकत्ता ही हैं । कलकत्ता युनि-
 वर्सिटी में अध्यापन-कार्य करते हैं । भोगवती,
 वनज्योत्स्ना, शिलालिपि, उपनिवेश,
 तिमिरतीर्थ, पदसंचार आदि
 आपकी उल्लेख-योग्य
 रचनाएँ हैं ।

दुर्घटना



के बिन के सामने डेक-चेयर पर बैठकर पड़ते-पड़ते ध्यान बार-बार उचट रहा था। स्टीमर ने चलना शुरू कर दिया था, लकड़ी के पहिये से आहत जल क्षुब्ध व क्रुद्ध गर्जन कर रहा था। काई के टुकड़ों को छिल्ल-भिन्न

करता, पानी में समुद्र जैसी लहरें उठाता, स्टीमर आगे बढ़ता जा रहा था। सुबह की धूप पड़ने से पानी शीशे की तरह चमक रहा था। इलिश मछलियों की खोज में लम्बे-लम्बे जाल डालकर मछुओं की नौकाएँ पानी पर थिरक रही थीं।

हाथ के डिटेक्टिव उपन्यास में कहानी ने उस वक्त एक भयानक मोड़ ले लिया था। तीन खून करके बहुमूल्य पत्ते का ड्रैग न हथिया कर दस्यु सरदार क्यांगचू भाग गया था। बंगाली जासूस समुद्र राय ने उसे पकड़ने के लिए इरावती नदी पर तीव्र वेग से लाँच छोड़ दी थी। उसी समय पानी की गहराई में प्रलय-कारी आवाज करता हुआ बया तो फटा। बया चुम्बक माइन थी? कुछ समझ में नहीं आया पर क्षण भर में ही जासूस समुद्रराय लाँच से—

घटना के चरमोत्कर्ष पर, उत्तेजना से जब बदन के रोंगटे खड़े हो जाते ठीक उसी समय इन्दिरा चौधरी अन्यमनस्क हो गयीं। किताब मुँह के सामने करके, कान खड़े करके बातें सुनने की चेष्टा करने लगीं। स्टीमर के अनवरत गर्जन में भी वह कलकंठ ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रही थी उन्हें।

वे दोनों जने फ्रंट डेक की रेलिंग पकड़े खड़े थे—इन्दिरा की तरफ पीठ करके। खूबसूरत लड़का था और लड़की उससे भी कहीं अधिक खूबसूरत। उच्छृंखल पवन से उनके बाल उड़ रहे थे, लड़की की साड़ी उड़ रही थी, लड़के का कुर्ता उड़ रहा था। हवा में एक मधुर सुवास फैल गयीं थी। वे दोनों दीन-दुनिया से बेखबर अपने में ही निमग्न थे।

“सच बड़ी भूख लगी है।”—स्वर लड़के का था।

लड़की ने धमकाया, “तुम बड़े पेटू हो विभास। स्टीमर पर चढ़ने से पहले ही तो रेस्टोरॉ में इतना खाकर आये थे। अब और खाओगे तो बीमार नहीं पड़ोगे?”

“नहीं, बिल्कुल नहीं”—लड़के ने तेज स्वर में प्रतिवाद किया, “जानती हो, मैं डाक्टर हूँ? हम लोग कभी बीमार नहीं पड़ते। सच इलू, तुम्हारे टिफिन कैरियर की बड़ी-बड़ी भींगा मछली—”

“फिर वही?”—इलू अथवा इला ने इस बार कड़ाई दिखाई, “अगर फिर भींगा मछली का नाम लिया तो टिफिन-कैरियर समेत नदी में उठाकर फेंक दूंगी सब। दस बजे से पहले एक टुकड़ा भी खाने को नहीं मिलेगा। डाक्टर हो। खाक हो डाक्टर तुम। एम० बी० पास किया है खाली आदमी मारने के लिए।”

डॉट खाकर विभास चुप रह गया। दिखाई दिया कि भींगा मछली न मिलने से इसका मन निराश व क्षुण्ण हो गया था।

इला कोमल स्वर में बोली, “सच देखो गुस्सा मत करो । तुम्हारे ही लिये तो खाना है, तुम्हीं तो खाओगे । मैं तो कह रही थी—”

स्टीमर एक मोड़ ले रहा था । असतर्क नौकाओं को सावधान करने के लिए जोर से सीटी बजायी उसने दो बार । कई बातें उसकी आवाज में खो गयीं । बाकी सब बातें इसी तरह एकाग्रचित्त होकर सुनने लगी इन्दिरा । उसका व्यर्थ, शून्य जीवन परिपूर्ण यौवन के सौन्दर्य की ओर देखकर अभी भी बीच-बीच में लोलुप हो उठता था ।

इला कहती जा रही थी, “अच्छा, क्या जरा भी रोमांस नहीं होता तुम्हें ? शादी के बाद हनीमून मनाने चले हो, कहाँ तो अच्छी-अच्छी कविताएँ आनी चाहिए थीं मन में, पर वह सब तो गया भाड़ में, खाली भींगा मछली, भींगा मछली ।”

“यह मत समझो कि चीर-फाड़ करते-करते मैं बिल्कुल ही रियलिस्टिक हो गया हूँ । अभी भी कवि-गुरु की कविता याद है, देखो सुनाता हूँ—

‘पाक प्रणाली’ मते कोरो तुमि रंधन,
जेनो इहा प्रणयेर सब सेरा बन्धन ।
चामड़ार मतो जेनो ना देखाय लूचिटा,
स्वरचित बले दावी नाहीं करे भूचिटा,
पाते बशे पति जेनो नाहि करे क्रन्दन ।

(पाक प्रणाली के अनुसार तुम यह समझ कर खाना बनाया करो कि प्रणय का यही सबसे श्रेष्ठ बन्धन है । पूरी कहीं चमड़े जैसी चिमड़ी न हो जाय, कि मोची आकर अपना अधिकार जमाने लगे और उधर पति थाली पर बैठकर क्रन्दन शुरू कर दे ।)

“अकृतज्ञ कहीं के, कब तुम्हें चमड़े-जैसी पूरी खिलायी है ?”

“बहुत बार ।”

“भूठे एक नम्बर के” भंकार इला की थी । उसके बाद जरा दाम्पत्य कलह और फिर मधुर मिलन की एक झलक दिखाई दी । सुबह की धूप, नदी का पानी, नीला आकाश, स्टीमर के पहियों से टकराते पानी का गर्जन, सब मिलकर जैसे एक अपरूप लिरिक कविता का सृजन कर रहे थे ।

स्कूल मिस्ट्रेस कुरुगामिस इन्दिरा चौधरी का दिल बिना बात के जला जा रहा था । मन में एक दबा आक्रोश था—स्टीमर के पैडल की तरह उसमें भी अश्रान्त घात-प्रतिघात हो रहे थे । गालों पर, माथे पर जैसे रक्त-बिन्दु उभर कर

जलन पैदा कर रहे थे। जाने कब वह रोमांचकारी जामूसी उपन्यास उसके हाथ से खिसक गया था।

उन लोगों को तो इस वक्त सारी पृथ्वी ही एक दूसरे रंग में रंगी दिखाई दे रही थी। आकाश, वातास, नदी के जल, स्टीमर की सीटी सबसे जैसे शहनाई के मुर उठ रहे थे। शरद की धूप में दिशाएँ जैसे बसन्ती साड़ी पहनकर अवगुंठिता नववधू की तरह उन लोगों की दृष्टि के सामने आकर खड़ी हो गयी थीं। स्टीमर के पहियों में उसी की जलतरंग थी। उनके इस मिलनोत्सव में पृथ्वी ने ही नहीं जैसे चारों दिशाओं के समस्त प्राणियों ने भी योग दे रखा था। जो निद्रानुर यात्री दिन दोपहर को डेक पर लम्बे हो गये थे या मुर्गी के भोल की गंध से आकृष्ट होकर जो रसोई के आस-पास चक्कर काट रहे थे या इंजिन के कमरे में घुमे जो कालिखपुते खलासी बॉयलर की गुलाबी आग में कौयला भोंक रहे थे—वे सब और कोई नहीं इस आनन्दित बरात के ही बराती थे। इसलिए जले मुँह की वदसूरत इन्दिरा के साथ जान-पहचान करने में देर नहीं लगी इला को।

डेक पर वे ही तीन जने थे, बातचीत जम गयी। कहाँ जा रहे हैं, कौन हैं, क्या करते हैं। घर में कौन-कौन है, शादी कब हुई। आशा है दाम्पत्य जीवन सुखी है। आप लोगों से मिलकर बहुत खुशी हुई, जोड़ी तो ऐसी है कि जिसे आइडियल कम्बिनेशन कहना चाहिये, आदि।

शाम होती आ रही थी। नदी के जल पर रंगीन प्रकाश पड़ रहा था। उस प्रकाश ने इला के सुन्दर मुख पर पड़कर उसे और भी सुन्दर बना दिया था। उसी की ओर एक बार नजर उठाकर कहानी शुरू की इन्दिरा ने।

—आप लोग जानना चाहते हैं मेरा मुँह कैसे जल गया। वह एक ऐक्सिडेंट था। पर छोड़िये वह बात। एक लड़की की कहानी सुनाती हूँ, सुनिये। समझ लीजिये वह एक कहानी ही है असलियत कुछ भी नहीं है उसमें।

विभास और इला ने एक दृष्टि-विनियम की आपस में, अर्थात् अपनी ही कहानी कहने जा रही थी इन्दिरा। आत्मचरित या वास्तविक घटना वर्णित करने का ढंग ही यह है कि शुरू से ही उसे अस्वीकृत कर लिया जाय।

इन्दिरा बोली, हाँ, वस कहानी ही है। स्टीमर पर ही इसका शुरू है और स्टीमर पर ही अंत। अतएव इसकी कोई भी बात सच मत समझियेगा। सोच लीजियेगा सिर्फ वक्त काटने के अलावा इसका और कोई उद्देश्य नहीं था।

आग्रह से इला की आँखें चमकने लगीं। विभास उत्सुक दृष्टि से देखने लगा। दोनों के मुँह से एक साथ निकला, अच्छा कहिये अपनी कहानी।

स्टीमर पूर्ण वेग से चल रहा था। आकाश में प्रकाश धीरे-धीरे म्लान पड़ता

जा रहा था। दोनों किनारों के गाँव स्वप्न के एक अंश जैसे दिखाई पड़ रहे थे। पानी पर झुंड बनाकर सारिकाएँ उड़ रही थीं, पन्ने जैसे हल्के लाल रंग की बहुरियाँ शिकार के लिए तीर की तरह आकर पानी में डुबकी लगा रही थीं। वच्चों के जाल में इलिश मछलियाँ झिलमिल-झिलमिल कर रही थीं। नीचे से यात्रियों व खनासियों के खाने की एक मधुर सुगंध आ रही थी।

इन्दिरा ने कहना शुरू किया :

“एक लड़की की कहानी है। असाधारण नहीं एक साधारण लड़की की। पथ-घाट पर जो दिखाई देती हैं, संसार में जिनसे प्रतिदिन साक्षात् होता है, उन्हीं में से एक की। वह ऐसी नहीं थी, जिसके ऊपर नजर पड़ जाय तो हटे ही न और ऐसी भी नहीं थी कि नजर पड़ते ही फौरन हटा लेने की तवियत हो जाय। गाँव में जो तुलसी के नीचे प्रदीप जलाती हैं और शहर में आकर लिखना-पढ़ना सीख कर भी जो सहज रूप से अकेले रास्ता नहीं चल पातीं, उसी तरह की लड़की थी वह। अधिकतर इन सब काली लड़कियों के मुख पर एक अपूर्व लावण्य की दीप्ति रहती है—खास कर चढ़ती उम्र में। गोरा-चिट्ठा रंग उस दीप्ति को बलान्त कर देता है पर वही दीप्ति सौम्य श्यामलता में और भी सजीव बनकर निखर उठती है। घनिष्ठता से मिले बिना इसको देखा नहीं जा सकता—और जो देख लेते हैं वह फिर भूल नहीं सकते। एक बात का ख्याल रखियेगा कि उज्ज्वल गौरांगी के प्रेम में जो पड़ते हैं उनकी तो आत्मरक्षा की सम्भावना थोड़ी-बहुत हो भी सकती है, परन्तु काली लड़की से जो प्यार करते हैं उनके उद्धार की तो लेशमात्र भी आशा नहीं होती।

मैं जिस लड़की की कहानी सुना रही हूँ समझ लीजिये उसका नाम लक्ष्मी था—इस लावण्य का वरदान उसे भी मिला था। लिखाई-पढ़ाई कोई खास काम की नहीं थी, थर्ड इयर तक पढ़ी थी। उसके बाद उसकी शादी हो गयी, जिस तरह आमतौर पर लड़कियों की होती है। प्रेम-विवाह भी नहीं, सिविल-मैरिज भी नहीं; माँ-बाप की पसंद के एक साधारण बंगाली लड़के के साथ। मान लीजिये उसका नाम सत्येन था। राइटर्स बिल्डिंग में काम करता था, कलकत्ते में अपना एक दुमँजिला मकान था, बाप, माँ, भाई-बहन सब थे। कहानी के नायक—जैसे न कोई खास गुण थे उसमें, न तो रोमियो था वह और न ही डॉन जुआन। काले रंग का एक लड़का था, मध्यम कद का। बी० ए० पास करके नौकरी पर लग गया था।

पर लक्ष्मी सुखी थी और सत्येन भी दुखी नहीं था। आफिस से भागकर दोपहर को सत्येन घर आता और पत्नी को मैटिनी शो में अंग्रेजी सिनेमा दिखाने

ले जाता। शाम को लेक के किनारे बैठ कर 'हैपी वॉय' आइस्क्रीम खाते, आउटरम घास के पास छाया में पड़ी लोहे की बेंच पर बैठे-बैठे रंगून के जहाज और गंगा के जल पर पड़ते सूर्यास्त के प्रकाश की झलक देखते। सूर्य डूब जाता; हावड़ा के आकाश में चाँद उदित हो जाता और लक्ष्मी गुनगुना उठती—'जेते-जेते पथे पूर्णिमा राते चाँद उठेछिलो गगने'—(जाते-जाते रास्ते में पूर्णिमा का चाँद आकाश में निकल आया था।)

दिन अच्छे कट रहे थे पर आगे नहीं कटे। सत्येन को प्लूरिसी हुई और फिर प्लूरिसी के बाद यक्ष्मा।''

चश्मे के शीशे पोंछने के लिए एक क्षण को रुकी इन्दिरा। नदी के पूरब में गाँवों को अस्पष्ट करती हुई संध्या उतर आयी थी—पश्चिम आकाश में अभी भी तपे ताँवे की सी ललाई बाकी थी। स्टीमर की बिजलियाँ जल गयी थीं। सर्चलाइट के प्रकाश ने दूर नारियल वृक्षावली से आक्रीर्ण नदी के मोड़ को उद्भासित कर दिया था। इधर इला और विभास निर्निमेष दृष्टि से इन्दिरा के मुँह की ओर ताक रहे थे।

इला के स्वर में वेदना थी, "यक्ष्मा?"

इन्दिरा ने चश्मा लगा लिया। शीशे पर बिजली का प्रकाश पड़ने से जैसे उसकी दोनों आँखें चमकने लगीं। हाँ, यक्ष्मा। कभी-कभी इस तरह के काव्य में वियोगान्त परिणति भी होती है। क्या किया जा सकता है, कोई चारा नहीं है।

इलाज होने लगा। बैंक में जो छोटी-सी संचित राशि थी, पहले उसके सहारे और फिर लक्ष्मी के गहनों के सहारे! पर बेकार! सबने समझ लिया था जो कि अंत है वह पास आता जा रहा है। लक्ष्मी की मनोदशा का अनुमान आप लोग कर सकते हैं, इस संबंध में मैं कुछ नहीं कहूँगी। लेकिन फिर भी मरते दम तक इन्सान आशा नहीं छोड़ता; शायद लक्ष्मी के बारे में भी यही हुआ हो।

पर आश्चर्य की बात तो यह थी कि जब सबने बिल्कुल आशा छोड़ दी थी उस वक्त सत्येन का भरोसा बढ़ता जा रहा था। इस रोग का धर्म ही शायद यह है। उसकी धारणा थी कि वह पूर्ण-रूप से स्वस्थ हो गया है, अब डर की कोई बात नहीं है। अस्ल में बाहर से उसका स्वास्थ्य पहले से काफी अच्छा भी दिखता था। सत्येन असन्तोष प्रकट करने लगा, 'अब मुझे इस तरह अलग रखने की क्या जरूरत है, मैं सबके साथ उठूँ-बैठूँगा, सबके साथ खाऊँगा। लक्ष्मी भी अब दूर क्यों रहती है? अब तो वह बेरोकटोक मेरे पास आ सकती है। मैं तो बिल्कुल ठीक हो गया हूँ।'।

असल में अंतिम बात ही उसका लक्ष्य थी, पर इलाज करने वाले नये डाक्टर—समझ लीजिये उसका नाम विभास—”

विभास और इला एक साथ चौंक उठे—“विभास ?”

इन्दिरा हँस पड़ी, “सोच लीजिए काल्पनिक नाम है ! सामने जो मिलता है उसे मॉडेल बनाकर कहानी कहना आसान होता है न ! इसके अलावा अगर विभास नाम का एक और भी डाक्टर हो तो नुकसान क्या है ?”

इला के मुख पर प्रतिवाद के भाव स्पष्ट हो आये पर विभास उत्सुक था, बोला, “नहीं कहीं कोई नुकसान नहीं है । आप कहती जाइये ।”

“हाँ तो क्या कह रही थी मैं ?” कौतुकमय स्मित हास्य से इन्दिरा ने एक बार इला की तरफ दृष्टि घुमाई, “लक्ष्मी को करीब पाने के लिए सत्येन दिन पर दिन जैसे पागल होने लगा । यह भी शायद इस रोग का एक और विशिष्ट लक्षण है । अन्दर जितना अधिक क्षय होता है अतृप्त वासनाएं उतनी ही तीव्र हो उठती हैं । पर तरुण डाक्टर विभास का—एक बार फिर वही इन्दिरा—विभास का कड़ा निषेध था कि किसी भी प्रकार की उत्तेजना रोगी के लिए घातक सिद्ध होगी । अतएव लक्ष्मी को पति से बात तक करने का अधिकार नहीं था ।

●

इसके अलावा एक और भी बात थी जो और किसी के ख्याल में न आने पर भी लक्ष्मी की नजरों से छुपी नहीं थी । रोगी की चिकित्सा में दिन पर दिन निर्धन बनते जाते उस परिवार के प्रति विभास के मन में एक निःस्वार्थ सहानुभूति पैदा हो गयी थी । अंत में उसने दिन में दो बार आना शुरू कर दिया । फीस माँगने की बात तो दूर थी उस संबंध में अगर कोई बात उठती भी तो जीभ काटकर तीन कदम पीछे हट जाता वह, कहता, ‘नहीं-नहीं रुपये किस बात के, यह तो मेरा कर्तव्य है ।’

दरिद्र परिवार ने इसमें अपना नुकसान नहीं समझा, वरन् संतोष की साँस ली ।

पर नये डाक्टर—विशेषकर तरुण डाक्टरों का कर्तव्य-बोध अवस्था विशेष में कभी-कभी संघातक हो उठता है । नहीं-नहीं विभास बाबू, कुछ ख्याल मत करियेगा, यह कटाक्ष आप पर नहीं है । मैंने तो ऐसे ही सहज भाव से कह दिया है—बिल्कुल गैरजिम्मेदार उक्ति कहकर उड़ा दे सकते हैं उसे आप ।

जो भी हो, कर्तव्य के तकाजे से नया डाक्टर एक दिन फलों की टोकरी ले आया । लक्ष्मी उस वक्त छज्जे पर खड़ी थी—म्लान विषण्ण नेत्रों से सामने के बड़े मकान की छत पर अपनी रक्तिम आभा छोड़कर जाते हुए सूर्य को देख रही थी । शायद उसे आउटरम घाट की वह संघ्या, वह झिलमिल करता पानी—घाट छोड़

कर जाते हुए दूर काले-काले सवारी-जहाजों की सीटी का गम्भीर उदास सुर याद आ गया था ।

विभास बोला, 'आप बहुत सुन्दर लगती हैं देखने में बिल्कुल एक चित्रित तस्वीर जैसी ।'

लक्ष्मी ने चौंककर पीछे देखा । संध्या के प्रकाश में विभास की आँखों में उसे जो दिखाई दिया वह लड़कियों के लिए बहुत ही परिचित होता है—जैसे पक्षीमात्र बन्दूक की नली देखकर पहचाना जाता है ।'

विभास का मुँह फट पड़ गया । अचानक तीव्र स्वर में बोला, 'छोड़िये, आपकी कहानें अच्छी नहीं रही है मिस चौधरी—माफ करियेगा ।'

पर विजली के प्रकाश में इला के मुख के भाव आश्चर्यजनक रूप से बदले हुए दिखाई दिये । उसी तरह तीव्र स्वर में प्रतिवाद किया उसने, नहीं, 'अच्छी लग रही है, आप कहती जाइये ।'

विभास या इला दोनों में से किसी की भी बात इन्दिरा ने जैसे सुनी न हो इस तरह वह कहती रही—'विद्युतगति से लक्ष्मी वहाँ से जाने लगी पर विभास ने रास्ता रोक लिया । बोला, 'आपके पति के लिए ये फल—'

'माँ, को दीजिये'—तीक्ष्ण स्वर में जवाब देकर लक्ष्मी वहाँ से चली गयी ।

सास से विभास ने क्या कहा, किसको मालूम, पर आड़ में उन्होंने लक्ष्मी को दो-चार भली-बुरी सुनायी । बोलों, 'बहू, जैसा रूतू है वैसा ही वह भी घर का लड़का है । इस वुरे वक्त में कितना कर रहा है—तुमने उसका अपमान क्यों किया ।'

लक्ष्मी ने जवाब नहीं दिया, जवाब देने के लिए कुछ था भी नहीं । विभास के उपकार के जाल में वह दुखी परिवार किस तरह दिन पर दिन फँसता जा रहा था, किस तरह असहाय बनकर आत्मसमर्पण कर रहा था, यह तो वह अपनी आँखों से देख ही रही थी । विभास के विरुद्ध एक भी शब्द कहते ही सास-समुर उस पर टूट पड़ेंगे, यह समझना उसके लिए बाकी नहीं था ।

उधर सत्येन दिन पर दिन न जाने कैसा होता जा रहा था । लक्ष्मी को करीब पाने की कामना उसके मन में अग्नि की तरह प्रज्वलित होने लगी थी । खाने की थाली उठाकर फेंक देता, दवा का ग्लास पटक कर तोड़ देता । रात को खिड़की पर बैठी विनिद्र क्लान्त लक्ष्मी, पिंजड़े में बंद एक जंगली जानवर-जैसे अपने कमरे में घूमते हुए सत्येन के पदशब्द सुनती रहती ।

उस दिन चाँदनी ऐसी छिटक रही थी जैसे नदी में बाढ़ आ गयी हो । गंभीर रात में कलकत्ते के आकाश में बीच-बीच में ऐसा चाँद दिखाई देता है । दिन भर का समस्त कोलाहल, समस्त कुरूपता किसी अतल गहराई में डूब जाती है । शान्त,

स्तब्ध, मधुर निद्रा पर ज्योत्स्ना जैसे फूल की पंखुड़ियों की तरह भरती रहती है। पर लोग अपने-अपने घरों में नींद में बेगुध पड़े होते हैं, ज्योत्स्ना के फूल वे बीन नहीं पाते। और जो लोग लक्ष्मी की तरह सारी रात जागते हैं उन्हें वह ज्योत्स्ना किसी कंकाल की हँसी जैसी दिखाई देती है। आसन्न वैधव्य की निर्मम निष्ठुर शुभ्रता जैसी दीखती है।

उस दिन लक्ष्मी रेलिंग पकड़कर झुकी हुई थी, गालों पर आँसुओं की धारा बह रही थी। उसी समय उसकी गर्दन पर किसी के अंगार-जैसे गर्म तीव्र निश्वास का आभास हुआ। चौंकर जैसे ही वह पीछे मुड़ी कि किसी ने पूरी शक्ति लगा कर उसे सीने से चिपटा लिया। जङ्गली जानवर की तरह उसकी आँखें अंगारों जैसी चमक रही थीं। सत्येन था वह।

लक्ष्मी बोली, 'यह क्या, तुम !'

सत्येन ने जवाब नहीं दिया। उसी तरह लोहे-जैसे दोनों हाथ से जकड़े हुए उसे कमरे की तरफ खींचने लगा। उसके अन्दर का बहुत दिनों का भूखा पशु जाग उठा था।

लक्ष्मी स्वयं को छुड़ाने की प्राणपण से चेष्टा करने लगी।—क्या कर रहे हो, क्या कर रहे हो तुम पागलों की तरह। सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा। तुम्हारे पांव पड़ती हैं, आज छोड़ दो। तबियत ठीक हो जाने दो।

सत्येन ने तब भी कुछ जवाब नहीं दिया। उसके शरीर में जैसे सौ हाथियों का बल आ गया था। लक्ष्मी का रुदन, मित्रत कुछ भी उसके कानों में नहीं गया। वह पागल हो गया था बिल्कुल। पत्नी को दोनों हाथों में उठाकर कमरे में ले आया।

फलाफल रात ही रात में दिखाई दे गया। अंतिम बार के लिए खून निकला सत्येन के मुँह से और लक्ष्मी से इस जन्म का अंतिम पावना वमूल करके चला गया वह—लक्ष्मी विधवा हो गयी।''

इन्दिरा रुकी जरा। नदी तल पर अमावस्या की काली रात का घोर अँधेरा था। सन-सन करती हवा बह रही थी। सर्च लाइट उसी तरह निशेध की तरंगित जलधारा पर, दोनों किनारों की मर्मरित सुपारी व नारियल वृक्षावली पर प्रकाश फेंक रही थी। विभास का मुँह विरक्ति से भर उठा था और इला के मुख पर थी समवेदना की एक म्लान रेखा।

एक दीर्घ निश्वास छोड़कर इला ने पूछा, कहानी खत्म हो गयी आपकी ?

“नहीं, अभी कहाँ हुई। ये सब साधारण कहानियाँ होती हैं—रोजमर्रा के जीवन की। इनका आरम्भ भी नहीं होता और अंत भी नहीं। जिस तरह रोज-मर्रा का जीवन चलता है, यह भी उसी तरह खाते-पीते, उठते-बैठते आगे बढ़ती

रहती हैं। तब भी थोड़ा और कहकर कहानी खत्म कर दूँगी मैं। आप लोगों का धैर्य नहीं छूटने दूँगी।”

इन्दिरा कहने लगी, “लक्ष्मी विधवा हो गयी। बंगाली घर की सासों जिस तरह पुत्र-शोक में छाती पीट-पीट कर रोती हैं, सत्येन की माँ भी वैसे ही रोने लगी, उसी तरह कुलक्षणी बहू का नाम ले-लेकर कोसने लगी। शादी के बाद साल भर के अन्दर ही अन्दर जो राक्षसी भले-चंगे पति को इस तरह खा गयी हो, जिसने उनकी हरी-भरी गृहस्थी को इस तरह आग लगा कर राख कर दिया हो, उसे वह किसी भी तरह क्षमा करने के लिए तैयार नहीं थी। और यह कोई असंगत या अस्वाभाविक बात भी नहीं थी।

दिन-रात बातें सुनते हुए भी लक्ष्मी ससुराल की लदहीज पर ही पड़ी रही, दुर्भाग्य का बोझा सिर पर लाद कर मैके जाने का मन नहीं हुआ उसका। इसी तरह एक विराट शोकोच्छ्वास के प्रलय में डूबते-उतराते कई महीने बीत गये। किसी भी चीज का अभाव हमेशा अपूर्ण नहीं रहता—इसका भी नहीं रहा।

इधर परिवार की हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। बैंक में जो थोड़ी-बहुत पूँजी थी, वह सत्येन की बीमारी में ही खत्म हो-गयी थी। ऋण का बोझ भी काफी भारी हो गया था। समुर को जो पेंशन मिलती थी, वह नाम-मात्र की थी, दो वक्त की रोटी भी मुश्किल से जुड़ पाती थी। कर्ज की क़िश्त नहीं दी जाती तो वह मकान भी, जो अंतिम सहारा था, चला जाता और मकान बचाने की कोशिश करते तो महीने में दस दिन उपवास करना पड़ता सबको।

लक्ष्मी की आई० ए० तक पढ़ी हुई शिक्षा इतने दिन बाद अब काम में आयी। मुहल्ले के स्कूल में छोटी-सी नौकरी ढूँढ़ ली उसने। कीचड़ में फँसा हुआ पारिवारिक गाड़ी का पहिया अपनी जगह से हिला और धीरे-धीरे आगे सरकना शुरू किया उसने। कुलक्षणी, विधवा बहू पर होने वाली गालियों की बौछार धीमी पड़ गयी, अब उसका मूल्य बढ़ गया; यहाँ तक कि थोड़ा-बहुत प्यार भी मिलने लगा। किसी-किसी दिन तो स्कूल से लौटने पर उसे सास रसोई में बैठी उसके लिए नाश्ता तैयार करते मिलती थी।

दिन कट रहे थे किसी तरह और शायद इसी तरह कट भी जाते। लक्ष्मी भूल जाती स्वयं को और सास-ससुर के हृदय पटल से सत्येन के अभाव का चिन्ह तक मिट जाता। उसके बाद सुदूर भविष्य में शायद यह भी देखा जाता कि इस तरह स्वयं में ही डूबकर लक्ष्मी सुखी हो उठी है। जीवन का धर्म ही है—सामने की हर परिस्थिति को मान लेना, स्वीकार कर लेना। लक्ष्मी के लिए भी इसका तिक्रम नहीं होता।

लेकिन जो होना चाहिए था हुआ नहीं, बीच में राह आ गया। कर्त्तव्य-परायण डाक्टर विभास सत्येन की मृत्यु के बाद भी इस घर के प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं भूला।

सत्येन के लिए तो फलों की टोकरी की ज़रूरत अब नहीं रही थी, पर सास के लिए थी। बुढ़ापे में मिठाई पर अधिक मन चलता है आदमी का, विभास डिब्बे के डिब्बे अच्छे बढ़िया सन्देश लाने लगा। दशहरे के दिन बिना बात ही समुर को प्रणाम करके दस रुपये दे गया। उनके मना करने पर म्लान मुख बनाकर बोला, 'मुझे इतना पराया क्यों समझते हैं आप? सत्येन मेरा दोस्त था, उसके शून्य स्थान पर क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं है।'

बात अच्छे ढंग से कहना जानता था विभास। समुर की आँखों में पानी आ गया। वे बोले, 'नहीं बेटा, एक गया है तो उसकी जगह थोड़ा-बहुत तुम्हें पालिया है। तुम्हें क्या कभी पराया समझ सकता हूँ।'

पर विभास सत्येन के शून्य स्थान पर स्वयं को पूरी तरह प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करने लगा, यहाँ तक कि लक्ष्मी के पतिरूप में भी।

सास-समुर कुछ समझ पा रहे थे या नहीं, यह तो भगवान ही जाने। और अगर समझ भी गये थे तो शायद कुछ कर सकने की हालत में वे नहीं थे। दरिद्रता धुद्रता को लाती है, लोभ को लाती है; और फिर विशेष कर वह दरिद्रता जब असहनीय हो जाए। नये आश्वासन व नये उत्साह से प्रेरित होकर चलने की क्षमता जिसमें नहीं होती वह आँखें बन्द करके किसी भी एक अवलम्ब को पकड़ना चाहता है; रस्सी हो या साँप, कोई भी एक चीज होनी चाहिए। सामयिक आश्वासन ही उसके लिए प्रमुख चीज होती है। लक्ष्मी ने उस वक्त तो नहीं सुना पर बाद में उसे पता चला कि विभास ने उसके समुर को तीन सौ रुपये उधार दिये थे और उन्हें वापस लेने के लिए उसका जरा भी तक्राजा नहीं था।

यह भी हो सकता है कि उस परिवार के प्रति उसे एक मोह-सा हो गया हो; पर दिन पर दिन बढ़ते हुए मोह से उसका लक्ष्मी के प्रति लोभ, एक असीम लोलुपता प्रत्यक्ष होती जा रही थी। सहसा कमरे में आकर कहता, 'भाभी, इस तरह चुपचाप क्यों बैठी हैं, आइये न, बातें करें।'

थोड़े-बहुत परिमाण में विभास को स्वीकार किये बिना चारा नहीं था कोई। क्योंकि अब उसने इस घर में छोटे लड़के का आसन प्राप्त कर लिया था—अर्थात् लक्ष्मी के परम स्नेहभाजन देवर का, और देवर के नाते थोड़े-बहुत अतिरेक का

उसे हक था ही। अतः इस वारे में कोई भी अनुयोग दिखाने पर भली-बुरी ही सुनने को मिलती उसे।

उस दिन रविवार की छुट्टी थी। सास-ससुर गंगा-स्नान करने गये हुए थे और छोटे बच्चे बाहर फुटपाथ पर खड़े भालू का नाच देख रहे थे। लक्ष्मी नहा कर दुमंजिले पर अपने कमरे में शीशे के सामने खड़ी बाल बना रही थी।

उसी समय शीशे में किसी की प्रतिच्छाया दिखाई दी। चोर की तरह दंभ पाँव विभास कमरे में चला आया था। बोला, 'भाभी।'

गुस्से से लक्ष्मी का मुँह लाल हो गया।

'आप इस तरह मेरे कमरे में क्यों आये?'

'क्यों, नहीं आते क्या?' विभास आराम से लक्ष्मी के विस्तर पर जम कर बैठ गया, 'सच भाभी, जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं रूप खुलता जा रहा है तुम्हारा। ऐसी लगती हो जैसे तपःकृशा पार्वती हो।'

असह्य क्रोध से लक्ष्मी बोली, 'आपकी प्रशंसा की मुझे जरूरत नहीं है। ऐसे वक्त बे-वक्त आप मेरे कमरे में मत आया करिए—मुहल्ले के लोग देखेंगे तो क्या सोचेंगे?'

'सोचेंगे क्या' विभास के मुँह पर एक शैतान की हँसी थी; बोलो ना रानी, क्या सोचेंगे? सचमुच तुम्हारा लक्ष्मी नाम बिल्कुल सार्थक है।'

लक्ष्मी खड़ी-खड़ी काँपने लगी—जवाब नहीं निकला मुँह से कुछ भी।

'इस घर में सत्येन की जगह मुझे मिल गयी है, फिर उसकी लक्ष्मी भी क्यों नहीं मिलेगी?' कहते-कहते विभास उठ खड़ा हुआ और सहसा एक झटका देकर लक्ष्मी को बिल्कुल छाती के पास खींच लिया।

क्षण भर में लक्ष्मी का सारा शरीर अवश हो गया, मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। एक पल के लिए तो ऐसा लगा जैसे वह मर गयी हो, पर सिर्फ एक पल के लिए। दूसरे ही क्षण एक जोर के धक्के से छिटक कर विभास दीवार की ओर गिरा और उसका सिर जोर से दीवाल से जा टकराया।

विमूढ़ बनकर कुछ देर तो विभास देखता ही रह गया। जल्दी-जल्दी लम्बी-लम्बी साँस लेने लगा वह। फिर दबे, कठोर स्वर में बोला, 'अच्छी बात है।'

तब जो विभास लक्ष्मी के कमरे से निकल कर गया तो फिर एक महीने तक घर में पैर नहीं रक्खा उसने। और लक्ष्मी लज्जा से, अपमान से विस्तर पर लोट-लोट कर रोने लगी। बात किसी से कहने की नहीं थी, कोई भी विश्वास नहीं करता, वरन् वैधव्य के अपराध के कारण सारा दोष उसी के सिर पर मढ़ दिया जाता।

लेकिन विभास तो वक्त की ताक में बैठा था, मिल गया मौका उसे यथा-समय ।

मुहुल्ले में माता फैली । घर में बाल-बच्चों को निकली, लक्ष्मी के भी निकली । जितना तेज बुखार था उतनी ही तीव्र यन्त्रणा थी । तीन दिनों तक वह आँख भी न खोल सकी—कुछ भी नहीं देख पायी कि उसके चारों ओर क्या हो रहा था ।

दर कर समुर विभास को बुला लाये । नया डाक्टर और फिर कर्तव्यपरा-यण, अच्छी दवा ही दी उसने—प्रेस्क्रिप्शन लिखकर नहीं अपने हाथों से ही लाकर दी । बोला, 'यह मुँह पर लगा दीजियेगा, माता जल्दी खतम हो जायेंगी और एक भी स्पॉट नहीं रहेगा ।'

मुँह पर दवा का लेप होते ही अचेत लक्ष्मी असह्य यन्त्रणा से उठकर बैठ गयी । ऐसा लगा जैसे किसी ने उसके सारे मुँह पर पिघला हुआ गर्म शीशा उँडेल दिया हो । उँगली लगाते ही जली खाल उतर कर आने लगी, सारे मुँह पर लाल-लाल धाव हो गये और सदा के लिए वीभत्स, कुरूप हो गयी लक्ष्मी ।

अचानक स्टीमर की सीटी जोर से बज उठी । सामने एक बन्दरगाह पर सर्चलाइट का प्रकाश पड़ रहा था । इन्दिरा उठकर खड़ी हो गयी । बोली, "मुझे इसी स्टेशन पर उतरना है । धन्यवाद, आप लोगों से बातचीत करके बहुत खुशी हुई ।"

इला व्याकुल होकर बोली, "ठहरिये, जरा ठहरिये । स्टीमर के घाट पर लगने में तो अभी देर है । उसके बाद क्या हुआ ?"

गूटकेस हाथ में उठाकर इन्दिरा हँसकर बोली, "होता क्या । विभास पर केस चलाया जा सकता था, पर प्रमाण तो होना चाहिए था । दवा की शीशी वहीं लाया था इसका क्या प्रमाण था ? उसके अलावा सास-समुर क्या चाहते कि घर की बात को लेकर अखबारों में छीछालेदर हो । उनके पास न तो रुपया था और न ही उनका कोई सहायक था ।"

नीचे खलासियों की चिल्ल-पों मच गयी थी । स्टीमर घाट से लग गया था, मनुष्यों का कोलाहल सुनाई देने लगा था । इन्दिरा बोली, "अच्छा, नमस्ते ।"

"—नमस्ते ।"

सीढ़ियों पर फिर न जाने क्या सोचकर रुकी इन्दिरा । मुँह फिरा कर बोली, "हाँ एक बात और । लक्ष्मी को खबर मिली है कि हाल ही में विभास की शादी हुई है, एक अच्छी खूबसूरत लड़की के साथ—बहुत कुछ आपके जैसी ।"

और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गयी इन्दिरा ।

विभास एक सूखी हँसी हँसा, बोला, “देखा इलू, कैसी अच्छी कहानी गढ़कर—”

पर इला ने जवाब नहीं दिया। दोनों आँखों से अविश्वास की आग बिखेर कर पैर पटकती हुई वहाँ से चली गयी और केबिन में घुसकर जोर से दरवाजा बन्द कर लिया उसने। बाहर विभास कातर स्वर में पुकारने लगा : “इला, सुनो, सुनो तो इला—”

*

स्टीमर से उतर कर पैदल ही जा रही थी इन्दिरा। सचमुच मनगढ़न्त कहानी थी। अपने सुन्दर सपने टूट गये थे, इसीलिए क्या जो कुछ भी सुन्दर देखती थी उसे विनष्ट करना चाहती थी वह ? उसका मुँह जल गया था एक स्टोव-दुर्घटना में, किसी डाक्टर के एसिड से नहीं।



स्ट्राइक के बाद

कालीदास दत्त

सन् १९३१ में, कलकत्ता

शहर में आपने जन्म

लिया । मिल-कार-

खानों से परि-

वेष्टित उप-

नगर में श्रमिक व निम्न मध्यवर्गीय अंचल में शैशव एवं किशोरावस्था बिताने के कारण आपने साधारण मनुष्य को अंतरंग रूप से पहचानना सीखा है । आप उनके सुख-दुख व आशा-आकांक्षाओं के साथी हैं और साथ ही साथ उनके संग्राम में भी सम्मिलित हैं । उन्हीं की समस्याएँ परम सहानुभूति के साथ रूपायित करते हैं ।

एम. ए. पास करने के बाद आजकल

‘साहित्यकला का संकट व नये रुख’ के

विषय पर पठन-पाठन में लगे हुए

हैं । विभिन्न पत्रिकाओं के साथ

आपका संबंध है, पर

लिखते बहुत कम हैं ।

‘कैरिकेचर व

अन्यान्य गल्प’

प्रेस में

है ।



लिस्ट तैयार
करके सुत्रत चौधरी
उठ खड़ा हुआ ।
लिस्ट पर अंतिम
बार जल्दी-जल्दी
दौड़ते - दौड़ते
कॉलिंग - बेल
दबायी । पर
बेयरा नहीं आया ।
“बेयरा” कहकर
चिल्लाने जा रहा
था कि याद आया
बेयरा है ही नहीं,
आयेगा कहाँ से ।
“ इडियट्स ” ।
“वेट, आई विल
टीच यू ए गुड
लेसन—” बुड़-
बुड़ाता हुआ बोला
वह—“सूअर का
बच्चा ।”

बाहर आकर लिस्ट संतरी के हाथ में देकर बोला, इसको गेट पर टाँग दो,
जल्दी ।

सिर भन्ना रहा था । चार दिन चार रातों से सोया नहीं था, जितना सोया
था वह नहीं के बराबर था । बन्दी बना हुआ था उसी कमरे में, आफिस की
बिल्डिंग में । स्नायुओं पर भारी दबाव पड़ा था, अब इससे छुटकारा मिले तो जान
बचे । टॉयलेट-रूम में जाकर आँखों में, मुँह पर पानी के छींटे मारे और शीशे में
मुँह देखा । चेहरा सूख गया था, आँखों के नीचे का हिस्सा और भी काला हो

गया। अत्याचार की मात्रा जरा अधिक हो गयी थी, आखिर तो शरीर ही था। वालों में कंधी फिरा कर बासी नेकटाई ठीक की उसने।

ऐविजक्यूटिव इंजिनियर मि० गांगुली भी एक ही सुअर का बच्चा है, उसका बाप भी सुअर का बच्चा था—असिस्टेंट इंजीनियर सुब्रत चौधरी ने अपने बॉस के सम्बन्ध में धारणा बनायी। गत रात को स्पेशल गार्ड के ऐस्कोर्ट में गांगुली घर गया था। जाने क्या जरूरी काम था, “चौधरी, मैं सुबह होने से पहले ही आ जाऊंगा, तुम एक डिस्चार्ज लिस्ट तैयार कर डालो। देखो, मैं जा रहा हूँ, किसी को भी मालूम नहीं पड़नी चाहिये यह बात। मिसेज़ गांगुली की तबियत बहुत खराब है, तीन बार टेलीफ़ोन आ चुका है।”

सुबह का नाम लेकर आज दस बजे आया है। हूँ, इस बुढ़ापे में नयी शादी की है इसने और मैं अभी बेचलर हूँ। पर मेरी वह तुम्हारी उससे कुछ कम नहीं है। मैंने भी चार दिन चार रातों से विनता को देखा नहीं है, छुआ नहीं है। तकदीर से मिसेज़ सान्याल पास ही थी। रिपलिसव मिसेज़ सान्याल। कुत्सित। उसको सर्वर्न आफिस में ट्रांसफर कर दूँगा। पच्चीस की भी पूरी नहीं हुई है और तीन-तीन जन चुकी है।

गांगुली के चेम्बर में आकर बोला, “सर, मैं जा रहा हूँ।”

गांगुली खाना खा रहा था। बोला, “बहुत देर मत करना। हाँ, थोड़ी नोंद की जरूरत अवश्य है। तीनेक घंटे में लौट आना। एक-एक को बारी-बारी से बुलाकर स्क्रूटिनाइज़ करना पड़ेगा, वीन्ड पर दस्तखत कराने पड़ेंगे। यह लोग गेट के बाहर ब्यू लगाकर खड़े हैं। तो तुम तीन के अन्दर ही लौट रहे हो, क्यों।”

“दो के अन्दर ही लौट आऊँगा। जा रहा हूँ, सर।”

चेम्बर से निकलकर उसने एक सिगरेट जलायी। बॉस के सम्बन्ध में अपनी धारणा को फिर से याद किया और फिर फाटक की ओर कदम बढ़ाये।

✱

“वह देखो मि० चौधरी जा रहे हैं।”

आफिस की बिल्डिंग निस्तब्ध थी। बाहर छः-सात सौ औरत-मर्द लाइन लगाकर खड़े थे। भीड़ लगाये थे, चिल्ला रहे थे। गेट पर लटकायी गयी लिस्ट को एक-एक करते देख रहे थे। एक भीड़-सी उमड़ी पड़ रही थी। लोग गालियाँ दे रहे थे, एक रुग्ण एनिमिक, पांडुवर्ण लड़की रो रही थी। वह सब सोच रहे थे, हम लोग हार गये हैं, अबकी बार हम लोगों का अच्छी तरह कच्मर बनाया जायगा।

परस्पर वे एक-दूसरे को गाली दे रहे थे, एक-दूसरे पर दोषारोपण कर रहे थे, स्वार्थी की तरह कोई-कोई परतृप्ति की हंसी हंस रहा था—व्यों कि डिस्चार्ज-लिस्ट में उसका नाम नहीं था—लौट कर विजयी की भंगिमा से लाइन में खड़ा हो जाता था। साला कब अन्दर घुसने देगा कौन जाने। बेटा संतरी कैसे राइफल उठाये खड़ा है, जैसे उसके बाप की जमींदारी हो।

“यहाँ हैं मिस्टर चौधरी—”

उन लोगों ने मिस्टर चौधरी को देखा। एक अश्लील गाली देने की इच्छा रहते हुए भी नहीं दे पाये। एक आदमी ने ओठों ही ओठों में, जिससे पास का कोई आदमी सुन न पाये, गाली देकर डरते-डरते चारों तरफ देखा।

एक स्वार्थी ने सबके सामने ही हाथ जोड़कर नमस्ते की, पर चौधरी ने देखा नहीं। पास से न जाने किसने हाथ में थूक लगा कर उस स्वार्थी के सिर पर जोर से चपत लगाकर हाथ खींच लिया। स्वार्थी ने वाप की गाली देकर—चारों ओर देखा पर चपत लगाने वाले का पता नहीं लगा पाया। कुछ लोगों में अनर्थक वीरत्व दिखायी दे रहा था और कुछ के चेहरों पर उद्वेग की काली छाया थी। उन सबके बीच से बिना किसी की ओर देखे स्पेशल गार्ड की मोटर में बैठके चौधरी ने विनता के घर जाना तय किया। वह सोचने लगा जाऊँगा ही। लौट-कर इन स्काउंड्रल्स को शिक्षा दूँगा। नंगा करके चाबुक लगाऊँगा और आटे-दाल का भाव बताऊँगा। जरा विनता के यहाँ हो आऊँ। वारिस पड़ रही है, भीगने दो इन लोगों को। इसके बाद धूप निकलेगी तो धूप में जलेंगे, सामान सब तैयार रहेगा ही, मैं खलियाऊँगा और कवाब बनाऊँगा। ठहरो तुम लोग। गरम सलाख में नरम-नरम मांस एक सिरे से दूसरे सिरे तक जलेगा, खूब भुनेगा। अभी जरा विनता के यहाँ हो आऊँ।

लेकिन ड्राइवर को आदेश देते वक्त टाला चलने के लिए ही कहा। व्योंकि ड्राइवर घर जानता था, आफिस की गाड़ी में और कहीं जाने से सन्देह पैदा होता। उसने सोचा क्या फायदा सन्देह पैदा करने से, घर की दहलीज छूकर टैक्सी से विनता के घर जाया जा सकता है, अभी टाला ही जाना ठीक है।

“चौधरी ने एक बार देखा तक नहीं—आदमी गद्स वाला है।”

“गरूर हो गया है।”

“होने की बात ही है, ऐसा मालूम होता तो मैं भी—”

“चुप रह सा—। मारते-मारते भर्त्ता बना दूँगा।”

मिस सेन, आप रोइये मत। इतने आदमी क्या कभी डिस्चार्ज होते हैं। डर दिखा रहे हैं। हम लोग हार गये हैं न।”

“हार गये हैं माने । फिलहाल लड़ाई बन्द । फिर होगी ।”

“मुझे बहुत डर लग रहा है अजय भैया । हमारा तो और कोई भी नहीं है । वृद्ध बाप, छोटे-छोटे भाई-बहन—”

“हम लोग तो हैं, इतने आदमी हैं । डर किस बात का है सविता ?”

✱

“रोको । यहीं उस दुकान के सामने जरा रोकना ।”

सुव्रत चौधरी उतरा, दुकान में घुसकर बोला, “कैमरा हो गया ? इतने दिनों तक आ नहीं पाया, काम में फँसा रहा ।”

“हाँ सर, हो तो कभी का गया था, सोचा—”

दुकान के छोकरे ने अलमारी से कैमरा निकाला, कपड़े से पोंछकर लेदर-केस चढ़ाते-चढ़ाते बोला, “शटर तो बिल्कुल ही खराब हो गया था, बदलना ही पड़ा । अब ठीक हो गया है, बिल्कुल नया हो गया है । इतना कीमती रोलिफ्लेक्स कैमरा जिस-तिस को मत दिया करिये सर । बिल्कुल सत्यानाश कर दिया था । नहीं बीस नहीं, पच्चीस ही दीजिये, बीस में नहीं हो सका । आप देखियेगा कैसा काम करता है, जरा भी इधर-उधर लगे तो यहीं फँक जाइयेगा—”

ओठों में लगी सिगरेट के धुँए से आँखें मिची जा रही थीं । काफी कष्ट से ताककर एक दस का नोट और निकाला चौधरी ने, कैमरा लिया । सोचा पच्चीस रुपये लगे तो लग गये । लाख रुपये का काम देगा । विनता की एक फोटो लूंगा “दो रोल फिल्म भी दे दो ।” दो नोट निकाल कर दिये चौधरी ने ।

“फिर आइयेगा सर । डेवेलप कहाँ कराते हैं ?”

“खुद ही करता हूँ । बहुत दिनों का शौक है ।”

“तब तो कोई बात ही नहीं है । पर तब भी जरूरत पड़े, तो आइयेगा । लीजिये ।”

चेंज लेकर बिना देखे ही जेब में डाल ली सुव्रत ने । चलते चलते बोला, “अच्छा आऊंगा ।”

पास की दुकान से एक टिन सिगरेट लेकर मोटर में जा बैठा । बोला, “सीधे टाला चलो ।”

✱

मोटर के दरवाजे पर एक धक्का लगाया सुव्रत ने । दरवाजा जोर से बन्द हो गया । बोला, “पाँच बजे आकर ले जाना ड्राइवर ।”

सुबह का नाम लेकर गांगुली दस बजे आया, मैं भी दो बजे कह कर पाँच बजे जाऊँगा । जानवरों को तब तक लाइन में खड़े रहकर तैयार हो लेने दो ।—

चौधरी ने सोचा। साथ ही साथ विनता की बात याद आ गयी, बोला, “रहने दो, तुम्हारे आने की जरूरत नहीं है ड्राइवर। मैं टैक्सी से आऊँगा। अब डर की कोई बात नहीं है।”

“जी साव।”

सन्तरी समेत मोटर घूमकर विपरीत दिशा में हवा हो गयी।

सुब्रत चौधरी की इच्छा तो हुई कि दूर से जो एक टैक्सी आ रही थी उसी से विनता के घर चला जाय। सोचते-सोचते उसने घर में पाँव रखवा, यद्यपि यह भी सोचा कि इस घर में घुसने से क्या फायदा, यहाँ भी तो वह लोग अर्थात्, उनमें से एक है।

“यह क्या, कितना सूख गया है?”

“अभी लौट जाऊँगा, लौटना ही पड़ेगा।”

“क्यों? नहा-धो, खा-पी, आराम कर। मुँह कैसा निकल आया है।”

“खाऊँगा नहीं, आफिस में ही खाऊँगा, स्नान भी आफिस में ही कर लिया था। सिर्फ मिलने के लिए आया हूँ। रातू ने ज्वायन कर लिया?”

“नहीं, नहीं गयी। अब जा रही है। तू बैठ, यहीं थोड़ा-सा ले आऊँ। कह रहा है अभी चला जायगा। बाबा, क्या लाट साहब की नौकरी है तेरी। जरा आराम करने की भी फुर्सत नहीं है।”

माँ चली गयी। सुब्रत चौधरी ने तिपाई पर पाँव रखकर सेटी पर पीठ टिका दी। फिल्म का एक रोल निकाल कर कैमरे में ‘लोड’ किया। विनता के लिए उसका मन छटपटा रहा था। थोड़ा-बहुत पेट में डालते ही उठना पड़ेगा। विनता से एक टेलीफोन ले लेने के लिए कहेगा, चौधरी ने सोचा।

“यह क्या, यह सब क्या है? यह सब मैं इस वक्त नहीं खाऊँगा।”

चौधरी का मन विनता के लिए छटपटा रहा था। खाना खाने का मतलब वेकार समय नष्ट करना था। उसने सोच रखवा था, विनता के साथ जाकर होटल में खाएगा। माँ का दिल, पूरा खाना ही उठा लायी।

कुछ सोचकर प्लेट में हाथ धोकर तिपायी पर रखी थाली में हाथ डाला चौधरी ने। थोड़ा-सा खा लिया जाय, शरीर में ताकत नहीं है, खाने से बल मिलेगा, चौधरी ने सोचा। झक्की था न।

“सुब्रामन्यम तो तेरा दोस्त है। जरा उसको फोन करके कह देना। रातू तेरी बहन है, सगी बहन, एक ही पेट की। रातू ने अभी तक नहीं कहा है, क्या पागल लड़की है।”

“क्यों?”

“यही महीने भर की तो नौकरी है। रहेगी क्या।”

“स्ट्राइक करते वक्त क्या मुझसे पूछा था। उसके स्ट्राइक के साथी क्या उसकी नौकरी बरकरार नहीं रख पा रहे हैं। अब पकड़े उन लोगों को। इससे उसकी मामूली नौकरी जाना ही अच्छा है। मैं नहीं चाहता कि मेरी बहन एक सामान्य बलक की नौकरी करे। उससे मेरी प्रेस्टिज खत्म होती है। दूसरे आफिस में होने से क्या होता है, बात फैलने में कितनी देर लगती है? उसकी नौकरी जाना ही अच्छा है, जरा सबक भी मिलेगा।”

“तो तुम बुलाकर कह दो बेटा। वह जा रही है रानू। रानू, जरा सुन जा तेरा भैया क्या कह रहा है—”

रानू जा रही थी। आयी। भाई को देखकर अनिच्छुक घोड़े की तरह मुँह फिरा कर खड़ी हो गयी।

सुव्रत हँस कर बोला, “तो रानू नौकरी बरकरार रखने के लिए आखिर मुझे ही पकड़ना पड़ा। स्ट्राइक के साथी नौकरी नहीं टिका पायेंगे, क्यों? पर मैं सुब्रामन्यम को नहीं बता रहा हूँ कि सुव्रत चौधरी के घर एक मोटी बुद्धि वाला स्ट्राइकर है।”

अपमान से, गुस्से से रानू का मुँह लाल हो गया। बोली, “मैं तो मि० सुब्रामन्यम से अनुरोध करने के लिए किसी को नहीं पकड़ती। नौकरी जायेगी तो मेरी जायगी। किसी न किसी तरह एक मास्टरी की नौकरी तो मिल ही जायगी, उतनी शिक्षा—पिता जी दे ही गये हैं। जो स्ट्राइकर हैं उनकी मैं श्रद्धा करती थी, और अब भी करती हूँ। जिन्होंने स्ट्राइक नहीं की उनसे मुझे घृणा थी, अब भी है और हमेशा रहेगी।”

सुनते ही उछल पड़ा चौधरी। चिल्ला कर क्या तो कहने जा रहा था कि धस्का लग गया। और भी गुस्से से बोला, “ऐसे घृणित आदमी के घर में रहने से भी घृणा होनी चाहिए, क्यों चाहिए न? यह घर मेरा है—मेरे रुपये से बना है। तुम्हारे बाप का नहीं है।”

“छिः छिः बेटा।” —

“टहरो। तुम्हारी वजह से ही—”

“मैं तो पहले ही चली जाती, चार दिनों से यही बात सोच रही हूँ। सिर्फ तुम लोगों की नाक कटेगी यह सोचकर अब तक नहीं गयी। अब चली जाऊँगी। आज ही अपना सामान लेकर मैं होस्टल चली जाऊँगी।”

“तू क्या पागल हो गयी है रानू?”

“तुम चुप रहो माँ, तुम्हीं ने मेरी यह फ़जीहत करायी है।”

रातू चली गयी । सुव्रत ने ग्लास में हाथ डुबोया ।

“तूने कुछ भी नहीं कहा, रोका नहीं ?”

“जायगी कहाँ ? तुम क्या पागल हुई हो । नौकरी रहेगी तभी तो होस्टल में जाएगी । नौकरी ही नहीं रहेगी ।”

ओऊ ये माँ-बहन हैं । अब तक जिनके लिए इतना किया उन्होंने आज अपमान करते वक्त जरा भी नहीं सोचा । आज उनकी भावनाओं से मेरी भावनाओं का मेल नहीं बैठता । उनका नीतिबोध, औचित्यबोध मुझमे घृणा करता है । जिनको मैंने बनाया वही आज मुझे आँखें दिखा रहे हैं । नहीं, रातू को मैंने नहीं बनाया । बस यही न, पर आश्रय तो दिया है । कोई सुन तो नहीं रहा है । मैं मन ही मन सोच रहा हूँ, सोच कर खुश हो रहा हूँ । देट्स ऑन ।

✱

“बाई जी नहीं—ई ।”

“कहाँ गयी हैं ?”

“पुरी ।”

“अकेली ?”

“जी नहीं । बट्टीदास साहब के साथ ।”

“वेश्या ।”

मन खराब हो गया । सोचा था यहीं कुछ आराम कर लेगा, विनता के साथ होटल में जाकर खाएगा । स्नायुओं पर दबाव पड़ रहा था, जरा रिलैक्सड हो लेगा । सोचा था विनता की एक फोटो लेगा, अब ली गयी सब । चौधरी ने सोचा, विनता गृहस्थ वेश्या है, हाफ गृहस्थ, पर वह इतनी नीच है यह अब तक नहीं मालूम था । छि, छि, विनता, तुम्हारी वह हंसी, प्यार, ममता, सहानुभूति—सब-कुछ क्या ढोंग था ? सुव्रत चौधरी को रोना आ गया । अंत में बट्टीदास.....

तुम लौट आओ, फिर देखूंगा तुमको । बदला लूंगा तुमसे । चौधरी ने रूमाल से आँखें पोंछीं । स्वयं को एक असहाय शिशु जैसा महसूस किया । कोई किसी का नहीं है । रुपया देकर किसी को पूरा नहीं खरीदा जा सकता...आदि दार्शनिक उक्तियों से पहले तो उसका मन भारी हो गया, फिर गुस्सा आ गया उसे ।

✱

“अरे देखो चौधरी लौट आया—”

“वाह जरा शान तो देखो ! गुस्से से जल रहा है ।”

सुव्रत चौधरी ने किसी तरफ नहीं देखा । किसी दिन भी नहीं देखता, क्योंकि वह वॉर्म आफिसर है । दुमंजिले पर जाकर गांगुली के कमरे में गया । गांगुली

बोला, “वाह, इतनी जल्दी। दो भी नहीं बजे अभी तो। आइ मस्ट सी सो दैट यू गेट लिफ्ट सून्। यह देखो सेन्ट्रल से इन्स्ट्रक्शन आया है। अपने डिस्क्रिप्शन अनु-यायी सब इन्डिविजुअल केस डील करेंगे। तुम्हीं अब सुप्रीम ऑथोरिटी हो। मैं इस लिस्ट का इन्टरव्यू लेता हूँ, तुम यह लिस्ट लो। प्रोबोकेटरों के नाम जानने की कोशिश करना और ऐसी दो-चार बात कहना जिससे भविष्य में कभी स्ट्राइक करने की प्रवृत्ति न हो। उनकी साध मिटा देनी होगी, मॉरल तोड़ कर चूर-चूर करने पड़ेंगे, ऐंड व्हेन यू फाइनड ए हार्डनॉट, कैंक इट रूथलेसली। आई मस्ट मे, तुम कर सकोगे, वारेन्ट यू ?”

“आई विल सर। कर सकूंगा। मुझको सब लिस्ट दे दीजिए, मैं ही सबका इन्टरव्यू ले लेता हूँ। आप रेस्ट लीजिए सर। बहुत थके हुए लग रहे हैं आप। यू शुड टेक रेस्ट।”

“अकले कर पाओगे ?”

“यह कौन-सी बड़ी बात है ? आपके अन्डर में बहुत दिनों से हूँ, सीख गया हूँ।”

“राइट। मुझे जरा घर भी जाना है। अच्छा लो। सिर्फ मिस चक्रवर्ती, वही जो रिस्पेक्शन की मिस कमला चक्रवर्ती है, उसका इन्टरव्यू मैं लूंगा। उसको ढुलाकर मेरे कमरे में भेज दो।”

“अच्छा।”

वहनचोद.....। मन ही मन उच्चारण किया सुव्रत चौधरी ने। उसके बाद अपने चेम्बर में चला आया।

*

“कान पकड़िये।”

भगवान का शुक है, सुव्रत चौधरी ने सोचा—सुअर के बच्चों ने स्ट्राइक की थी। मैं ही अब सुप्रीम ऑथोरिटी हूँ—अब तक दस सालों तक इन सुअरों ने जो मन में आया किया है। जरा-जरा से लड़के और लड़कियाँ नाक ऊँची करके चले हैं, उनका बाल भी बाँका नहीं किया जा सका क्योंकि सुप्रीम ऑथोरिटी था सेन्ट्रल-बोर्ड, बात वहाँ तक पहुँचती थी। आज इन हजारों स्ट्राइकरों का न्याय सेन्ट्रल कर नहीं पा रहा है, सम्भव भी नहीं है। इसीलिए हम लोगों के हाथ में क्षमता आ गयी है। श्यामल सेन, अमिताभ सान्याल, मंजु बनर्जी, विशाखा सेनगुप्त के माँस से आज सीक कवाब बनाऊंगा। इस पार से उस पार तक नरम माँस में गरम सलाई घुसेड़ूंगा। और फिर आँच में, जरा तेज आँच में भूतूंगा। निहार-निहार कर देखूंगा कि कैसे भुलसकर, लाल होकर रस निकलता है और फिर सूखना, सिकुड़ना शुरू

होता है। कमला चक्रवर्ती। ओह, यह तो पहले ही मालूम था कि वह कमला सुअर के बच्चे गांगुली की नजर में है। कमला चक्रवर्ती से मैंने ब्याह करना चाहा। असिस्टेंट इंजीनियर सुव्रत चौधरी की पत्नी बनती तो उसकी चौदह पीढ़ियाँ तर जातीं।” “आप मुझसे अनुरोध मत करिए। स्वजाति के अलावा मैं शादी नहीं करूँगी।” वेश्या कहीं की। स्वजाति गांगुली ने तुझसे शादी कर ली ना। उसके बिस्तर पर सोते, उसके बच्चे को पेट में रखकर डस्टबिन में डालते हुए जात नहीं गयी तेरी। तुम्हारा इन्टरव्यू तो मेरे हाथ आना चाहिये था। तुम्हारे स्वजाति गांगुली ने तुम्हें शादी के बाद भी रोक रखा है, उसी में ज्यादा सुख मिलता है न, क्यों ? चौधरी ने एक लम्बी साँस ली। अवश्य, आज तुम्हें यह जानकर दुख होगा मिस कमला चक्रवर्ती कि शादी मैं भी नहीं करता तुमसे। मेरा बाँस जो कर रहा है, तुम्हारे साथ मैं भी वही करता। उसके बाद कृष्णा भौमिक—

“कान पकड़िए।”

“मैं आपके पिता के बराबर हूँ, मुझे—”

“शट अप। तू मेरे बाप के उसके बराबर है। कान पकड़ो—”

तीन-चार दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी, पूरी की पूरी करीब-करीब पकी हुई, दुर्दिशता से आँखें बैठी हुई, बाल बिखरे हुए, कपड़े मैले, लगता था जो पहने थे वही पहने चले आये थे, पचास वर्ष के प्रौढ़ कृपानन्द मुखोपाध्याय की आँखों की कोरों में उसी तरह आँसू छलक आये जैसे छिल जाने से हाथ में रक्तबिन्दु छनक आते हैं। अपमान से उनका मुख लाल हो गया और फिर भय से, आतंक से पीला पड़ गया। कान पकड़े कृपानन्द बाबू ने और उनकी आँखों से आँसू निकल कर उनकी बढ़ी हुई दाढ़ी में विलीन हो गये।

“तो अब भी आप नहीं बताइयेगा कि किसके उकसाने से आपने स्ट्राइक की थी ?”

कृपानन्द बाबू ने सुना या नहीं पता नहीं चला। बीच-बीच में कंठ सिहर उठता था। बहुत कण्ठ पा रहे थे। उनका नौकरी छोड़ देना उचित था। छोड़ दूँ ? उन्होंने सोचा

“ठीक है। अब जब मैं एक कहूँ तो आप बैठिएगा और दो कहूँ तो उठिएगा। मैं दस बार एक-दो कहूँगा।”

रॉकिंग चेयर के हथिये पर बैठा नितंब हिला रहा था सुव्रत चौधरी। साँप-जैसी आँखों से कृपानन्द बाबू की यन्त्रणा का उपभोग कर रहा था। अच्छा लग रहा था। एक तृप्ति मिल रही थी। आफिसर होने में बहुत आनन्द है। इसके बाद

कृपानन्द तुमसे तुम्हारी लड़की के पाप का प्रायश्चित्त कराऊंगा। देखने से लगता है कि तुम इन्कार नहीं करोगे।

नाक के पास, आँखों में दो-चार छोटे धूक के पड़ गये थे। एक सड़ी-सी बदबू आ रही थी। स्ट्राइक की फिक्र में जरूर तीन दिनों से दाँतों में ब्रश नहीं लगाया होगा, नेस्टी। रुमाल से अच्छी तरह मुँह पोंछा सुव्रत चौधरी ने। विनता के घर जाने से पहले रुमाल पर कीमती सेन्ट छिड़क ली थी उसने। तकदीर से याद आ गया था नहीं तो कै ही हो जाती।

उहँ, हाथ नीचे मत करिएगा। पकड़े रहिए। अच्छे लग रहे हैं ऐसे आप। स्कूल की नीची क्लास के छोटे नाँटी बाँय जैसे। अब मैं एक कहता हूँ। “रेडी, ए—क—”

कृपानन्द बाबू खड़े ही रहे। सिर्फ एक बार काँप उठे। असहाय नेत्रों से सुव्रत चौधरी की आँखों की ओर देखा। सुव्रत चौधरी दृष्टि हटाकर भट से उछल कर कुर्सों के हथ्ये से उतर गया।

“तो मि० मुखर्जी, नौकरी खोने में आपको कोई आपत्ति नहीं है।”

“कृपानन्द बाबू काँपते-काँपते बैठ गये। दोनों पाँवों पर शरीर का बोझ संभाल नहीं पाये, जमीन पर लटक गये, कान से हाथ छूट गये, जल्दी से स्वयं को संभाल कर उठकर खड़े हुए।

“राइट। डेट इज लाइक ए गुड बाँय। इधर खिसक आइए। आइए। टेबिल के काँच पर वहाँ क्या दिखायी दे रहा है, अच्छी तरह देखिए, झुक कर। अच्छा कान से हाथ उतार सकते हैं। चश्मा लगाकर ही देखिए। निकालिए चश्मा—”

कृपानन्द बाबू ने चश्मा निकाल कर लगाया। टेबिल के ऊपर झुककर देखा। उसके बाद सिर नीचा किए खड़े रहे।

“क्या देखा। बोलिए?”

हूटे, बैठे सूखे गले से आवाज़ नहीं निकली, कृपानन्द बाबू ने बोलने की चेष्टा की, “पानी जैसा क्या तो है।”

“पानी नहीं वह धूक है। सीता मुखर्जी आपकी कौन लगती है। जन्म की दुखी सीता।” विशेषण के प्रयोग से मन ही मन उल्लसित हो उठा चौधरी।

“मेरी लड़की है।”

“कब से नौकरी कर रही है यहाँ।”

“करीब तीन साल से।”

“उसकी नौकरी चली गयी है। लगता है आपकी भी जायगी। मैं अवश्य रखने की कोशिश करूँगा। आपके चरित्र और आपकी लड़की के चरित्र में स्वर्ग-

नर्क का फर्क है। ऐसी लड़की आपके यहाँ कैसे पैदा हो गयी। बहुत ही पाजी लड़की है। मुँह पर थूक कर अपनी नौकरी गवाँधी है और आपकी भी करीब-करीब खत्म कर गयी है।”

कृपानन्द बाबू सिर झुकाए रहे।

“वह थूक अगर आप चाट लें तो आपकी नौकरी रह जायगी। यह रहा मेरे हाथ में बौन्ड। बौन्ड आपको दे दूँगा, चाटिए। घृणा की क्या बात है, वह तो आपकी ही लड़की है, एक तरह से यह आपके मुँह का ही थूक है। आपके थूक से ही बना है।”

सुव्रत चौधरी खुशी के मारे पाँव हिला रहा था। सीता मुखर्जी से उसने करीब-करीब एक साधारण प्रस्ताव ही किया था। वह तो पकड़ के बाहर थी पर उसका बाप अभी भी मुट्ठी में था। लिस्ट में सीता मुखर्जी के बाद एक दूसरे आदमी का नाम था; लेकिन उस नागिन के बाहर जाकर बाप पर जहर चढ़ाने से पहले ही सुव्रत चौधरी ने उस आदमी को छोड़कर कृपानन्द बाबू को चुना लिया था।

“आपकी लड़की को शिक्षा मिलनी चाहिए कि टेबिल थूकने की जगह नहीं है। आशा है घर जाकर लड़की को आप सम्भ्रता-भद्रता की कुछ शिक्षा देंगे। ओक, देर मत करिए। आप से मैं जबरदस्ती नहीं कर रहा हूँ। या तो उसको चाटकर साफ कर दीजिए और बौंड-पेपर ले जाइए, नहीं तो कमरे से चले जाइए, आपके नाम के आगे मैं क्रास लगा दूँ।”

तुमने एक दिन कहा था कि तुम तीस साल से क्लर्क हो। इंजीनियरिंग और क्लर्की एक नहीं है। गांगुली के सामने कहा था। आशा है क्लर्क होने का आज तुम्हें पश्चाताप हो रहा है। इंजीनियर होते तो—(पर तुम्हारे जन्म ने ही तुम्हें इंजीनियर नहीं बनने दिया)...कैसे सबको मुट्ठी में पाते, आराम मिलता, आनन्द मिलता। कृपानन्द बाबू झुकेगा नहीं क्या। नहीं, नहीं, झुक रहा है। तो इसका मतलब है तैयार है। इसके अलावा चारा भी क्या है।

सुव्रत चौधरी ने कंधे पर लटका कैमरा ठीक कर लिया।

“गुड”—और साथ ही क्लिक की एक आवाज हुई। कृपानन्द बाबू ने चौंक कर सिर उठाया। कमरे में चारों ओर देखा। उनको कैसा तो एक डर लग रहा था कि जरूर किसी तीसरे आदमी ने घटना देख ली है यद्यपि वे जानते थे कि कमरे में तीसरा व्यक्ति कोई नहीं था। सुव्रत चौधरी ने बौंड-पेपर उनके हाथ में दे दिया, “कल भर कर ले आइयेगा। कोशिश करूँगा कि नौकरी रह जाय।”

कृपानन्द बाबू की नौकरी रखनी पड़ेगी क्योंकि उसी से सीता मुखर्जी को सजा देने का सुयोग हाथ में रहेगा।

“डरिये मत, आपकी लड़की सीता मुखर्जी के अलावा बात और कोई नहीं जान पायेगा। सीता मुखर्जी का थूक सीता मुखर्जी के पूज्य पितृदेव ने चाटा है यह इस फोटो में देखकर आशा है उसे कुछ शिक्षा मिलेगी। बाकी आप दे दीजियेगा। डेवलेप कराकर यथा समय फोटो की एक कापी भेज दूंगा।”

मृत व्यक्ति की तरह कृपानन्द बाबू ने सुव्रत चौधरी की ओर देखा, वह घटना को ठीक से समझ ही नहीं पा रहे थे। कुछ भी उनके दिमाग में नहीं बैठ रहा था। वह गुस्सा करना, अभिशाप देना, कुछ भी करना भूल गये थे। बस उनके दिमाग में एक ही बात घूम रही थी कि सीता की नौकरी नहीं रही, एक बड़ी गृहस्थी का बोझ सिर पर है, रिटायर होने में कुछ ही साल बाकी हैं। वे पराजित हो गये हैं। इस वक्त सही करने के अलावा और कुछ भी करना उनके वश का नहीं है।

“जाइए।”

जैसे ही पीछे लौटने को मुड़े कि कृपानन्द बाबू चक्कर खाकर गिर पड़े। उसके बाद जमीन पर सिर पटक कर हाथों से मुँह छुपाकर दबे स्वर से फफक कर रो उठे। सारी पीठ ज्वार के स्रोत की तरह उठने-बैठने लगी। ओह, कुछ भी तो नहीं कर सकते।

“डोन्ट क्रियेट ए सीन। उठिए। बाहर आपके साथी खड़े हैं। उनको पता लगने पर आपका सम्मान कोई बढ़ेगा नहीं। उठिए। बेकार समय नष्ट मत करिए। गेट अप।”

कृपानन्द बाबू उठे। कुर्ते की बाँह से आँखें पोंछीं और सिर नीचा करके चेम्बर से निकल गये। सुव्रत चौधरी को नहीं स्वयं को ही उन्होंने बारम्बार धिक्कारा।

*

“तो मिस मंजु बनर्जी, तुम्हें सिर नीचा करके आना ही पड़ा। अपने साथियों के साथ सड़कों पर और नाचती नहीं फिर सकीं। मुझे मालूम था कि तुम आग्रीगी, क्योंकि अपने घर की, रुग्ण बाप की, दूध पीते भाई-बहनों की बात बताकर एक बार तुमने ही एक लिफ्ट के लिए मुझसे विनती की थी। लिफ्ट तुम्हें मिल भी जाती पर क्यों नहीं मिली वह तुम्हें मालूम है। अब सोचता हूँ तुम्हारी नौकरी रहेगी कि नहीं। उहँ, रोओ मत, रोने से कोई फायदा नहीं है। सुव्रत चौधरी को तुम जानती हो। बहुत ही खराब आदमी है। तुम्हारे दुर्भाग्य से इस वक्त तुम्हारी नौकरी उसी के हाथ में है और तुम निर्बोध नहीं हो काफी बुद्धिमती हो, एवरेज लड़कियों से तुममें ज्यादा बुद्धि है, सुन्दर भी हो। “मेरा एक प्रस्ताव है, कोई नहीं जान पायेगा, आशा है तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।”

मंजु बनर्जी ने टेबिल के कोने पर हाथ रखकर स्वयं को सँभाला। सुव्रत चौधरी ने बूढ़े कविराज जैसी आँखों से रोगिणी की ओर देखा। नहीं, सीता मुखर्जी नहीं है।

“ऊँ हूँ, बैठो मत। खड़ी होओ, खड़ी रहो।”

खड़े रखकर तुम्हें बलान्त, अवसन्न करूँगा। उससे तुम्हारा मनोबल खत्म होगा। उसके बाद तुमसे सब कुछ करा लेना आसान होगा। सँपेरे की तरह सुव्रत चौधरी की आँखें मंजु बनर्जी पर लगी हुई थीं। पसीने से उसका मुँह, गला, ठोड़ी, ब्लाउज की आस्तीनें भीग गये थे। माथे पर, गालों पर कुछ बाल पसीने से चिपक गये थे। काँप रही है। कहीं बेहोश न हो जाय।

“तो तुम नौकरी छोड़ने के लिए तैयार हो।”

“नहीं, नहीं”—मंजु बनर्जी सिहर उठी, “दया करके मेरी नौकरी मत छीनिए, आपके पाँव पड़ती हूँ—”

मुझे मालूम था कि तुम यह बात कहोगी क्योंकि तुम अबोध नहीं हो। पर पाँव—“नहीं-नहीं, इतना नीचे नहीं उतरना पड़ेगा तुम्हें।”

“क्या चाहते हैं, क्या चाहते हैं आप मुझसे?”

“मैं!” सुव्रत चौधरी हँसा, “नहीं, मैं कुछ भी नहीं चाहता। यह विभाग, जिसमें तुम नौकरी करती हो, वह अवश्य तुमसे कुछ चाहता है। वह चाहता है कि तुम उसको खुश करो। और तुम जानती हो, कागजों में भी देख रही हो कि विभाग के सर्वेसर्वा अब हम लोग हैं अर्थात् मैं। विभाग को खुश करने का मतलब है इस वक्त मुझे खुश करना, क्यों है न।”

मंजु बनर्जी सुव्रत चौधरी की आँखों की तरफ बेवकूफों की तरह देखती रही। सुव्रत चौधरी रॉकिंग चेयर पर बैठा नितम्ब हिला रहा था। कैमरे को इधर-उधर करता हुआ मुस्कुरा रहा था। उसे याद आया कि एक दिन यही मंजु बनर्जी मुँह मोड़कर चली गयी थी। उसने कहा था कि फिर अगर आपने मुझसे ऐसी बात की तो मैं सबको बता दूँगी। उस वक्त सेन्ट्रल सबके ऊपर था, सबका कर्त्ताधर। सुविधानुसार दल बनाकर जो मुँह में आया कहा था तुमने, तुम लोगों ने, सभी ने। तुम और तुम्हारे वे साथी सब कीड़ों की तरह हो, बिल्कुल नगण्य सामान्य कर्म-चारी। तुम लोगों से प्रकट में कोई बात कहना अपमानजनक है, मानहानिकर है क्योंकि मैं, चौधरी अर्थात् हमलोग, जिनकी अर्थ एवं लड़कियाँ ही सबसे बड़ी कम-जोरी हैं वह अप्रकट रूप से अन्धकार में ही उसको पूरा करना चाहते हैं। और भगवान को भी कैसी कुछि है कि तुम औरतें भी उन कमीनों में शामिल हो। इसी ने तब मिथ्या दंभ से फन उठाया था, पर आज मैं ही ऑयोरिटी हूँ। आज

तुम यह बात किसी को नहीं बता सकती। बताने पर कोई सुनेगा भी नहीं, तुम्हारी एकता अब टूट गयी है। और सेन्ट्रल। हा हा, तुम्हारे नाम की एक रिपोर्ट से ही तुम्हारी नौकरी चली जायगी क्योंकि तुम लोगों ने कानून भंग करके गैर-कानूनी स्ट्राइक की है। अदालत भी तुम्हें नहीं बचा सकेगी।

“बोलो अपने आफिस को तुम खुश करोगी।”

“बताइये, किस तरह”—फिर रोने लगी मंजु बनर्जी। हम हार गये हैं। पराजित के ऊपर विजयी की प्रतिहिंसा है। हमेशा ही रही है, आज भी है। भगवान् साक्षी है सुव्रत चौधरी, एक दिन तुम भी हारोगे, तुम, तुम लोग और जिन्होंने तुम्हें इस अत्याचार का अधिकार दिया है—सब हारेंगे। ये बातें सोच कर मंजु का दुख जरा भी कम नहीं हुआ। वह हँस नहीं पायी। सिर्फ एक कड़वा उसके चेहरे पर फैल गयी जिसका मतलब था आज मेरे ऊपर दया करिये।

“दैट इज लाइक ए गुड गर्ल,” सुव्रत चौधरी कुर्सी से उतर कर दोनों पाँवों पर खड़ा हो गया। अर्धपूर्ण दृष्टि से हँसा, “मुझे मालूम था तुम तैयार हो जाओगी, क्योंकि तुम्हारे अन्दर अक्ल है, हठधर्मी का कोई मतलब ही नहीं है। जिस तरह मैं तुम्हें कुछ दे रहा हूँ, नौकरी दे रहा हूँ, तुमको खुश कर रहा हूँ, उसी तरह तुम मुझे करो—रेस्पेक्कल, दो और लो, यह तो विजनेस है। सब कुछ बताऊँगा, धीरे-धीरे बताऊँगा, जल्दी कुछ नहीं है। यह लो, अपना बॉन्ड-पेपर। दस्तखत करके, फिलअप करके कल लौटा जाना। उससे पहले, तुम्हें आपत्ति न हो तो तुम्हारी एक फोटो लूँगा। यह बहुत अच्छा कैमरा है, आज ही ठीक करा कर लाया हूँ, अँधेरे में भी फोटो खिंच जाती है। किसी को भी मालूम नहीं पड़ेगा। तुम्हारी तस्वीर लेना चाहता हूँ क्योंकि तुम बहुत सुन्दर हो देखने में। लूँ?”

एक बिल्ली चूहे को लेकर खेल रही थी। पंजे में दबोच कर उलट-पलटकर घुमा-फिरा कर देख रही थी।

“ले लीजिये...”

अब बात चरमसीमा पर थी। सीता मुखर्जी की घटना याद आयी। सुव्रत चौधरी को पसीना छूटने लगा। तकदीर से मंजु बनर्जी की दृष्टि जमीन पर थी। पर मंजु बनर्जी सीता मुखर्जी नहीं थी, क्योंकि अगर होती तो इससे पहले ही नाक, आँख, कान, ओठ पर थूक छिटक कर आ पड़ता और बाकी का टेबिल पर पड़ता। तब भी करीब तीन कदम पीछे हटकर निरापद दूरी बीच में रखकर कैमरा उठाया उसने। बोला, “मिस बनर्जी, तुम्हारी साधारण फोटो तो मेरे पास करीब एक दर्जन है, याने तुम्हारे अनजाने में खींची है मैंने। अब यदि कुछ खयाल न करो, यदि दया करके अनुमति दो तो तुम्हारे निर्वस्त्र शरीर की एक फोटो ले लूँ।”

“नहीं, नहीं कर पाऊँगी, यह मैं नहीं कर पाऊँगी—“चकित मंजु बनर्जी धूम-कर खड़ी हो गयी। बाहुओं से आँखें ढँक लीं। रो रही है। रोएगी क्यों नहीं। राइट। यही रुदन, यही प्रतिरोध, उसकी यही अनिच्छुक यंत्रणा तो उपभोग की चीज है। सुन्दर। इसके बिना नारीत्व कुछ भी नहीं है, तुम अच्छी नहीं लगती। तुम मना करती हो इसीलिये तो तुम आकर्षित करती हो। नहीं तो मैं स्वयं ही तुम्हें छोड़ देता। ‘नाऊ ओपेन, अँन बैटन डैट—”

नहीं थूक उचट कर नहीं आया। मालूम था, नहीं आयेगा क्योंकि सब सीता मुखर्जी नहीं हैं। इससे तो अब मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ क्योंकि इसका आत्म-विश्वास खत्म हो गया है, भय से, आतंक से, यह इस वक्त स्वयं को संपूर्ण रूप से असहाय महसूस कर रही है। अब मंजु बनर्जी बात सुनेगी, काफी दिनों तक सुनेगी, सब कुछ करेगी, क्योंकि इस वक्त उसके लिए ज़िन्दा रहना ही सबसे बड़ी बात है हठधर्मी से सीता मुखर्जी की तरह वह आत्महत्या नहीं करना चाहती, ज़िन्दा रहना चाहती है। नहीं तो—

सुन्नत चौधरी हँसा, स्वर को जरा मुलायम बनाया, उसमें स्नेह का पुट देकर बोला, “कर पाओगी, अच्छी तरह कर पाओगी। मैं थोड़ी सहायता करूँ?”

एक कदम आगे आया सुन्नत चौधरी, आतंक से दो कदम पीछे हट गयी मंजु बनर्जी, “नहीं, नहीं—रुकिये।”

एक हाथ आँखों पर रखवा और कम्पित सिहरित दूसरे की अँगुलियों से खींच कर बटन तोड़ दिये। हे भगवान्।

“मुँह पर से हाथ हटाओ, हटाओ। यूँ—हूँ, आँख बन्द रखने से नहीं चलेगा, मंजु—मेरी मंजुरानी। देखो कह रहा हूँ न, देखो, लुक इन्ट्र माई आइज़...ओ के...ठीक है। ह्वाट ए ब्यूटी...दि लबलि एस्ट थिंग आन दि अर्थ।” और दाँत पीस-कर मन ही मन बोला—कैसा लग रहा है मंजु बनर्जी? नशा उतर गया स्ट्राइक का? बाँस खुश होगा, विभाग में मेरी तरक्की होगी। और यह पदमकली फोटो दिखाकर हमेशा तुम्हें ब्लैक-मेल करूँगा।

✱

सब सुनकर रातू का मन खराब हो गया, घृणा से जी मिचला गया, उल्टी-सी आने लगी, रोना आ गया उसको। अपना हाथ खुद काट खाने को जी चाहा उसका। इच्छा हुई कि हथेली पर छुरी चला कर खून बहा दे तो शायद मन को शान्ति मिले। यही—यही होता है। अगर किसी अविवेकी को पूरा अधिकार मिल जाय तो उसका दुरुपयोग होता ही है। उनकी यही सभ्यता, समाज, अर्थनीति उसके अनुगत अनुचर हैं...

सब कुछ एक विवृति ही तो है। जेब में अनार था, अब सड़ गया है। ये आफिसर उस सड़े अनार का एक-एक दाना ही तो हैं।

“तुम लोगों के सुब्रामन्यम ने क्या कहा ?”

“अभी तो कुछ नहीं कहा, बॉड पर दस्तखत करके लाने को कहा है। यूनियन के कुछ लोगों को अवश्य बॉड नहीं दिया है। अभी शुरू नहीं किया है, मछली गहरे पानी में है।”

“हमारे खिदिरपुर वाले मि० खरे का भी इरादा समझ में नहीं आ रहा है, चुप-चुप है। लगता है थोड़ा डर गया है। पर चाहे जो कहो डलहौजी के असिस्टेंट इंजीनियर सुव्रत चौधरी की तुलना किसी से नहीं हो सकती। दिल्ली से यूनियन की तरफ से टेलीग्राम किया गया है, न्यूज़-पेपर में भी पूरी घटना छप गयी है। उसके बाद और भी क्या किया है सुन...”

यह कहकर शीला ने रानू का सिर पास लाकर कान में न जाने क्या कहा। सड़े अनार का एक-एक तुच्छ दाना—बात फिर याद आ गयी रानू को।

शीला ने थू करके जमीन पर थूक दिया, “अच्छा हुआ तूने नहीं देखा। पर देखने से सुव्रत चौधरी ऐसा नहीं लगता है, जैसे कितना साधु पुरुष है।”

“एक नम्बर का बदमाश है, नीच आदमी। उसके अन्डर रहने से नौकरी छोड़नी पड़ती। पर जो भी कह, चेहरा बिल्कुल डौन जुआँन जैसा है। तेरे साथ खूब जोड़ी मिलती...”

“क्या भद्दे मजाक किया करती है तू।”

सिर चक्कर खा रहा था रानू का। उल्टी आने को हो रही थी, रुदन, क्रोध, हिंसा सब मिलकर न जाने एक कैसी अनुभूति उसे कम्पित कर रही थी, विवर्ण बना रही थी।

“क्यों री, क्या हुआ ?”

“एक ग्लास पानी चाहिये, घर जाऊँगी। घर से वह सब ले आऊँ।”

“चल, मैं भी साथ चलूँ।”

“नहीं। सूटकेस ले आती हूँ, अभी आ जाऊँगी। जब तक सोट नहीं मिलती तेरी सीट में ही हिस्सा बटाऊँगी। तू ही जब सुपरिटेन्डेंट है तो—”

“चल-चल। कुछ हो ही जायगा। पर अचानक कैसे ? घर छोड़ने का कारण तो बताया ही नहीं ?”

“बताऊँगी, आकर बताऊँगी।”

*

सूटकेस लेकर निकलते समय रानू की दोनों आँखों में पानी आ गया। माँ को

वताया नहीं था। वे सो रही थीं। चुपचाप अपने कमरे से सूटकेस उठाकर निकल पड़ी थी। नौकरानी ने देखा पर कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ, अवाक् होकर देखती रह गयी, रातू हँस दी थी मानों एक साधारण बात हो। दबे पाँव सीढ़ी से उतरते-उतरते उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। इस घर से उसे घृणा हो गयी थी लेकिन छोड़ने में दुख भी हो रहा था। माँ के लिए दुख हो रहा था, लग रहा था जैसे अब वह कहीं किसी अनजान समुद्र को तैर कर पार करने के लिए जा रही हो। सान्त्वना इस बात की थी कि वह समुद्र ही था, कीचड़ से ओत-प्रोत तलैया नहीं।

पैसेज में सुव्रत के साथ साक्षात् हो गया। दूर से देखकर ही आँखें पोंछ ली थीं रातू ने। सुव्रत मुँह से सीटी बजाते-बजाते आ रहा था। फोटो अभी डेवलेप करनी पड़ेगी। गांगुली को एक कापी दूँगा, हा. . हा. . . बहनचोद पिघल जायगा। नहीं, नहीं दूँगा। हाँ दूँगा, नहीं नहीं दूँगा। विनता। पुरी। छुट्टी लूँगा।

“यह क्या, कहाँ चली?”

“होस्टल। यह घर मैं छोड़कर जा रही हूँ। अच्छा ही हुआ जो तुम मिल गये। सब कुछ छोड़े जा रही हूँ। सिर्फ यह सूटकेस—मेरा ही खरीदा हुआ...”

“ओ। तो मतलब नौकरी है? ताज्जुब की बात है, कैसे रही?”

“वाह, रहती क्यों नहीं?” जबर्दस्ती हँसने की चेष्टा की रातू ने, हँसी भी, बहुत खुशी, आनन्द और विजय की भंगिमा से, जमीन पर पाँव से ताल देते-देते।

सुव्रत चौधरी को डर लगा। सन्दिग्ध आँखों से, अविश्वास की दृष्टि से मुख पर गर्व का भाव लाकर रातू की ओर देखा। डरा रही है? नहीं, डरा नहीं रही है। स्वयं को कैसा असहाय-सा महसूस किया उसने। मन में आया कि कहे, वचपना छोड़ो रातू, पागलपन की भी कोई सीमा है। पर कह नहीं सका, अहंकार ने कहने से रोक दिया। आघात का भी डर था।

“सुब्रामन्यम ने कुछ कहा नहीं। कुछ भी नहीं कहा?”

“वह क्या कहता?”

उसके बाद अचानक जैसे कुछ याद आ गया हो। बोली, “ओ हाँ। सिर्फ एक फोटो ली है—नेकेड, स्टार्क नेकेड, याने बिल्कुल नग्न।”

रुक-रुककर, दाँत पीसकर, करीब-करीब नाटकीयता से नपी-तुली बात खत्म करके सुव्रत के मुँह की ओर देखा रातू ने। जिस तरह एक जटिल आपरेशन खत्म करके डाक्टर तीक्ष्ण दृष्टि से एक पल के लिए रोगी की तरफ देखता है। सुव्रत का मुँह विवर्ण हो गया था, रक्तहीन। रातू को लगा सुव्रत गिर रहा है।

गिरेगा ही। एक दिन तो सुन्नत गिरता ही। तब भी रानू को कष्ट हुआ, वह उसका भाई था, एक ही पेट का सगा भाई। दोनों का खून एक ही था पर स्वभाव में कितना फर्क था—जो भी था, उसको, उस निस्संग सुन्नत को आघात पहुँचाने और उसके बाद वैज्ञानिक की स्थिर अविचल दृष्टि से उस आघात की प्रतिक्रिया देखने में रानू की छाती फटने लगी।

निस्संग भैया के मुँह की ओर अंतिम बार देखा रानू ने। उसके बाद आँखों का पानी हाथ से पोंछकर धीरे कदमों से गेट के पार हो गयी। एक अनजाने उद्वेग से निर्मम आघात पहुँचाने की व्यथा और मुक्ति से सुतीव्र यंत्रणामुखर आनन्द से रानू काँप उठी। पर सिर्फ एक क्षण के लिए। दूसरे ही क्षण उसने जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाये। ऐसा लग रहा था जैसे एक भुतहे श्वासरुद्ध करनेवाले स्मशान को पार करके वह जीवन की ओर भाग रही हो, जहाँ उसकी सहेलियाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं।



प्रतिदिन का रुदन

असित गुप्त

तक्षण बंगाली लेखकों में असितगुप्त
का स्थान अन्यतम है । आप
कुछ अंशों में आर्थिक
कारण से और
कुछ अंशों

में जिस मनुष्य की आप श्रद्धा करते हैं, उसकी श्रद्धा आक-
र्षित करने के लिए लिखते हैं । आप लिखने के ढंग व विषय-वस्तु को
। कर निरन्तर परीक्षण करते चले आ रहे हैं । आधुनिक अस्थिर युग की नीति-
हीनता या जीवन का स्थायी मूल्य, इन दोनों में से किसी के भी प्रति
आप पक्षपात नहीं करते । क्योंकि आप स्वयं यह विश्वास रखते
हैं कि आज कुछ भी स्थायी नहीं है, हर चीज परिवर्तन-
शील है । आपके लेखन में सतत उत्ताप संवेदना
व चेतना-प्रवाह का आभास मिलता है ।

आपका जन्म सन्
१९३३, कलकत्ता में
हुआ । आप बहुत सी
सामयिक पत्रिकाओं के संपादन-कार्य में नियुक्त रहे हैं ।
आजकल आप दैनिक 'वसुमति' के चलचित्र संपादक हैं ।
'एइ सब आलोर प्रेम' और 'एइ विश्वेर कथा
साहित्य' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।



प्रतिदिन का रुदन

अरित गुप्त

कि तनी देर से मालविका उसी एक जगह खड़ी है। खड़े-खड़े अंधेरा हो गया है। अंधेरे में वह ऐसी एकाकार हो गयी कि दिखाई भी नहीं देती। मालविका को लगा कि अगर और थोड़ी देर वह इसी तरह खड़ी रही तो उसकी चेतना लुप्त हो जायगी। वह चेतना, जो इतनी देर से उसके मन में कितने प्रकार के छोटे-बड़े, प्रकाशमय, अन्धकारमय कल्पना-जगत निर्मित कर रही है; वह चेतना जो आशा जाग्रत कर रही है, उद्वेग और उत्तेजना पैदा कर रही है। वही चेतना अब मानों वेदना का कारण बन गयी है। घनी और अंतहीन एक वेदना। मालविका चाहती है कि अब अचेतनता आकर पूरी तरह उसको अपने में समेट ले। उसकी परतों में पूर्ण रूप से खोकर शान्ति प्राप्त करे।

तो क्या निरुपम नहीं आयेगा। मालविका ने सोचा। और तत्क्षण इस छोटी-सी भावना ने उसके अन्तर को निदारुण यन्त्रणा से काँपा दिया, चक्कर आ गया उसको, एक हाथ बढ़ा दिया अन्धकार में उसने कुछ पकड़ने की आशा से। चूड़ियों

के आपस में टकराने से ठन् की एक आवाज हुई और मालविका को लगा जैसे उस शब्द ने घूमते-घूमते छन्दों में बजकर, एक महाशब्द में परिवर्तित हो विराट संगीत की सृष्टि कर दी हो ।

इस भावना से मालविका को कुछ तृप्ति हुई । हृदय की गति बंद हो जाने वाली भावना जरा दब गयी और वह सामने के वराम्दे में बैठ गयी । बैठकर खोयी नज़रों से आकाश की ओर देखने लगी ।

आकाश का एक-एक तारा जैसे एक-एक करण नयन हो । मालविका अपनी स्वयं की आँखों में नहीं देख पा रही है, तब भी वह अच्छी तरह जानती है कि उसकी आँखों में भी वैसी ही असहाय करण छाया है । उस तारों भरे नीले आकाश में जाने कहाँ एक मोहमय वैराग्य छुपा हुआ है । उसी मोह का अवसाद धीरे-धीरे उसके मन को अवश किये दे रहा है ।

सामने के निर्जन रास्ते पर जैसे नीरवता बरस रही है । एक कुत्ता तक नहीं भौंक रहा है । एस्फ़ल्ट के अरण्य पथ में बस प्रकाशस्तम्भ ऐसे खड़े हैं जैसे विदेशी पथिक रास्ता भूलकर आश्चर्यचकित हो देख रहे हों ।

मालूम होता है अब निरूपम नहीं आयेगा । इस रात के लिए सात दिन से जितनी कल्पनाएँ की जा रही थीं, जितनी चर्चा हो रही थी, आज यहाँ उन सबका अंत होने वाला था । मालविका निरूपम के साथ भाग जायगी; इसीलिये आज यह प्रतीक्षा है । इसीलिये वह यहाँ बैठी अधीरता से निरूपम की बाट जोह रही है । निरूपम आयेगा और उसको यहाँ से ले जाकर परम निश्चिन्ततामय मुक्ति देगा । एक विचित्र प्रकाश की ज्योति से उसका नया जीवन आलोकित हो उठेगा ।

किन्तु निरूपम है कहाँ ? अभी तक आया क्यों नहीं वह ? उसकी चेतना का चिन्ह विलुप्त होने से पहले उसे ले क्यों नहीं जाता यहाँ से ? मालविका ने कलाई उलट कर घड़ी देखी, एक बजकर दस मिनट । समय जैसे चल ही नहीं रहा है । एक-एक क्षण आज मानों किसी अलौकिक शक्ति द्वारा अस्वाभाविक रूप से बढ़ा होकर अपने पूरे अस्तित्व में जहाँ का तहाँ ठहर गया है ।

मालविका ने दाहिनी ओर गर्दन घुमायी । दीवाल पर टँगी तस्वीर के फ्रेम की तरह उसका सिर जरा झुक गया । यहाँ के घर को घर कहने का मन नहीं होता; लगता है घर नहीं घर की प्रतिच्छाया है । पानी पर पड़ती हुई परछाईं जैसी दिखती है, बहुत कुछ वैसी ही ।

उस घर में रणेन है । उसकी रुचिकालीन परिकल्पना को न जानते हुए ही गहरी नींद में सो रहा है । मालविका को जैसे वह यहाँ से स्पष्ट रूप में दिखाई दे रहा है । बगल में तकिया दबाये सिकुड़ा-सिकुड़ाया पड़ा है वह । धारीदार

नाइट सूट है उसके बदन पर। पेट के दो बटन खुले हुए हैं। काले मोटे पेट का खुला हिस्सा वीभत्स रूप से साँस के साथ ऊपर-नीचे हो रहा है। उसी के साथ-साथ दोनों ओर फूल उठते हैं और मुँह से एक अजीब-सा शब्द निकल जाता है। शायद दाँतों के आपस में घर्षण का शब्द है।

यह सब कुछ मालविका का अच्छी तरह जाना-पहचाना है। गत पाँच वर्षों से लगातार देखती आ रही है वह। देखकर कितनी बार घृणा हुई है उसको। रणोन जैसे एक जानवर हो। बात बहुत अप्रिय होने पर भी मालविका इसके अलावा और कुछ सोच ही नहीं पाती। कई बार बहुत पास से अच्छी तरह परख कर देखा है लेकिन सुसुप्त रणोन को देखकर उसके मन में जरा भी मोह नहीं होता। प्यार करने की इच्छा नहीं होती। अपितु उसके निद्रित चेहरे पर एक ऐसा भाव है जो कभी-कभी तो उसके लिए असहनीय हो उठता है। सोते हुए उसके अनजाने में जैसे उसका असली रूप सामने आ जाता है।

मालविका के पाँव पर से जाने क्या तो रेंग गया। शायद मेंढक था। जल्दी से पाँव खींचकर मुँह नीचे करके जमीन पर देखा। उसके बाद बाँए हाथ से पाँव के तलवे को जरा सहलाया। वही हाथ अनजाने में नाक के पास चला आया। न जाने कैसी गंध थी कि कमर से रूमाल निकाल कर हाथ को खूब रगड़ कर पोंछ दिया।

दूर से आती हुई किसी गाड़ी की आवाज़ सुनकर मालविका सचेत हुई। जरा सीधी होकर बैठी। गर्दन कैसी तो भीगी-भीगी चिकनी-चिकनी-सी लगी। साड़ी के पल्ले से उसने गला पोंछा। गाड़ी की आवाज़ तेज़ होकर उसकी ही तरफ आ रही थी। मन में आशा हुई। पर नहीं, आशा की आखिरी किरण भी उसके सामने से होकर चली गयी।

मालविका के अन्तर से खुद ब खुद एक दीर्घश्वास निकल पड़ी। निस्तब्ध रात्रि की नीरव शून्यता में वह दीर्घश्वास नगाड़े की तरह उसके स्वयं के कानों में बज उठी। मालविका ने अपने अवसन्न शरीर को पेड़ के तने से टिका दिया। आँखें बंद कर लीं।

रणोन जिस दिन शराब पीता है उस दिन आफिस से घर लौटने में देर हो जाती है उसे। और मालविका डर के मारे सूखकर इसी चबूतरे पर बैठी रहती है, जहाँ वह इस वक्त बैठी है। लेकिन आश्चर्य! आज इस जगह को अपरिचित कहने का मन होता है। लगता है जैसे वह किसी निषिद्ध जगह पर बैठी है और इसी कारण न जाने कैसी एक बेकली का काँटा-सा उसके हृदय में गड़ रहा हो। असल में स्थिति बदलने के साथ ही साथ सब कुछ उलट-पलट हो गया है।

परिचित जगह अपरिचित हो गयी है और जो प्रिय थे वे अप्रिय हो गये हैं। आज मालविका किसी और ही कारण से यहाँ आकर बैठी है। आज की प्रतीक्षा रणेन के लिए नहीं निरूपम के लिए है।

जिस दिन रणेन शराब पीकर आता उस दिन गेट के पास गाड़ी का दरवाजा बन्द करने की आवाज और भारी गला सुनते ही मालविका समझ जाती कि अब उपद्रव होने में कितनी देर है। नौकर दौड़ते हुए आकर मालिक को पकड़ते। कपड़े उतार कर विस्तर पर लिटा देते। पर रणेन सोता नहीं। काँच की वस्तुएँ तोड़ कर अश्लील गालियाँ बककर एक नारकीय वातावरण बना देता। शुरू-शुरू में मालविका को बड़ा डर लगता। पास नहीं जाती वह। अपने कमरे में संतस्त हो थोड़ी देर तो खाट पर बैठी रहती और फिर तकिये में मुँह छुपा कर रोने लगती।

एक बार मदमत्त रणेन ने मालविका को धक्का दे दिया था। खाट की पट्टी से लगकर सिर फूट गया था। खून का फव्वारा छूट गया था। नौकर-चाकर डर के मारे दौड़े चले आये थे पर रणेन लेशमात्र भी विचलित नहीं हुआ था। दूसरे दिन होश में आने पर “कल रात के लिए मुझे अफसोस है।” इसके अलावा और एक बात भी नहीं कही थी उसने। रोज की तरह चाय पीकर दाढ़ी बनायी और फिर आफिस की गाड़ी आने पर चला गया था।

एक आध दिन की बात नहीं है यह। विवाहित जीवन के पाँच वर्षों के लम्बे अर्से के हर क्षण में मालविका को उस सहानुभूति के, प्यार के अभाव का यह अनुभव हुआ है। एक ही छत के नीचे वे इतने दिनों तक साथ रहे हैं पर मालविका सिर्फ एक निष्ठुर पुरुष की खुशी का शिकार रही है। उसका मन ग्लानि से भर गया है। स्वयं को बार-बार धिक्कारा है उसने।

रणेन ने उसका हर प्रकार से उपयोग करना चाहा था। गृहस्थी की पूरी जिम्मेदारी में हमेशा उसको ही आगे करके स्वयं एक किनारे खड़ा रहा है। शादी से पहले ही रणेन की नौकरी छूट गयी थी। यह बात उसने किसी पर भी प्रकट नहीं की थी। शादी के बाद मुश्किल से सात दिन हुए थे कि रणेन ने जोर डाल कर मालविका को नौकरी करने के लिए भेज दिया था। यद्यपि मालविका की जरा भी इच्छा नहीं थी। नतीजा निकला कि मालविका कभी भी माँ न बन सकी।

मालविका और कुछ नहीं जानती बस इतना याद है कि एक दिन दस बजे खाना खाकर आफिस जाने के लिए ट्राम में बैठी थी। गर्मियों की धूप से सड़क जैसे आग में तप रही थी और उसी की तपन मालविका के बदन को लग रही

थी। जरा देर पहले ही स्नान करके आने पर भी मालविका की छाती, पीठ सब खुजला रही थी। सर पर पंखा खर-खर करता घूम रहा था। सारी ट्राम के लोग चुप थे; सिर्फ बीच-बीच में कंडक्टर के टिकट पंच करने की आवाज मुनाई दे रही थी; मालविका को लग रहा था बस यही दोनों शब्द पार्थिव हैं और चारों ओर की जड़ता किसी दूसरे जगत की है, किसी निर्लस पुरी की है। शायद एक भपकी-सी आ गयी थी उसको।

गन्तव्य स्थान के आते ही हड़बड़ा कर उठी और पायदान पर आकर खड़ी हो गयी थी मालविका। पीछे से एक लारी आ रही थी। उसमें लोहे की चद्दरें लदी हुई थीं। गाड़ी के भटके के साथ-साथ उन चद्दरों से भी भनभन की आवाज हो रही थी। उसके बाद कुछ याद नहीं है। एक सुतीत्र यन्त्रणा उसकी चेतना को ऊपर से नीचे तक भेदती हुई चली गयी थी। होश आने पर भी उसके मस्तिष्क के किसी कोने में लोहे का वही भनभन शब्द घुंघरू की आवाज की तरह गूँज रहा था।

रणेन का मुँह भी नहीं देखना चाहती थी वह उसके बाद। मालविका की माँ जब लड़की को देखने के लिए आयीं और जिज्ञासु दृष्टि से उन्होंने रणेन की ओर देखा तो वह प्रसन्न-मुख बोला था, “न मालूम क्यों यह नौकरी करने जाती है। कितनी बार मना किया मैंने तब भी नहीं सुनती।”

विस्तर पर लेटी-लेटी मालविका घृणा से संकुचित हो उठी थी। कितना भूठा, कितना चंट है यह आदमी! इसी के साथ उसे सारा जीवन बिताना होगा। वह लोग सुखी हैं, बाहर वालों को यह दिखाना पड़ेगा। कितनी छलना है। उसके बाद रणेन के व्यवहार में काफी अन्तर पड़ गया था। पर मन ही मन वे लोग एक-दूसरे से हजार योजन दूर ही रहे। जैसे दो अलग-अलग द्वीप हों। निस्संग व अस्वाभाविक रूप से स्थिर दो द्वीप। और थोड़े दिन बाद मालविका को लगा था कि वह अस्वाभाविक स्थिरता उसको जाने कैसे जड़ बनाये दे रही है। जैसे कोई एक बर्फ की छुरी लेकर धीरे-धीरे उसकी अनुभूति को काटता जा रहा है। न कण्ट है और न यन्त्रणा। सिर्फ अस्वाभाविक घनीभूत एक स्थिरता है।

मालविका ने अपने इस संसार में कभी अपने किसी रिश्तेदार को आने के लिए नहीं कहा। और फिर रणेन को भी यह विशेष पसन्द नहीं था। एक बार रुतू आया था। रुतू मालविका का छोटा भाई है। एक पाँव नहीं है उसका। बचपन में गिर कर घुमावदार सीढ़ियों की रेलिंग के बीच में फँस जाने के कारण घुटने से लेकर नीचे तक के हिस्से से वंचित हो गया था। अतः बैसाखी का सहारा लेना पड़ता था उसको।

इस घर में आकर दो दिन में ही रतू का सब उत्साह टंडा पड़ गया था। वातावरण देखकर समझ गया था वह कि घर, घर नहीं एक विराट बंदीगृह है और उसकी दीदी को चिरकाल तक यहाँ बंदी बनकर रहना पड़ेगा। उसने कहा था, “दीदी, यहाँ रहकर तो तू सचमुच अपनी मौत से बहुत पहले ही मर जायगी।”

—“चुप-चुप, ऐसे नहीं बोलते भैया।” उसके मुँह पर हाथ रख उसे गले से लगाकर रो पड़ी थी मालविका।

उस दिन रात को ही रणोन ने मालविका को मारा था। रतू के होने की वजह से मालविका चुप ही रह गयी थी। पर रतू बैसाखी के सहारे खटखट करता हुआ उनके कमरे में आकर खड़ा हो गया था। वहाँ की हालत अच्छी तरह देख कर रणोन की ओर नजर घुमाकर बोला था—“स्वामी हैं क्या इसीलिए आप अपने अधिकार का लाभ उठा रहे हैं?”

उस वक्त पहली बार मालविका को लगा कि रतू अब छोटा नहीं रहा, बहुत बड़ा हो गया है।

“खयाल रखियेगा, समस्त यातनाएँ सहने की भी एक सीमा होगी और आपके इस स्वामित्व के खामख्यालीपन को शायद हम लोग बर्दाश्त न भी कर पायें। क्योंकि सब सम्बन्धों को देखते हुए भी उसका जीवन हमारे लिए अधिक कीमती है। भविष्य में अगर कभी आपने ऐसा किया तो जिसके बल पर आप यह सब करते हैं वह सम्बन्ध तोड़ देने में भी हम हिचकेंगे नहीं।”

उत्तेजना से हाँफने लगा था रतू। मालविका ने उसे रोकना चाहा था पर उस वक्त तो उसे जैसे किसी की भी परवाह न थी। रणोन कुछ भी नहीं बोला। रतू की सब बातें खत्म हो जाने पर शिकारी बिल्ली की तरह वह आगे आया और झपटकर उसकी बैसाखी छीन ली; और फिर नौकर को बुलाकर उसको कोयला रखने के कमरे में रखवा दिया।

मालविका खड़ी-खड़ी देखती रही। सब कुछ देखकर अवाक् रह गयी। अवाक् रह गयी एक मनुष्य के निष्ठुर होने की प्रक्रिया देखकर। असहाय रतू की आँखों में पानी आ गया था। उसने यह नहीं सोचा कि रणोन उसकी ऐसी दुर्बल जगह पर आघात करेगा। नहीं सोचा था कि सजा देने का ऐसा अनोखा, ऐसा अशोभनीय उपाय ढूँढ़ निकालेगा।

दूसरे दिन ही मालविका ने रतू को घर वापस भेज दिया था। उसने कहा था, “फिर कभी मत आना यहाँ भैया।” रतू और नहीं रोक सका स्वयं को। रोते-रोते बोला था, “मेरे साथ जो व्यवहार हुआ दुख उसके लिए नहीं है दीदी। दुख तो इस बात का है कि माँ-बाप ने तुझे कुएँ में धक्का दे दिया है।”

“मुझे अपना भाग्य लेकर रहने दे भैया । बाबूजी से इस संबंध में कुछ मत कहना नहीं तो उन्हें बहुत दुख होगा ।”

रणेन ही इस घर में निरूपम को लाया था । वह किसी कालेज में बंगला का प्रोफेसर है । रणेन के साथ काफी पुरानी जान-पहचान है ।

प्रथम परिचय में ही मालविका चौंक उठी थी । यह क्या ! बातें हैं या कोई मधुर संगीत ! इतनी अच्छी मीठी बातें मालविका ने बहुत दिनों से नहीं सुनी थीं । उसके बाद का इतिहास बहुत ही संक्षिप्त है जो द्रुतगति से एक परिणति की ओर आया है । मालविका का सब कुछ बिल्कुल उलट-पलट गया । इतने दिनों की जीर्ण-शीर्ण धारणाएँ अचानक बदल गयीं । मालविका स्वयं को रोक भी नहीं सकी । रात के बाद रात, निद्राविहीन आँखों से आकाश की ओर निहारते-निहारते युक्तियों का जाल बुनने पर भी कोई निष्कर्ष नहीं निकला । मन तो युक्तियों की पकड़ में नहीं होता ।

यद्यपि वह यह जानती थी कि उनके सम्बन्ध के एक विशेष स्तर पर पहुँचने से पहले नपी-तुली जगह पर रुक जाना उचित है; किन्तु वह हो नहीं पाया । निरूपम की बात उसके मन में मन्त्र की तरह हर वक्त चक्कर काटती रहती । “आप इतनी बलान्त क्यों हैं ? आपकी आँखों में, मुख पर यह निस्संगता की छाया कैसी है ?” पूछा था निरूपम ने । मालविका उत्तर नहीं दे पायी थी, मुँह में पल्ला ठूस कर भाग गयी थी उसके सामने से । पर क्या मन से दूर हो सकी थी ? दिन-रात यही प्रश्न जैसे एक निरूपम के हजार कंठों से निकल कर उसके कानों में प्रतिध्वनित होता रहता था, ‘क्यों, क्यों, क्यों ?’

‘नहीं नहीं, मैं कोई अन्याय नहीं कर रही हूँ । निरूपम के हाथों में ही मेरी मुक्ति है । वही मेरा उद्धारक है ।’

निस्तब्ध रात में घर के कम्पाउन्ड के सायवान में अकेली, निरूपम की प्रतीक्षा में बैठी मालविका के अन्तर से बात फूट पड़ी पर मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला । बस अपने अस्तित्व को घेरे अन्दर ही अन्दर उमड़ती रही ।

मालविका बहुत ही थकी हुई लग रही थी । दोनों आँखें बंद करके उसने गम्भीर शान्ति का स्वाद लेना चाहा । उसे ऐसा लगा जैसे वह एक मेघलोक में पहुँच गयी है । उसके चारों ओर मेघों के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे हुए हैं । उसका फैसला हो रहा है, वह एक कठघरे में खड़ी है; पर सब कुछ जैसे धुँधला है, अस्पष्ट है । बस इतना समझ में आ रहा है कि न्यायाधीश के आसन पर जो

आसीन है वह एक पुरुष है। लेकिन उसका नाक-नवशा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। अचानक एक तीक्ष्ण और गम्भीर कंठ किसी कुहासे को भेदता हुआ सुनाई देता है—

“तुम अन्याय कर रही हो मालविका, तुम पाप कर रही हो।”

“पाप ? कैसा पाप ? मैं यन्त्रणा से छुटकारा चाहती हूँ। मैं जीवन चाहती हूँ।”

“जीवन का अर्थ क्या है ?”

“जीवन का अर्थ यन्त्रणा नहीं है।”

‘निरूपम मुझे बचाओ, मुझे बचाओ।’ प्रारणपण से जोर लगाकर चिल्लाना चाहा मालविका ने, लेकिन शब्दों में जैसे शक्ति ही न हो, जरा भी आवाज नहीं निकली। मालविका ने चौककर आँखें मलीं। कहीं भी कुछ नहीं है। सिर्फ उसका दिल दुगुने वेग से धड़क रहा है और वही शब्द एक फटे ढोल को पीटने जैसी ढबढब आवाज कर रहा है। छाती असह्य कष्ट से फटी जा रही है। जैसे वही पत्थर जो सिसिफस को दंडस्वरूप पहाड़ पर चढ़ाना पड़ा था, उसकी छाती पर रक्खा हुआ है। मालविका ने दोनों हाथों पर जोर डालकर संज्ञाहीनता की इस अवस्था से स्वयं को निकालना चाहा। दाँतों से नीचे का ओंठ जोर से काट लिया।

दो बज गये। अब निरूपम नहीं आया। तो क्या निरूपम का पुरुष है ? उसका प्यार क्या सिर्फ मीठी-मीठी थोड़ी-सी बातों का खूबसूरत फ़ानूस है ?

मालविका का शरीर थर-थर काँपने लगा। एक दीर्घश्वास के साथ मुँह से थोड़ी-सी हवा निकल गयी जो एक हाहाकार की तरह सुनाई दी।

सम्पूर्ण प्रकृति भयंकर रूप से शान्त हो गयी है। किसी भी पेड़ का पत्ता तक नहीं हिल रहा है। चारों दिशाएँ गतिविहीन होकर अविचल निष्ठा से खड़ी हैं। सिर्फ रात्रि की उस भयंकर निस्तब्धता की, उस सीमाहीन विपुल ग्रंधकार की एक दुर्निवार गति है, वही मानों एक विराट् दैत्य का रूप धारण करके शतसहस्र हाथ बढ़ाकर मालविका को पकड़ने आ रही है।

मालविका फिर पेड़ से टिक गयी। उसके मुँह से हताशा, वेदना, बलान्ति मिश्रित एक शब्द ‘आह’ निकल गया। स्वयं को उसने सब चिन्ताओं से जरा दूर करना चाहा पर कर नहीं सकी। उसके मन में आया, निरूपम झूठा है। सभी एक नाटक के पूर्वनिर्धारित दृश्य-जैसे हैं।

मालविका को लगा उसके चारों ओर घना कुहरा छा गया है। वह अकेली, एक अन्तहीन दुस्तर मरुभूमि में खड़ी है। हठात् उस कुहरे को चीरती हुई कई छायाएँ दबे पाँव उसकी तरफ बढ़ने लगीं। उसके बाद और कई, फिर और कई।

मालविका चौंक उठी। वे कौन हैं। पूरी शक्ति लगा कर पहचानने की कोशिश की उसने। हाँ, पहचानती है। निरूपम ! मालविका तेजी से भागी उस ओर। पर पास जाते ही सब छायाएँ जैसे रणोन बन गयीं। तो क्या संसार के सब पुरुष रणोन हैं ? फिर मालविका किसका विश्वास करेगी ? किस पर विश्वास करके प्यार करेगी ? इस तरह बार-बार कितनों के आश्रय चाहेगी और फिर खोयेगी ? गंभीर वेदना से आँखें खोलीं मालविका ने। आकाश की ओर दृष्टि उठायी। गालों पर दो बूंद आँसू ढलक पड़े। आकाश इतना नीला क्यों है ? क्या विष से नीला हो गया है ? अचानक एक तारा टूटा और विलीन हो गया।



मालविका ने काफी कष्ट से स्वयं को उठाया और घर की ओर चलने की चेष्टा की। कंधे से पल्ला खिसक कर जमीन पर घिसट रहा है, उसको उठाने तक की शक्ति नहीं है उसमें। भीगी धास पर चलने से हल्की फिस-फिस एक आवाज हो रही है। घिसटती-घिसटती घर की ओर बढ़ने लगी मालविका। खट से दर-वाजा खोला और फिर बंद करके रणोन के कमरे में उसकी खाट के पास आकर खड़ी हो गयी। गहरी नींद में सो रहा है रणोन। उसका काला पेट उसी प्रकार वीभत्स रूप से ऊपर-नीचे हो रहा है। मुँह से वही शब्द बार-बार निकल रहा है। तब भी आज मालविका को उतना घृणित नहीं लगा। वह रणोन के बिस्तर पर मुँह रखकर रो पड़ी।

करवट बदलकर सो गया रणोन।

इसके बाद क्या होगा मालविका को मालूम है। कल से शायद निरूपम फिर नहीं आएगा। हो सकता है आए भी। आकर अनेक प्रकार की सफाई दे। रात को न आ सकने के बहुत से कारण बताए। शायद किसी दुर्घटना की बात भी कहे। पर मालविका जानती है कि वह उससे लेशमात्र भी विचलित नहीं होगी। फिर वापस नहीं ला सकेगा उसे निरूपम। क्योंकि वह मन फिर नहीं लौटेगा।

उसने सोचा था, एक परिणति के आस-पास पहुँच गये हैं वे लोग पर एक रात की व्यर्थ प्रतीक्षा ने उसे पाँच वर्ष पीछे ढकेल दिया है ।

सिर्फ यही रुदन, जो उस वक्त उसके अन्तर से फूट रहा है, उसका प्रतिदिन का साथी रहेगा । निःशब्द और अगोचर रुदन ।



किमलिस

समरेश बसु

बंगला-साहित्य के प्रतिभा-सम्पन्न
लेखकों में समरेश बसु का अनन्य स्थान है ।

आपकी रचनाएँ वास्तववादी होने के साथ-साथ
सामाजिक विषमता को नजर में रखते हुए औचित्यपूर्ण हैं ।

आपने मनुष्य को बिल्कुल करीब से पहचानने का प्रयास किया है
और इस प्रयास में सफल भी हुए हैं । आपके अनुभवों का भंडार
बहुत समृद्ध है । लेकिन आपका इतना परिचय ही काफी नहीं है ।
आपकी चिन्तन-शक्ति अश्रुत है और दृष्टि भी संवेदनशील है । मानव
के प्रति आप को जितनी सहानुभूति है उतनी कम ही देखने को मिलती
है और इसका कारण है राजनीति से आपका निकट सम्पर्क ।

आपका जन्म ढाका में हुआ था । कलकत्ते के पास नेहाटी में
रहते हैं । आपको आनन्द पुरस्कार भी मिल चुका है ।

उपनाम 'कालकूट' है । गंगा, पशारिणी,

षष्ठ ऋतु, तृष्णा, बाघिनी, उत्तरंग,

आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं ।

किमलिय



साँझ होती आ रही थी पर पूरी तरह नहीं हुई थी। अभी भी आकाश में उसकी काली छाया पूर्ण रूप से नहीं फैली थी। रबिब और कोयले की राख भरी पश्चिम की चौड़ी सड़क की मोड़ पर खड़े होकर देखा जा सकता था कि गंगा के स्वच्छ जल पर उतरती बेला के आकाश की छाया पड़ रही थी। आकाश की ही छाया थी क्योंकि सूर्य डूब चुका था। निर्मोच आकाश की गोद गाढ़ी लालिमा से भर गयी थी। कुछ ही देर पहले उस पार के कारखाने के पीछे सूर्य डूबा था। आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ने से गंगा तपे हुए इस्पात जैसी दीख रही थी। ठंडे होते हुए ढले इस्पात की तरह गंगा का पूरब नीली झलक दे रहा था।

शरदऋतु थी। माघ का महीना। गंगा का किनारा जनशून्य था। मंथर गति से दो-चार नौकाएँ उत्तर या दक्षिण की ओर जा रही थीं। मछुओं की नहीं

व्यवसायी नौकाएँ । सड़क से मिली हुई दाहिनी तरफ एक बड़ी बस्ती थी । बाँस की चटाई पर मिट्टी लीपकर भोपड़ियों की दीवारें बनायी गयी थीं और छत खपरैल की थी । दूर से देखने में ऐसा लगता था जैसे पूरी बस्ती पश्चिम की ओर झुकी पड़ रही हो । बस्ती के सामने कुछ बच्चे खेल रहे थे, विवस्त्र, नंगे बदन । इनको सर्दों नहीं लग रही थी ।

उसी समय वह आकर बस्ती के सामने खड़ा हुआ । आपाद मस्तक देखने से लगता था कि वह इस बस्ती का बाशिंदा नहीं था । उसके बाल नये जमाने के छोकरो की तरह नाप-जोख से कटे हुए थे । दाढ़ी-मूँछें साफ थीं । रंग अवश्य काला था । बदन पर शर्ट के ऊपर ब्लेन स्वेटर और सफेद जीन की फुलपैट थी । पाँवों में इंगलिश बूट थे । एक हाथ में चमड़े का एक सूटकेस और एक हाथ में बेडिंग था ।

देखने-भालने से शकल-सूरत भी खास बुरी नहीं थी । नाक जरा चौड़ी थी और दोनों ओर जरा मोटे थे । दाँवी हँसी से उसके चेहरे ओठ खुल जाते थे और नाक के संकुचित हो जाने से नथुने जरा बड़े लगने लगते थे ।

बाहर का प्रकाश नहीं आ रहा था बस्ती में । वहाँ इसी बीच संध्या की गाढ़ी छाया उतर आयी थी । घर-घर चूल्हा जल रहा था । बस्ती धुएँ से ढक गयी थी । कोई-कोई चबूतरे पर बैठा कपड़े धो रहा था, दो एक बहू-बेटियाँ पानी लाकर स्नान करने बैठी थीं । उन्हीं के आस-पास खाटों पर पुरुषों की बैठक लगी हुई थी । सारे दिन के बाद एक ही वक्त मिलता था जब उनकी सब बातें भगड़े-टंटे हँसी-ठट्टे होते थे । छुट्टी के बाद के अलावा और वक्त ही कहाँ था ।

बस्ती के अन्दर आकर उसने गम्भीरता से मुस्कराते हुए एक बार सबके आगे मस्तक झुकाया और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ सीधा पूरब की ओर बनवारी के घर के सामने आकर खड़ा हो गया ।

बूढ़ा बनवारी और उसकी बहू रामदेई कुछ ही क्षण पहले कारखाने से आकर घर के चबूतरे पर पैर फैला कर बैठे थे । उनको घेर कर बच्चों का एक झुंड बैठा था, उन्हीं के बच्चे ।

थोड़ी दूर पर एक सोलह-सत्रह साल की बहू चूल्हे में आग डालकर फूंक मार रही थी । उसके उलझे पिगल वर्ण बालों का जूड़ा गर्दन के पास ढीला होकर लटक गया था, धुँआ लगने से उसकी आँखों में पानी आ गया था ।

उन लोगों समेत बस्ती के करीब सभी लोग इस पतलून पहने फिटफाट आगन्तुक की ओर अवाक होकर देखने लगे । बनवारी बेचारे ने तो झुककर दो बार माथे से हाथ भी लगा डाला । उसकी मूँछों में संशय की हँसी थी । एक तो अप्ररिचित और फिर बाकायदा पूरा बाबू । संशय के साथ-साथ थोड़ा डर भी था उसे ।

रामदेई की अवस्था भी ऐसी ही थी। बच्चों-कच्चों को लेकर बहू तो चूल्हे के धुँए से आच्छन्न बिल्कुल कोने में ही घुस गयी। हाय राम ! यह कौन है ?

आगन्तुक का गाम्भीर्य और नहीं टिक पाया। उसके मोटे ओठों के बीच से बड़े-बड़े लम्बे दाँतों कि पंक्ति निकल आयी। कुछ भी कहे बिना हाथों का सामान उसने नीचे रख दिया और गर्दन जरा उठाकर दोनों हाथ भाड़ने लगा।

संध्या के अंधकार में काली-काली छायाओं के सामने बस्ती के औरत-मर्दों ने थोड़ी-थोड़ी दूर पर खड़े होकर एक व्यूह-सा तैयार कर डाला। कुछ क्षणों के लिए अखंड निस्तब्धता उतर आयी बस्ती में। यहाँ तक कि बच्चे भी चिल्लाना भूल गये।

बनवारी हाथ जोड़कर अब पूछे बिना नहीं रह सका, “आप—”

इस बार वह हा हा, ही ही करता हुआ खुले गले से हँस पड़ा। छाती पर हाथ रखकर रुक-रुककर ऊँचे स्वर में बोला, “अरे हम, हम बेचन हैं, तुम्हारा लड़का।”

बेचन ! बनवारी का लड़का बेचन ! तुरत ही सब छायाएँ मूर्ति बनकर बेचन के शरीर पर उमड़ पड़ीं। मानों शरीर का चमड़ा उखाड़कर देखे बिना विश्वास नहीं होगा उन्हें। जूट मिल का स्पिनर, गोरखपुर के कहार का बेटा, जो अपना नाम बताने की बजाय बाप का नाम बताता था वही मूर्ख नासमझ बेचन है यह !

एक बोला, “हाय राम !” तो दूसरा बोला, “हे भगवान !” तीसरे ने कहाँ, “कहाँ जाऊँ !”

बेचन की माँ रामदेई तो एक क्षण के लिए मुँह फाड़े देखती रह गयी और फिर आड़ में मुँह छुपा कर रो पड़ी, “इ हमार का भइल हो !”

चूल्हे के पास कोने में खड़ी बहू की छाती डर से धुक-धुक कर रही थी। पाँच साल की उम्र में उसकी शादी हुई थी। उसके बाद डेढ़ साल पहले बेचन और उसके ससुर गौना करके उसे मुलुक से ले आये थे। बेचन उसके साथ कोई डेढ़क महीने रहा था; फिर चला गया था। उसी बेचन की एक तस्वीर दिल में बना रखी थी उसने। पर आज यह कैसा सर्वनाश हुआ उसका। यह कौन से देश का अजीब मर्द है। यह तो उसका वह आदमी नहीं है।

पहले तो वह सिसक उठी और फिर सास के साथ गला मिलाकर चीख-चीख कर रोने लगी।

बेचन मुश्किल में पड़ गया। अप्रतिभ-सा हँसकर वह कहने जा ही रहा था, “अरे तुम लोग रोता क्यों हो ?” कि उससे पहले ही बनवारी चिल्ला उठा, “अरे सुआर का बच्चा, यह हम क्या देखता है ? तू क्या जेहेल से आता है ?”

बेचन की हँसी तुरन्त उड़ गयी। पर तब भी यथेष्ट सप्रतिभ बनकर बोला, “हई लग्रो, गाली बकता है। जेहेल से नहीं तो क्या मैदान से आता है।”

“चुप, चुप रहो हरामजादा ।”

चिल्लाकर बनवारी मारने को दौड़ा । इस वक्त वह एक खूंखार बाप था । वैसे ही बाप की तरह बेटे पर शासन करने के लिए उद्यत था । बेचन के कपड़े दिखाकर बोला, “अरे तू तो बनवारी कहार का लड़का है, कहाँ से साहब बनकर आया, अँ ? लिखा-पढ़ी नहीं जानता, अरे गोरखपुर का चूहा, चूतिया बनवारी नन्दन ई सब तू बदन पर क्या चढ़ाया, अँ ? कहाँ से चुराया ?”

चुराया ? चोरी ? बेचन हँसे कि रोये कुछ सोच नहीं पाया । जरा हंसकर बेवकूफों की तरह करुण नेत्रों से देखकर हताशा भरे स्वर में बोला, “हई लभ्रो; चोरी हम काहे करेगा ?”

इस जवाब से पहले ही भीड़ ठेलता हुआ अलगू आकर बनवारी से बोला, “बनवारी तुमको जल्दी मकान वाला बुलाता है ।”

बनवारी तत्काल भीड़ ठेलता हुआ चला गया । मकानवाला खाली मकान-वाला नहीं था, एक डिपार्ट का सरदार था, गाँव का ब्राह्मण था, एक सरपंच जैसा था, उस पर सूद का व्यापारी था । उधार रुपया देता था अर्थात् न्याय-अन्याय, जान-प्राण सब कुछ उसके हाथ में था । सब छोड़कर पहले उसकी बात सुनने के लिए जाना ही पड़ता था ।

बेचन सोचने लगा कि क्या करे । उसकी इतनी साध से की गयी साज-सज्जा, दिल में भरी हुई अजीब-अजीब आश्चर्य में डालने वाली बातें स्वयं को सबसे ऊपर एक इन्सान की तरह इन्सान बनाने की आकांक्षा आदि सब कुछ तो जहन्नुम में गया ही पर सारी बस्ती में एक हंगामे का सूत्रपात और हो गया ।

इस वक्त भी सब उसे घेरे खड़े थे, लड़के-बच्चे, जवान-वृद्ध । उचक-उचक कर देख रहे थे । तरह-तरह की बातें कर रहे थे । और उधर माँ और बहू, भाई और बहनों ने रोना मचा रक्खा था ।

बेचन जेल गया था । डेढ़ साल से जेल में था वह । नहीं, चोरी-डकैती करके नहीं गया था । कारखाने की राशन हड़ताल में जिसे कहना चाहिये वह एक नेता बन बैठा था । कम और खराब राशन मिलता था, उस पर भी अतिरिक्त कीमत देनी पड़ती थी और कम्पनी उसे भी बंद कर देने की फिक्क में थी । दूसरे पाँच जनों के साथ बेचन भी यह अन्याय सहन नहीं कर पाया । इस मामले को लेकर वह बात बढ़ा बैठा । यहाँ तक कि उसके इसी बाप ने, उसे घेर कर खड़े हुए इन्हीं पास-पड़ोसियों ने बेचन की बात पर हल्ला मचाकर कारखाने को घेर भी लिया था । सारे इलाके की जो हड़ताल-कमेटी बनी थी, बेचन उसका मेम्बर तक बना था । कोई ऐसी-वैसी बात नहीं थी ।

हाँ, स्वयं के आगे सच बात स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं थी। कहाँ से उसके मन में इतना तेज, इतनी घृणा आ गयी थी, इसका वह किसी तरह अंदाज नहीं लगा पाया था। पर सिर्फ पदाधिकारियों के ही नहीं कारखाने में हर एक के मुँह पर बेचन था, यहाँ तक कि लेबर आफिसर और मैनेजर के मुँह से भी बेचन सुना गया था। अपने ऊपर सबकी नजर देखकर अन्दर ही अन्दर एक तरह से अभिभूत हो गया था वह। अपनी जान की कीमत भी तुच्छ लगने लगी थी उसे। उसने तय कर लिया था कि या तो इस पार नहीं तो उस पार। हाँ हाँ, इसी बेचन ने वक्तृता तक दी थी। बाप ने अवश्य उससे बोलचाल बंद कर दी थी, माँ ने भी यही किया था। बहू अर्थात् बीबी तो तब तक गौना करके बाप के यहाँ से आयी ही नहीं थी।

उनकी माँगें तो स्वीकार कर ली गयी थीं पर उसी दिन मैनेजर ने उसे एक बात कहने के लिए बुला भेजा। बात करते-करते दरोगा साहब ने थाने ले जाने के बहाने सीधे कलकत्ता चालान कर दिया था उसका। उसने दरोगा बाबू से पूछा था, “बाबू आप हमको कहाँ लिये जा रहे हैं?”

दरोगा बाबू ने उसकी ओर देखकर, मुँह में सिगरेट लगाकर, हँसकर कहा था, “असली कारखाने में, जहाँ पूरा राशन मिलेगा और जहाँ पूरी हड़ताल-कमेटी हाजिर है।”

दरोगा बाबू के प्रति एक अविश्वास-सा जम गया था मन में, इसलिए उसने विश्वास नहीं किया उनकी बात का, पर जेल में जाकर देखा कि सचमुच एक-एक करके पूरी हड़ताल-कमेटी हाजिर थी। देखकर वह गम्भीर स्वर में बोला था, “तुम लोग यहाँ हो यह मैं पहले से ही जानता हूँ।”

और वहाँ, जेल में वह क्या था? राजबंदी। माने? माने ‘डेट्यूट’।

बात याद आते ही वह फिर दब्वूपन छोड़कर उठ खड़ा हुआ। सबकी ओर देखकर सौजन्यता से पूछा, “क्यों तुम लोग सब अच्छे तो हो?”

कोई हँसा, कोई कौतुक और संशय से चुप रहा। केवल एक अल्पवयस्क छोकरा जो बेचन का ही समवयस्क था, बोला, “हाँ, अच्छा ही है। भाई बेचन, पुलिस तुमको बहुत पीटा क्यों?”

“मार?” एक हूबहू शरीफ आदमी की तरह हँस पड़ा बेचन। उसके बाद अचानक गम्भीर होकर बोला, “कोशिश तो जरूर किया था।” इधर-उधर के तरह-तरह के प्रश्न पूछे थे उससे—जैसे ये बाबू कहाँ रहते हैं? वह बाबू कब आये? बम कहाँ बनता है? बिल्कुल बेकार के प्रश्न थे सब। वह क्या कहता? बोला, वह कुछ नहीं जानता। इस पर उन्होंने डर दिखाया कि जान निकाल लेंगे। पर

वह क्या कर सकता था भला ?

कहते-कहते उसके गले का स्वर एक सप्तक ऊँचा चढ़ गया। बाकी सब लोगों की आँखें फैल गयीं। आधे अंधकार में लोगों का एक भुंड काले-काले भूतों की तरह उत्सुकता से, विस्मय से आँखें फाड़े हुए था। यहाँ तक कि रामदेई और बहू के रोने का स्वर भी धीमा पड़ गया था।

वेचन बोला, “मैं बोला जान से मार डालो। जो नहीं जानता वह कैसे बताऊँ। बोलकर हम एकदम चुप हो गया। उसके बाद हमारा फोटो खींचा, अंगूठे का निशान लिया और भेज दिया जेल में।” उसकी आँखों में उसके हृदय में छुपा हुआ वीरत्व प्रतिभासित हो उठा। और दूसरे सब अपने ही वेचन की यह अकल्पनीय, दुःसाहसिक कहानी सुनकर कुछ क्षणों तक बुत की तरह खड़े रहे। यही बात यदि किसी बंगाली बाबू की होती या बाबू साहबों के किसी दिग्गज लड़के की होती तो आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। पर यह अपने बनवारी का बेटा वेचन था न।

वेचन का अब एक और नया रूप सामने आया। गम्भीरता से जरा गर्दन हिलाकर पूछा उसने, “कारखाने का हालचाल कैसा है ?”

वही पहले वाला छोकरा बोला, “हालचाल ? साला रोजाना किचकिच। इसके लिए छँटाई, उसके लिए चार सीट, बोनिंग, यह तो रोजाना ही होता है।”

‘हूँ...?’ वेचन ने छाती फुलाकर जलती आँखों से एक बार सब की ओर देखकर वक्तृता के ढंग से बोलना शुरू किया, “हम कल ही कारखाना जाएगा। देखो भाई, जिसको बोलता है मजदूर तुम वही हो। तुम सब एक रहेगा, एक साथ लड़ेगा तो कम्पनी का—”

रुकना पड़ा बीच में, स्वयं सरदार, मकान-मालिक उसके बाप के साथ हाजिर था। एक ने एक खटिया आगे कर दी। वह बैठ गया। मूँछों में विरक्ति और हँसी की झलक थी। मोटी भवों के नीचे की शक्ति, अप्रसन्न, तीक्ष्ण नेत्रों की दृष्टि वेचन की ओर थी।

सब फिर चुप हो गये, मानों पंचायत बैठी हो। कटहरे में खड़े बन्दियों के समान इतने लोगों में वेचन ही अपवादस्वरूप था। विचित्र आदमी की तरह खड़ा था वह। उसके बाद निस्तब्धता भंग करता हुआ वही पहले बोला, “नमस्ते बाबू साहब।”

‘नमस्ते ! हूँ। अब राम-राम नहीं।’ धीरे-धीरे सिर हिलाया मकान-मालिक सरदार कालिका प्रसाद ने। लड़के को बीमारी ठीक जगह पर लगी है, यही समझा वह।

कड़ाके की सर्दियों थी तब भी भीड़ में से कोई भी घर नहीं जाना चाह रहा था। कुहरे से आछन्न आकाश के निस्तेज फीके तारे जैसे किसी वृद्ध की मोतिया-बिंद से रगए आँखों से ताक रहे थे। चबूतरे के ऊपर खड़ा नीम का टूँठ ऐसा लग रहा था जैसे वह भी इन घेरा बनाकर खड़े हुए आदमियों में से एक हो।

घर-घर काम-काज एक तरह से बंद था तब भी कुप्पी हर घर में जल रही थी। अबोध उत्साही बच्चों ने आलोचना को अपने दायरे में ले लिया था। दूसरे एक बार कालिका प्रसाद की तरफ देख रहे थे और एक बार बेचन की। कालिका प्रसाद बोला, “बेचन, बेटा तू जेहल से आता है?”

लगता था बेचन कालिका प्रसाद से कुढ़ा हुआ था, या शायद अब उससे जरा चिढ़ गया था। जवाब दिया, “जरूर, हम क्या भूठ बोलता है?”

जवाब का ढंग देखकर बनवारी के हाथ खुजलाने लगे पर कालिका प्रसाद मुलायम स्वर में बोला, “नहीं, नहीं, वो बात नहीं है; तो ये सब बढ़िया चीज तुझे जेल से दिया है?”

“नहीं तो, क्या हम चोरी किया है?” कहकर बेचन ने सबको साक्षी बनाना चाहा। पर दूसरे सब लोगों ने जल्दी से उसकी तरफ से आँखें फिरा लीं।

बनवारी ने काफी शान्त बन कर डाँटा, “चुप, बाबू साहब जो पूछता है, ठीक से जवाब दो। तू जेहल कम्पनी का लड़का नहीं है, हमका है। हाँ, एही बनवारी का, हाँ।”

इस ओर किसी तरफ भी बेचन का ध्यान ही नहीं था। उसने उसी वक्त सीधे खड़े होकर हाथ उठाकर बात करनी शुरू की थी। उसकी आँखों में, मुँह पर एक अपूर्व दीप्ति थी। उसे देखने से ऐसा लग रहा था जैसे उसे बहुत गुस्सा आ गया था। उसने समझाना शुरू किया, वह क्या था। जेल में वह किस तरह रहता था, क्या खाता था। सरकार उनको क्या देती थी। उसके बाद वह और भी गला चढ़ाकर बोला, “मगर काहे, इसीलिए ना कि हम डेटिडन लोग फाइट किया। हाँ, फाइट, और चालीस रोज भूखा रहा।”

भूखा? चालीस दिन! अब बनवारी के धैर्य का बाँध बिलकुल ही टूट गया। गुस्से से उसकी धूसर मूँछें खड़ी हो गयीं। वह चिल्ला पड़ा, “तुप हरामजादा, फिर भूठ बतायेगा तो जूती से मुँह तोड़ देगा।”

इस चिल्लाहट से बेचन के हाथ-पाँव सख्त हो गये, सावधान हो गया वह। तब भी उसने हाथ उठाकर समझाना चाहा पर उसके पहले ही बनवारी सबको साक्षी बनाकर और भी जोर से चिल्ला उठा, “अरे भाई, सुनिये बाबू साहब, हम सात रोज की भूख-तकलीफ से सब छोड़कर बंगाल में भाग आया और ये लड़का

चालीस रोज भूखा रहा ओहि पतलून का खातिर ?”

मुँह से अर्धैर्य और विरक्ति प्रकट करता हुआ वेचन बाप की तरफ हाथ हिला कर बोला, “हई लग्यो—”

टोक देने से बनवारी को गुस्सा आ गया, “हई लग्यो क्या रे साला ?”

इस बार वेचन ने पालिश किया हुआ मुँह बिगाड़कर हमेशा की तरह तिरछे होकर कमर पर हाथ रखकर कहा, “तुम अपना लड़का को साला बोलते हो ?”

ऐसा लगा कि अपरिसीम विस्मय की वजह से कुछ देर तो बात ही नहीं निकली बनवारी के मुँह से, बस मूँछें फड़कने लगीं। उसके बाद जैसे चौपुने जोर से वह उछल पड़ा, चिल्लाकर बोला, “ये क्या आज नया बोलता है, आँ ? तू जब दुनियाँ नहीं देखा था तबसे बोलता है, और आज तू हमको समझाता है ?”

यह कहकर कालिकाप्रसाद की तरफ मुँह घुमाकर बोला, “बाबू साहब, इसका हम खून कर देगा आज ।”

पर खून-खराबा नहीं हुआ; क्योंकि उतना आगे बढ़ने का बनवारी में साहस नहीं था। वह जितना आगे आया था उतना पीछे खिसक गया। जोर-जोर से हाँफने लगा वह।

कालिकाप्रसाद अब तक तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था वेचन की तरफ। ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था। अबकी बार वह दृढ़ विश्वास से मूँछ मरोड़ता हुआ बोला, “वेचन, तू किमलिस बनकर आया है, क्यों ठीक है न !”

इस अभूतपूर्व प्रश्न पर सबकी उत्सुक आँखें जवाब की प्रत्याशा में वेचन पर जा लगीं। बात का सही अर्थ सब नहीं जानते थे और सुख की थी या दुख की बहुतायत ने तो सुनी तक नहीं थी।

पहले तो जरा बेवकूफ़-सा बन गया वेचन। उसका चिकना-चुपड़ा चेहरा जैसे दूसरे लोगों के साथ मिल गया पर दूसरे ही क्षण उसके मोटे ओठों के बीच से भका-भक दाँत निकल पड़े, “ओ किमलिस, माने जिसको कमनिस बोलता है। मगर...”

कहकर वह कुछ क्षण चुप रहा। लगता था मन ही मन वह जेल के जीवन की बातें याद करके इकट्ठी कर रहा था जैसे। उसके बाद बोला, “एक बात है, टाइम जब आ जायेगा तो सब क्रांतिकारी हो जायगा, एक दम ठीक से कमनिस बन जायगा। हाँ कोई रोज बन जायेगा।”

बात उसने इस ढंग से कही जैसे बहुत गर्व की हो और उसके जीवन में बहुत ज्यादा मेहनत करने की जरूरत हो। कहने की बात नहीं है, कालिकाप्रसाद को उसकी बात पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। एक तो वेचन ने कारखाने में हड़ताल करा दी थी, उसके बाद वह डेढ़ साल जेल काटकर आया था, चालीस

दिन बिना खाये रहा था और फिर लड़के की शक्ल ही बदल गयी थी; यहाँ तक कि बात करने का ढंग भी बदल गया था। अतएव उसने सोचा कि वह जरूर किमलिस बन गया है पर चुप रहा। मन ही मन उसने कहा, ठीक है, मैं भी कालिकाप्रसाद सर्दार हूँ। अच्छा सबक सिखाऊँगा। तब भी बस्ती के लोगों को जरा सँभाल कर रखना पड़ेगा और मैंनेजर को भी खबर देनी पड़ेगी। कुछ गड़बड़ देखी तो भगाने में कितनी देर लगती है। उसने बनवारी को एक तरफ आड़ में बुलाकर कह दिया, “खूब होशियार रहना, तुम्हारा लड़का बहुत भारी किमलिस बन कर आया है। इस पर नजर रखना होगा, नहीं, उसको छोड़ना होगा समझा। नहीं बीमारी बढ़ जायेगा।”

कुछ भी हो, मोटे तौर पर बनवारी की समझ में यह आया कि उसके लड़के ने चोरी नहीं की है और यह तो भगवान ही जाने कि उसे ४० दिन भूखा रहने की क्या सतक चढ़ी थी। इस बात पर पूरा विश्वास अवश्य वह कभी नहीं कर पायेगा। ऊपर से एक बीमारी और ले आया है हरामजादा, अर्थात् किमलिस बन आया है। कालिकाप्रसाद ने उसे यह भी समझा दिया कि लाल भंडा तो शिवपूजन का भी है, नवरिन बाबू का भी है पर किमलिस एक दूसरी चीज है मुस्लिम, किरिस्तान, धर्म तो कोई होता ही नहीं इनका बल्कि बम, गोले, गोली हमेशा जेबों में लिये घूमते हैं।

अतएव बनवारी समझा कि उसका लड़का एक भयावह प्राणी है।

नगीना मोची का लड़का पतलून पहनता है, तिरछी माँग निकालता है पर वह असल में सेंध लगानेवाला चोर है। पुलिस उस पर उठते-बैठते लाठी चलाती है। साल में एक महीना वह बाहर रहता है और ग्यारह महीना अन्दर। राजिन्दर का घेठा भी धोखेवाजी करता है, असल में गुंडागिरी इसका पेशा है। और बेचन, किमलिस, हाथ राम !

पर तब भी उसने असली बात सुनाकर कह दी, “जो भी हो, हफ्ता में हमको १०) देना होगा, फोकट में। खाना नहीं मिलेगा, ये पहले ही बोल देता है।”

बेचन ने उस वक्त अपनी बूढ़ी माँ रामदेई को समझा दिया कि उसने किस तरह दिन बिताये थे। रोने की बात नहीं है, वह आदमी बनकर आया है। माँ की आड़ में भुनिया पर नजर फेंककर वह असल में उसे सुना रहा था।

उसकी माँ रोना बन्द करके दिखावटी गुस्से से मुँह फेरकर बैठी सुन रही थी। पर विस्मय से उसकी धूथनी लटक गयी थी और जीभ बाहर निकल आयी थी। भुर्रियाँ पड़े मुख पर जूट के रेशे चिपक जाने से उसका मुँह रंग उखड़ी प्रतिमा जैसा लग रहा था। बहू भी आटा माड़ते-माड़ते सुन रही थी। भाई-बहन गाल पर हाथ रखकर बैठे सुन रहे थे। नंगे बदन थे वह लोग। सर्दी थी तब भी कपड़ा नहीं

था उनके बदन पर ।

और भी कुछ जवान लड़के बैठे सुन रहे थे । बाकी के लोग भी कान लगाये हुए थे पर अपने-अपने घर की दलहीज पर बैठे । वहुतों को यह जानने की उत्सुकता थी कि मन लुभाने वाली उस चमड़े की पेटी में क्या है । हो सकता है बेचन की वह पेटी बनवारी की तकदीर खोल दे ।

जिस खटिया पर कालिकाप्रसाद बैठा था, उसी पर पाँव फैलाकर बैठा था बेचन । कह रहा था, “हाँ जेल का डागडर भूख हड़ताल के समय में जबर्दस्ती दूध पिलाने आता रहा । तो कैसे पिलाता था । एक ठो रबर का नल नाक से पेट के अन्दर देता रहा और उस नल में से छुक-छुक दूध डाल देता था । मगर हम लोग थोड़ा ही पीता था । रोज मारपीट होता रहा ।”

यह नयी बात सुनकर सबके बदन के रोंगटे खड़े हो गये । बनवारी ने जरा भी विश्वास नहीं किया । उसका गुस्सा और भी बढ़ने लगा ।

पर उसके कुछ कहने के पहले ही बेचन ने भट से जेब में हाथ डालकर सफेद चिट्ठा हमाल निकाला और नाक सिनककर सबके सामने कर दिया । सबने कौतूहल से उचककर देखा तो चौंक उठे । वह खून जो था ।

पर बेचन ओंठ उलटकर हँसते-हँसते बोला, ‘घाव हो गया, सूखा नहीं अब तक ।’

अबकी बार बनवारी भी सबके साथ आँखें फाड़े देखता रह गया । अपने लड़के को परख-परख देखने लगा । नहीं खुश वह किसी तरह भी नहीं हो पा रहा था । एक तो मर्द होकर बेचन ने मूछों को तिलांजलि दे दी थी, जैसे औरतों का पालिश किया हुआ मुँह हो । चैतन अर्थात् चोटी भी जेल कम्पनी को बेच आया था और बात भी करता था ठेठ हिन्दी में ।

जो भी हो सारी बस्ती के असीम कौतूहल और उत्कंठा में सारे दिन के कठोर श्रम के बाद अपनी गहरी नींद लेकर सर्दियों की रात उतर आयी । सबकी पलकें अपने आप ही बन्द होने लगीं । सोये हुए आदमियों से कमरा ऐसा भर गया कि एक इंच भी जमीन नहीं बची । बेचन कपड़े उतारकर रोज के जेल-जीवन की तरह पायजामा पहनकर हाथ-पाँव धोकर खाने बैठा । उसकी माँ और बहू ने खाना परोसा ।

उसके बाद रात को सोते वक्त एक और आफत उठ खड़ी हुई ।

कमरे के बाहर चूल्हे के पास एक खटिया बेचन के सोने के लिए डाल दी गयी । बाहर से आड़ करने के लिए एक टाट का टुकड़ा लटका दिया गया ।

झुनिया को रात को बेचन के साथ सोने देने में बनवारी को घोर आपत्ति थी । पर रामदेई अर्थात् माँ ने उसकी एक न चलने दी, बोली, मर्द के घर रहते औरत

का अकेले सोना अच्छा नहीं होता। क्यों? क्योंकि बरहम देव या दूसरे किसी अशरीरी जिन-प्रेत की हवा लगने का डर रहता है। मर्द के रहने से उन्हें मौका नहीं मिल पाता।

अंत में बनवारी का दरवाजा बन्द हुआ और भुनिया बिचारी एक कोने में मुँह छुपाये पल गिनने लगी। डर से वह आज मुँह उठा ही नहीं पा रही थी।

पहली बात तो यह थी कि जिस दिन गौना करके वेचन उसे लाया था, जिसे उसने अपना किशोर मन और प्राण सौंपे थे, वह खड़े वालों वाला, हल्दी के रंग की कमीज और धोती पहने, देहाती, बातूनी आदमी तो यह था नहीं; इसका नाम-धाम भी अगर दूसरा होता तो इसे विस्मय नहीं होता। मतलब इसकी कोई भी चीज उससे परिचित नहीं थी। यहाँ तक कि शरीर और कपड़ों से जो गंध निकल रही थी सिर्फ वही अपरिचित नहीं थी, पर उसके मन में अपरिचय का एक दूरत्व भय और कुछ संकोच-सा समा गया था। उस पर खटिया का बिस्तर इतना नरम, साफ और विचित्र गंधमय था कि अपने जीवन में ऐसे बिस्तर पर सोना तो दूर की बात थी वह कभी पास तक नहीं फटकी थी। इस कारण उसका शरीर तक संकुचित हुआ जा रहा था।

और फिर इसके अलावा उसने एक दुर्बोध, अद्भुत विशेषण सुना था कि आदमी किमलिस है।

भुनिया को लग रहा था कि कोई दूसरा मर्द उसे छीन लेने के लिए आया है। पर वेचन को उन सब बातों का ख्याल कहाँ था। मनुष्य के लिए मुक्ति एक असीम आनन्द है। वेचन मुक्ति के उसी नशे में पागल था। वह गानों की लाइनें गुनगुना रहा था। उसका मुर हृदय के दवे आवेग से कभी-कभी बेसुर होकर काँप जाता था। उसके बाद उसने भुनिया को समझाना शुरू किया कि वह क्या बन गया है। उसने बताया कि “यह जान चली जाय तब भी मालिक का जुलुम खतम करना होगा। कैसे? लड़ना होगा। इसलिए लिखा-पढ़ी करना होगी। हमको जेहेल में यू० पी० के रहने वाले एक बड़े बाबू बहुत कुछ सिखाए हैं। हम अभी किताब पढ़ सकता है, तुमको भी पढ़ना सिखाएगा।”

यह कह कर उसने चमकती हुई आँखों से हाथों में मुँह छुपाकर बैठी भुनिया की ओर एक बार देखा। और फिर बोलना शुरू किया, “दुनिया में बहुत औरतें मरद के साथ काम करती हैं, तुमको भी हम अपने साथ ले लेगा।”

कहकर उसने गर्दन सीधी करके गर्व से भुनिया की ओर देखा। पर भुनिया तो बिल्कुल ही चुप थी, यहाँ तक कि हिल-डुल भी नहीं रही थी।

और थोड़ी देर तक ऐसी बातें करते-करते वह भुनिया की तरफ देखकर रुक

गया। उसके बाद बोला, “खटिया पर चली आओ, काहे वहाँ बैठी हो, हम तो नया आदमी नहीं है।”

कहकर वह ओठ सिकोड़कर हँसा। भुनिया आयी नहीं। बेचन समझ गया कि बहुत दिन हो गये हैं इसलिए भुनिया को शर्म आ रही है। आयेगो ही। उसकी आँखों के सामने गौने के बाद कुछ दिनों की मधुर स्मृति तैर गयी। प्रेममयी, किशोरी भुनिया की वह अबोध दृष्टि, हँसी से चंचल अभिमान से छलछलाती वह आँखें, मीठी बातें, दबी हुई मुस्कान देखकर हृदय मानों रंगीन स्रोत में डुबकी लगा जाता था। जेल में भी वह मुख याद करके उसकी विनिद्र रातें निःशब्द गूँगों की तरह घुट-घुट कर बीतती थीं, शून्यता से दिल भर उठता और रात के प्रहरी के बूटों की आवाज से हृदय बिंध जाता। तब मुक्ति के लिए पागल हो उठता था वह। बाहर का जीवन तब उसे जैसे हाथ के इशारे से बुलाता। और तब वह सब कुछ भूल कर अंधेरी सेल में अभिशप्त अशरीरी की तरह चारों दीवारों को खोयी-खोयी नजरों से देखता।

आज वह मुक्त था। आज वह बस्ती में था। आज उसका मन शान्त था, भुनिया भी उसके पास थी। सोचते-सोचते न जाने क्या हुआ, शायद अंधे प्यार के आवेग से स्वयं को रोकना मुश्किल हो गया उसके लिए। जब कई बार बुलाने पर कोई जवाब नहीं मिला तो उसने हँसते-हँसते उसका हाथ पकड़कर खींचा जरा। भुनिया वह सब लिखाई-पढ़ाई और बेचन के साथ मिलकर काम करने की बातें सुनकर पहले ही निःशब्द रो रही थी और अब हाथ पकड़ने से उसका डर दुगुना हो गया। उसकी साँस जैसे गले में ही अटक गयी।

पर बेचन को इसका अन्दाज नहीं लगा। अंधे प्रेमावेश में भुनिया को दोनों बाहुओं में समेट कर उसके मुख पर एक चुम्बन अंकित कर दिया उसने।

अब तक मौन बैठी भुनिया के गले से दबा हुआ रुदन अचानक जोर से फूट पड़ा; क्योंकि आदमी अचानक उसके साथ ऐसा व्यवहार करेगा, यह उसने सोचा तक नहीं था।

रोने की आवाज सुनते ही कमरे के अन्दर से बनवारी, “का भईल, का भईल” कह कर चिल्ला उठा। और उसके साथ-साथ रामदेई भी। साथ ही साथ आस-पास के घरों से भी लोग ऊँचे स्वर में पूछ-ताछ करने लगे। सारी बस्ती जाग गयी। अचानक यह शोरगुल सुनकर कुत्तों तक ने भौंकना शुरू कर दिया।

बेचन के हाथ-पाँव शिथिल पड़ गये और उसके मुँह से निकल पड़ा, “हई लग्यो।”

बस यह ‘हई लग्यो’ शब्द ही भुनिया का एकमात्र परिचित था। इस शब्द

के कारण वह पूर्ण रूप से अविश्वास नहीं कर पा रही थी। ऐसा लगता था कि यह बेचन वही बेचन है।

पर तब तक बनवारी बाहर निकल आया था। रामदेई भी आ गयी थी, और भी दो-चार आदमी इकट्ठे हो गये थे।

सब के प्रश्नों से बेचन को ऐसा लगा जैसे वह चोरी करते पकड़ा गया हो। तब भी बेवकूफों की तरह हँसकर बोल पड़ा, “ये डर गयी।”

अब बनवारी ने रामदेई पर दोष डाला, “तुम को हम क्या बोला था? ये लड़का क्या न क्या बनके आया है, तो औरत कैसे रहेगा?” रामदेई ने बात को लिया दूसरे ढंग से। वह बनवारी पर खीज उठी, “ओइसा होता इ करता है। जिन्दिगी भर इसको ये मरद का साथ रहने पड़ेगा कि नहीं? मरद जो भी हो, किमलिस हो, डाकू हो या चूहा हो। छोड़ो, तुम अन्दर चला आओ।”

यह कहकर वह बनवारी को लेकर कमरे में चली गयी। दूसरे लोग कौतुक से अधिक विस्मय लिये लौट गये।

भुनिया उसी तरह मुँह ढके खड़ी रही। वह निःशब्द रो रही थी। जो कुछ बीता उसके लिए अपने को अपराधी सोचकर वह अप्रतिभ हो गयी थी; पर और कोई उपाय भी तो नहीं था। वह करती क्या उसके अलावा।

और बेचन! अभिमान से छाती फूल गयी उसकी। मुहब्बत भूल गयी है भुनिया। व्यर्थ ही मन खराब हो जाने से उस सर्दी की रात में भी वह बाहर निकल गया। बाहर आते ही उसका मन फिर चंगा हो उठा। कितने दिन बाद वह आज आधी रात को आकाश के नीचे खड़ा था। बस्ती का पुराना कुत्ता उसे पहचानकर उससे चिपट जा रहा था। पाँव चाट कर प्यार जता रहा था। सामने ही गंगा थी, ऐसा लग रहा था मानों किसी अदृश्य गह्वर से धुँएँ-जैसा कुहरा उठ रहा हो। सामने ही शहर की बड़ी सड़क के बिजली के खंभे दिखाई दे रहे थे, कारखाने की चिमनी नजर आ रही थी। मन ही मन बेचन बोला, सब ठीक हो जायगा, हाँ। भुनिया, माँ-बाप, पड़ोसी, कारखाने के मजदूर सब ठीक हो जायेंगे।

पर किस तरह? बेचन उन्हें रास्ता दिखायेगा।

इसी एक चिन्ता में वह निमग्न था। जीवन में उसे एक ही कर्तव्य पूरा करना था। वह यह कि जिस तरह भी हो एक असली कमनिस की तरह मजदूरों की जिंदगी बदलना। वह कमनिस बनाना चाहता था, क्योंकि ठीक न समझ पाने पर भी अजीब एक धुँधले शुभ दिन की वह कामना कर रहा था।

पर उसके बाद दूसरों के लिए वह और उसके लिए दूसरे सब एक समस्या बनकर खड़े हो गये। दूसरे दिन सुबह जब वह टूथपेस्ट और ब्रश से दाँत साफ

कर रहा था तो कारखाने जाते वक्त बाप से फिर भगड़ा हो गया। सिर्फ बाप ने ही नहीं सारी बस्ती के लोगों ने मुँह बाये उसका राजकीय कायदे से दाँत साफ करना देखा था। और वह ब्रश जो था। बनवारी जाते-जाते कह गया, “विलाइती बुरुश से दाँत साफ करता है। ठहर जो साला कारखाना से आकर—”

लेकिन बेचन ने इन सब बातों पर ध्यान नहीं दिया। बनवारी के कारखाने से आने के बाद भी उस दिन और आगे भी कई दिनों तक भगड़ा-फसाद दबा रहा, क्योंकि बेचन माँ व बहू के लिए एक-एक साड़ी लाया था और बाप के लिए घोती-कमीज। उसके अलावा तीन साबुत कमीज और पायजामे भी उसने अपने समवयस्क मित्रों को दान किये थे। वे सभी स्पिनर थे, पुराने सहकर्मी।

इस बात पर भी बनवारी ताना मारे बिना नहीं रहा, “बड़ा तालुकेदार आइ-लन, आधा पइसा का बच्चा नहीं है और वनत है चाँदी का बाप।” पर उधर सब बातों से बेखबर बेचन उस वक्त शायद खड़ा किसी को समझा रहा था, “हाँ, हाँ, भाई; हम बोलता है अब मजदूर का राज जरूर होना चाहिये। अँ ? कैसे ? अच्छा ठहरो।”

कह कर कभी तो जेल से साथ लायी हुई तीनों किताबें उलटने-पलटने बैठ जाता, नहीं तो कहता, “अच्छा कल बतायेगा।”

पर दूसरे दिन कुछ न कुछ बतलाता जरूरत। उसके श्रोताओं ने ‘मजदूर राज’ शब्द अवश्य दो-एक बड़े-बड़े जलसों में सुन रक्खा था, पर उसका मतलब नहीं समझते थे। वे लोग सोचते थे शायद ऊपर से कुछ होता हो। पर बेचन की बातें सुनकर सचमुच उन्हें आश्चर्य होता था। संशय व अविश्वास मिश्रित एक भाव-सा उनके मन में आ जाता था। लेकिन कोई-कोई हँसता था और कोई-कोई गाली-गलौज भी कर देता था अर्थात् दो-चार जनों के मन में बेचन के प्रति सम्मान था, अधिकतर लोग शंकिता थे, काफी लोगों को डर और अविश्वास था और थोड़े-बहुत विद्वेषी भी थे।

उसके बाद कपड़ों वगैरह की बात खत्म होते न होते बेचन के दाढ़ी बनाने के सामान, तेल, साबुन, पोशाक, चोटी, मूँछ आदि को लेकर रोज ही बनवारी के साथ मार-पीट की नौबत आने लगी। उस दिन तो बात चरम सीमा पर पहुँच गयी जिस दिन बेचन पतलून और कमीज पहन कर सीधे कारखाने जा पहुँचा। यहाँ तक कि वह डिपार्ट के अन्दर भी चला गया था। खबर मिलते ही गोरा मैनेजर, इंजिनियर, काला लेबर आफिसर, बड़ा सर्दार और दो दरबान सब एक साथ मिलकर उसे भगाने के लिए आये थे। उसने उन लोगों को समझाना चाहा, “सिरिफ मुलाकात करने आया है हम।” पर किसी ने विश्वास नहीं किया। तब वह गुस्से से

चिल्ला कर बता आया था कि बाहर वह सबसे मुलाकात करेगा ही। इस बेईमान मैनेजर ने उसे धोखे से पकड़वा दिया था, उसकी सजा उसे जरूर भोगनी पड़ेगी। तब तक उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया गया था।

कालिकाप्रसाद ने बनवारी को टोका, “क्या बोला रहा हम ? तुम्हारा लड़का को घर से भगाना होगा। नहीं तो बड़ा हुज्जत मचेगा।”

बनवारी ने बस्ती में घुसते ही सबसे पहले वेचन का दूधब्रश दो टुकड़े करके फेंका। तेल की शीशी फेंकने जा ही रहा था कि देखा उसमें तेल नहीं था। तब भी खाली शीशी फेंक दी। साबुनदानी भी फेंक दी। उसके बाद हाथ में कुछ नहीं आया तो चिल्ला कर बोला, “कहाँ गया, ले आओ साला जेहेल का बच्चा को।”

पर वह जेल का बच्चा उस वक्त कम्पनी के मजदूरों को इकट्ठा करके कह रहा था, “डेढ़ साल क्या, जिन्दगी भर रह सकता है जेल में, मगर कामियाब होना चाहिये।”

उसके बाद जैसे ही उसने बस्ती में पैर रक्खा कि बनवारी उस पर झपटा। पर हाथ उठाने जा ही रहा था कि रुक गया और घूँसे दिखाकर मार खाने के लिए बुलाने लगा।

वेचन शांत गम्भीर स्वर में बोला, “दिमाग ठीक रखो, काहे के तुम मजदूर हो।”

गुस्से से पागल हो गया बनवारी। अंत में चमड़े का सूटकेस खींचता हुआ लाया और वेचन के पाँवों के पास पटक कर बोला, “अभी निकलो, नहीं तो देखेगा कितना बड़ा किमलिस बना है।”

वेचन अप्रतिभ हो गया पर तो भी निर्विकार भाव से खड़ा रहा कुछ देर, फिर बोला, “अच्छा, थोड़े दिन बाद चला जायेगा।”

दूध-ब्रश, तेल की शीशी आदि की फिक्र नहीं थी वेचन को; क्योंकि खाली ब्रश रहने से तो चलता नहीं, मंजन भी चाहिये। पर पैसा था नहीं पास में। अतः तेल-साबुन लगाना अपने-आप ही बंद हो गया था। बपड़ों में साबुन नहीं लगा था इसलिए वे भी मैले हो गये थे। उनकी चमक-दमक भी कम हो गयी थी। यहाँ तक कि ब्लेड नहीं थे और खरीदने के लिये पैसे नहीं थे इसलिए दाढ़ी-मूँछ भी नहीं बन पाती थीं। बढ़ी हुई दाढ़ी अब हमेशा उसके मुँह पर दिखाई देती थी। काम को खोज में वह रोज इधर-उधर जाता पर वहाँ कोई भी कारखाना उसे काम देने के लिए तैयार नहीं था। वही एक बात थी, किमलिस।

स्वास्थ्य भी गिरने लगा था उसका। आँखें गड्ढों में घुस गयी थीं। पर उससे क्या, वह नियमित रूप से ठीक दोपहर को तीनों किताबें लेकर बैठता और बच्चों

की तरह जोर-जोर से पढ़ता : दुश्मन हर वक्त नजर रखता है कि हमारे संगठन का स्कू कहाँ ढीला है। जैसे वामपंथ और दक्षिण पंथ।

यहाँ रुकना पड़ता। वाम और दक्षिण का घपला दिमाग में नहीं बैठता। सोचता छोटे नारायण बाबू के पास जाय, वे कमनिस थे, पर वह जो कुछ बताते उसका चतुर्थांश भी मगज में नहीं समाता। अतः हार कर उसे मनगढ़न्त ही कुछ सोचना पड़ता।

तीन किताबों के अलावा उसके सूटकेस में कागज में लिपटी और भी दो चीजें थीं। एक स्नो की शीशी और एक पाउडर का डिब्बा। ये दोनों चीजें उसने भुनिया के लिए रख रखी थीं। पर भुनिया के साथ अभी तक वह अंतरंग रूप से एक नहीं हो पाया था। अब वह रोती-धोती अवश्य नहीं थी पर वह प्यार नहीं था। वह देखता था भुनिया बिल्कुल ही निस्पृह थी, वरन् सास-ससुर की बातें सुन-सुनकर बेचन पर विरक्त-सी थी। एक दिन तो उसने कह भी डाला था, “काहे तू किमलिस बन गइलन ?” समझा तो बेचन पाया ही नहीं था, उस पर भुनिया और भी दूर हो गयी थी उससे। दोनों चीजें बेचन ने उसे दी थीं पर उसने ली नहीं थीं। कह दिया था उसने कि मर भी जाय तो भी ये सब चीजें वह नहीं लगा पायेगी क्योंकि इतनी खराब औरत वह नहीं है। प्रेम अथवा विरह की वेदना प्रकट करने लायक भाषा बेचने के पास नहीं थी अतः चुप ही रहता पर हृदय में यन्त्रणा होने लगती। लेकिन इस यन्त्रणा की अनुभूति भी उसके लिए स्पष्ट नहीं थी।

खैर अब काम ढूँढ़ना और पढ़ना और उसके साथ-साथ कम्पनी के क्वार्टर्स व बस्ती में सब को अपनी बात बताना ही उसका एकमात्र कार्य था।

इसी बीच सर्दियाँ चली गयी थीं। बसन्त ने भी विदा ले ली थी। ग्रीष्म की तेज धूप से जमीन-आसमान तपते, सब कुछ तपता। नदी किनारे पर खड़े गुल-मोहर के वृक्ष अभी भी फूलों से लदे थे।

इतने दिन बाद एक काम मिला बेचन को। लाल साहब के बीस रिक्शा वालों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर रोज उनसे पैसे वसूल करने का काम। अच्छा काम था। जिम्मेदारी का।

पर अच्छा होने से क्या होता। रिक्शावालों को उसने समझाना शुरू किया कि लाल साहब उन लोगों को खाली-ठगता है। उन सब को लड़ना चाहिए एक दिन जाकर। बात के लाला के कानों में पहुँचते ही उसने विदा कर दिया बेचन को।

उसके बाद एक बड़े आदमी की गद्दी पर नौकर का काम मिला। वह बड़ा आदमी शराबी व रसिक था। यहाँ तक कि वह बेचन के साथ भी रसिकता कर बैठता था। मौका मिलते ही बेचन ने उसे भी, जेल की बात व मजदूरों के राज के

बारे में समझाना चाहता। बस ! शराबी की रसपूर्ण तन्द्रालस आँखें फेल गयीं। उसने सोचा कि अब उसकी गद्दी गयी हाथ से और बस काम खत्म हो गया बेचन का।

सब देख-मुन बनवारी अब और नहीं सह पा रहा था। बेचन के बस्ती में जाने को लेकर कालिकाप्रसाद रोज उस पर बिगड़ता, बेचन को भगा देने को कहता।

बनवारी का दिमाग ठिकाने नहीं रहता। सबसे ज्यादा गुस्सा आया उसे उन तीनों किताबों पर। सूटकेस का ताला तोड़कर एक दिन उसने तीनों किताबें निकाल ही लीं। खुद तो पढ़ना जानता नहीं था, ले गया कालिकाप्रसाद के पास। कालिकाप्रसाद ब्राह्मण तो था पर पढ़ना वह भी नहीं जानता था। चौराहे के मोड़ से नारद पंडित को बुलवाया गया।

नारद पंडित ने देखा, एक किताब का नाम था, 'कम्यूनिज़्म'। अन्दर एक दाढ़ी वाले आदमी की तस्वीर थी, जिसके नीचे लिखा हुआ था, 'ऋषि कार्ल मार्क्स'। एक का नाम था 'मार्क्सवादी शिक्षा'; जिसके अन्दर छोटी-छोटी दाढ़ी और मूँछों वाले गंजी खोपड़ी के एक आदमी की तस्वीर थी, नीचे लिखा हुआ था 'महामति लेनिन'। तीसरी का नाम था 'भूखा मजदूर', लेखक 'रामनरेश गुप्ता'।

देखते ही नारद पंडित ने ऐसे किताबों को नीचे जमीन पर फेंका जैसे कोई अस्पृश्य चीज छू ली हो, "यह छूने से पाप होता है। तुम्हारा लड़का एकदम जहन्नूम में चला गया है।"

कालिकाप्रसाद बोले, "पंडित, किमलिस किताब है न?"

पंडित ने कहा, "उससे भी खराब है!"

बनवारी के रोंगटे खड़े हो गये। बोला, "क्या मुसलमानी किताब है?" तस्वीरें देखकर वह यही समझा था। पंडित ने कहा, "उससे भी खराब है। भगवान को गाली लिखा है। लड़का एकदम बिगड़ गया है।"

और ज्यादा कहने की जरूरत नहीं थी। गुस्से में भर कर बनवारी ने किताबों को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिये और फिर घुटने मोड़कर बैठ गया मानों इतने दिन बाद सचमुच उसने बेचन को सजा दी हो।

किताब फाड़ने पर दो-चार जनों को आपत्ति भी थी पर पंडित और कालिकाप्रसाद के सामने कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी।

उसी वक्त बेचन आ गया। बड़ी हुई दाढ़ी, मैली पतलून, फटी कमीज। गालों की हड्डियाँ निकल आयी थीं। खुले गले से गाना गाते-गाते आ रहा था वह :—

"एक बार हो खड़े हिम्मत से, किस्मत लूटो दुनिया से।"

पर सामने लोगों को देखकर रुक गया। सब देखकर बात तो उसकी समझ

में आ गयी पर क्रोधित नहीं हुआ वह । फटे पन्ने देखकर बनवारी से पूछा, “किस ने फाड़ा, तुम ।”

हाथापाई की आशंका से बनवारी खड़ा हो गया और बोला, “हाँ तुम्हारा बाप।”

“यह तो सही बात है ।” कहकर बेचन सीधा तन कर खड़ा हो गया और हाथ हिला-हिलाकर तीव्र गंभीर स्वर में बोला—“तुम गलती किया । काहे के मजदूर के एक बहुत बड़े हमदर्दी, एक महाक्रांतिकारी का किताब तुम फाड़ दिया । देखो आज दुनिया में—” बीच में ही बनवारी चिल्ला उठा—“चुप, चुप रहो ।”

बेचन तब नारद पंडित की ओर मुड़कर नमस्ते करके बोला, “पंडित जी सुनिये, आप समझियेगा ।”

“पंडित उछल कर गुर्राया, “खबरदार, समझियेगा तो अच्छा नहीं हाँ, ।”

बेचन अवाक होकर बोला, “हई लओ ।”

बनवारी मुंह बिगाड़कर बोला, “क्या लेगा रे । तू पंडित जी को समझाता है । अभी निकल साला, निकल ।”

‘साला’ शब्द का प्रतिवाद करने की इच्छा रहने पर भी किया नहीं बेचन ने; क्योंकि वह बहुत ही क्लान्त और भूखा था । पर इस समय खाना माँगने पर भी मिलेगा नहीं, यह उसे मालूम था । उसने अपनी कोटरग्रस्त बुभुक्ष आँखों से ताक कर देखा भुनियाँ रोटियाँ बना रही थी और रोटि बनाते-वनाते उस तरफ ही देख रही थी । बेचन से नजर मिलते ही आँखें हटा लीं उसने ।

और कुछ भी कहे बिना जेब में हाथ डालकर बेचन धीरे-धीरे वहाँ से चला गया और सचमुच कुछ दिनों तक बस्ती की तरफ मुँह नहीं फेरा उसने । उसका भी एक कारण था । कारखाने में करीब चालीस आदमियों की छंटनी की बात चल रही थी । वह वहाँ भिड़ा हुआ था । उन लोगों को लेकर व्यस्त था । शिवपूजन बाबू, कामताप्रसाद, नवरिन बाबू भी आये थे लेकिन तब भी बेचन इस मामले को ऐसे ही तो छोड़ नहीं सकता था ।

छंटनी किये जाने वाले लोगों में उसकी माँ का नाम भी था । इसके लिए एक दिन उसने रास्ते में माँ को पकड़ा भी था, बात समझानी चाही थी उसे । बनवारी ने ईंट उठाकर भगा दिया था बेचन को । कहा था, “साला, किमलिसपना दिखाने आया है ?” फिर ‘साला’ सुनकर गुस्से से चला आया था बेचन ।

अब बेचन की शक्ल-सूरत इधर-उधर भटकने वाले पागल और भूखे भिखारी-जैसी हो गयी थी । विश्वास करना मुश्किल था कि एक दिन शरद की संध्या को वह अच्छी तरह फिटफाट बाबू बनकर आया था । उसके यार-दोस्त अवश्य उसे

खिला-पिला दिया करते थे जैसे चाय, पान वगैरह। कभी-कभी एक-दो विस्कुट या दो पैसे की लैया।

पर बात तो यह थी कि पिछली राशन-हड़ताल की सफलता और उसके बाद के जीवन की उसकी अभिज्ञता व आकांक्षा ने उसके सब कष्ट भुला दिये थे। छँटाई के व्यापार में उसे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।

पर श्रमिक हमेशा उसकी बात नहीं मुनते थे लेकिन साथ ही साथ वे लोग बेचन को बिल्कुल बेकार का आदमी भी नहीं समझते थे। वे लोग सोचते थे कि यह बेचारा क्या करेगा, शिवपूजन या नवरिन बाबू अर्थात् नरेन बाबू की बुद्धि के बल पर कम्पनी हार जाय तो एक बात भी है।

बेचन इधर-उधर मजदूरों को पकड़कर ठेठ हिन्दी में साफ गले से पूछता, “तुम लोग शहद खाना चाहते हो या नहीं? चाहते हो? तब यह भी ख्याल रखो कि शहद का छत्ता तोड़ना होगा, तकलीफ उठानी होगी, समझे?”

समझाते वक्त अनेकों की दुर्बोध नजरें उस पर लगी रहतीं क्योंकि वे सोचते थे, और चाहे जो भी हो पर मधुमक्खी का डंक अगर जेल का फाटक हुआ तो बड़ी आफत हो जायगी, भले ही बेचन उस जेल से कुछ भी बनकर आया हो। इसलिए डर भी था उन लोगों को।

कभी उसे नवरिन बाबू या कामताप्रसाद के साथ तर्क करते हुए देखा जाता और तर्क करते-करते अचानक वह ‘आज की दुनिया में मजदूर लड़ाई का रास्ता’ दिखाना शुरू कर देता। उधर कालिकाप्रसाद करीब-करीब रोज ही बनवारी को धमकाता कि वह क्यों नहीं लड़के को अविलम्ब इलाके से निकाल बाहर कर देता है। पर वह निकाले किस तरह? हरामजादा उसके हाथ में तो आता ही नहीं था। और मूटकेस व बेचन के मेल हो गये विस्तर के अलावा तो प्रतिशोध लेने के लिए कोई चीज थी नहीं।

इधर एक दिन भाग-दौड़ मच गयी, जिसे कहना चाहिए हाहाकार मच गया अर्थात् छँटाई-नोटिस जारी हो गया।

बेचन उस वक्त रेल साइडिंग की गुमटी में पड़ा सो रहा था, मानो रात भर का जागा हुआ एक भूखा मरियल कुत्ता हो।

साइडिंग के गेटमैन ने उसे जगाते हुए कहा, “का हो महाराज, आज दुनिया में छँटाई-नोटिस गिर गया।”

“हाँ...।” और बेचन झटपट कदम बढ़ाकर कारखाने के गेट पर हाजिर हुआ। पर कारखाने के गेट के पास कोई नहीं था।

बेचन ने अन्दर भाँकना चाहा तो दरवान ने भगा दिया। कुछ देर चहल-

कदमी करके वह फिर रुक गया, जैसे अन्दर उसकी बहू प्रसव-वेदना से कराह रही हो और वह कुछ न कर सकने के कारण छटपटा रहा हो—

जरा देर बाद ही शिवपूजन बाबू कारखाने से निकले पर बेचन के कुछ पूछने के पहले ही उन्होंने जल्दी-जल्दी दूसरी तरफ कदम बढ़ा दिये। बेचन सोचने लगा, यह तो बड़ी मुश्किल हुई, तो फिर काम कैसे होगा।

इसके बाद टिफिन के समय सब मजदूर बाहर निकल आये और साथ ही साथ छैटनी किये हुए वे चालीस औरत-मर्द भी। उनमें बेचन की माँ भी थी। वे सब छाती पीटते-पीटते कम्पनी के बाप-दादाओं का बखान कर-करके गालियाँ दे रहे थे।

बेचन मन ही मन बोला, “ये बुजदिल काहे गाली बकते हैं ? वह इस-उस को बुलाने लगा पर किसी ने उसकी बात पर कान नहीं दिये।

तब वह कारखाने के सामने माइलपोस्ट की छह इंच जगह पर किसी तरह खड़ा होकर चिल्ला कर बोला, “अरे भागते कहाँ हो तुम लोग ? अँ...हमको पहचानते नहीं हो ?”

पहचानते क्यों नहीं। पर पहचान कर क्या करते ? लोगों की भीड़ निकलती ही रही। बेचन एक बार बोला, “हई लओ।” संकीर्ण जगह होने के कारण पाँव फिसल गये, उसके वाद फिर सीधे खड़े होकर वह चिल्ला उठा, “हम बेचन है। बोलता है, तुम लोग ठहर जाओ। छँटाई जरूर बंद करनी होगी। देखो भाई, तुम लोग मजदूर हो। तुम लोगों की ताकत मैनेजर से ज्यादा है। हाँ, आज की दुनिया में...”

लोगों की भीड़ समुद्र में छोटे छोटे द्वीपों जैसे जहाँ-तहाँ रुक गयी। भीड़ में खड़े बनवारी के हाथ खुजला रहे थे। वह सोच रहा था मुअर के बच्चे के बाल पकड़ कर उतारे बिना काम नहीं चलेगा शायद। खूब किमलिसपना हो रहा है। हरामजादे की जेब में बम तो नहीं है कहीं ?

बेचन वक्तृता करनी छोड़कर बीच में ही बोल पड़ा, “नाथुनी मत जाओ। काहे ? इसलिए ना तुम एक बूढ़े मजदूर हो।”

कामताप्रसाद और नवरिन बाबू दूर खड़े तारीफ कर रहे थे, यह बेचन ने देख लिया। फलस्वरूप उसका गला और भी चढ़ गया। वह एक पाँव पर खड़ा था। पाँव बदल कर बोला, “हम बेचन जेल में गया। काहे ? इसलिए ना कि राशन हड़ताल किया था। तुम लोग यह बात भूल गये ?”

बारिश की एक बौछार के बाद की आग बरसाती हुई धूप में सब नाक-आँख सिकोड़े, दाँत-जीभ निकाले जहाँ के तहाँ रुक गये। सबने घेर लिया उसको। उसे पसीना आ रहा था, बदन चिपचिपा रहा था।

पर सब कुछ भूल कर वह बोलता ही जा रहा, “उस घड़ी की बात याद करो। छंटाई-नोटिस को आफिस की टेबिल पर जमा पर दो। काहे ? इसलिए कि मजदूर, तू अगर खाना बिना मर जायेगा तो जमाना कौन बदलेगा ?”

एक समर्थनसूचक ध्वनि उठी। बेचन के पसीना पोंछकर फिर बोलने का उपक्रम करते ही क्या तो हुआ कि सबने एक दवा आर्त्तनाद ‘हई लओ’ सुना और साथ ही साथ कटे पेड़ की तरह बेचन को उस माइलस्टोन पर से गिरते देखा।

चारों ओर कोलाहल मच गया, “खून हो गया।” बहुतेरे भागने लगे और कोई-कोई दिशाभ्रम होने के कारण इधर-उधर चक्कर काटने लगे।

लेकिन रामदेई की दहाड़ ने एक स्तब्धता ला दी। बूढ़ी रामदेई ने भागते हुए आकर बेचन का सिर गोद में ले लिया। बेचन को इस वक्त होश नहीं था, वह झोंधा पड़ा था। सिर फटने से खून बह रहा था। रामदेई का भुर्रियाँ पड़ा मुँह सिकुड़कर छोटा हो गया और आँसुओं से आँखों के आगे झँधेरा छा गया। बोली, “ये तू कैसा बुजदिल किमलिस बन के आया, आँ ? जेहेल कम्पनी तोका क्या बना दिया ?”

कामताप्रसाद बोले, “जो भी हुआ, अब अस्पताल ले जाना पड़ेगा।”

बनवारी अवाक होकर वेवकूफों की तरह खड़ा अपनी बहू व लड़के का दृश्य देख रहा था। रामदेई उस पर भुँभला उठी, “अरे ए बुजदिल बुड्ढा, तू खड़ा हो के क्या देखता है, बेटा को उठा न।”

किसको ? बेचन को ? जैसे यह अकल्पनीय बात उसने पहले कभी न सुनी हो, यहाँ तक कि शर्म आने लगी उसे। तब भी दोनों हाथों में उठा लिया बेचन को उसने। इसके बाद अस्पताल से सिर में टाँके लगवाकर, बेचन को लेकर वे बस्ती में आये। इनके साथ-साथ एक भीड़ चली आयी। उनमें से कोई भी कारखाना नहीं गया उस दिन।

कालिकाप्रसाद ने देखा कि इतने से भी कुछ नहीं हुआ। तब बनवारी को बुलाकर उस पर झल्लाया, “क्या तुम भी किमलिस बन गया ?”

बनवारी बोला, “अरे राम राम।”

कालिकाप्रसाद बोला, “राम राम क्या ? इसको काहे ले आया ?”

जरा अप्रतिभ होकर सिर खुजाते-खुजाते दवे गले से बनवारी ने कह ही डाला, “बाबू साहब जो कुछ भी हो, हम आखिर तो किमलिस का बाप ही है.....”

गुस्से से कोई बात ही नहीं निकली कालिकाप्रसाद के मुँह से। बूढ़े के मन में भी यही था।

ऐसे तो कहानी, यहीं खतम हो जाती है पर तब भी नियम भंग करके दो लाइन और लिखता हूँ।

रात कुछ-कुछ हो गयी थी, कुछ बौछारें पड़ने के बाद आसमान साफ हो गया था। निर्मल ज्योत्स्ना से चारों दिशाएं आलोकित हो रही थीं। वर्षा की गंगा ज्वार के तीव्र स्रोत से उत्तर की ओर बह रही थी। ऐसी लग रही थी जैसे रुपहली चादर हो।

बस्ती में उस वक्त भी काफी लोग इधर-उधर बैठे थे, खबर मिली थी कि कम्पनी ने छंटाई बंद कर दी है। कुछ क्षण पहले ही वेचन को होश आया था। उसके पास ही अगल-बगल रामदेई और बनवारी बैठे थे। जमीन पर छोटे-छोटे लड़के-बच्चे सो रहे थे। थोड़ी दूर पर आँखों में आँसू भरे चुपचाप भुनिया बैठी थी। पिंगलवर्ण वालों के खुल गये जूड़े और मैली गर्दन पर चाँद की आभा आकर पड़ रही थी। रामदेई की आँखों से आँसू बह रहे थे। वह फुसफुसा कर बोली, “तू कितना बड़ा किमलिस बन गया रे, तू चला जाने से किसका जायेगा? ये रामदेई का कि नहीं?”

बनवारी कुछ कहने जा रहा था उसको। रुक-रुककर बोला, “हमको तुम्हारा साथ जोड़ लेओ। उसको क्या बोलता, हाँ, हम तो किमलिस का बाप बन गया। अरे राम राम।” गले का स्वर जैसे किसी अतल गहराई में डूब गया।

वेचन ने कुछ कहना चाहा पर कह नहीं पाया। उसके गले में जैसे कुछ अटक गया और आँखें भीग गयीं। यह क्या मामला था, ठीक समझ पाने के पहले ही वह बोल पड़ा, “अभी कहाँ बन चुका, कोई रोज बन जायेगा। कहकर इसने देखा कि भुनिया फफक-फफक कर रो रही है और वेचन की छाती के पास उसका हाथ आ पड़ा है। वेचन को यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि भुनिया के मैले शरीर पर, मुँह पर जाने क्या चूने की तरह पुता हुआ था। ओ.....स्तो की शायद पूरी शीशी पोत ली है और उसी की खुशबू उड़ रही है। वेचन के मुँह से और कोई बात नहीं निकली।

काफी देर बाद वह बोला, “देखो आज-कल की दुनिया में एक मजदूर औरत के रोने से—”

बनवारी बीच में ही बोल पड़ा, “बस करो, बीमार के टाइम में वह सब बात नहीं करेगा, बोल देता है।” बाधा पड़ने पर वेचन बोला, “हई लग्यो।”

यह शब्द सुनकर भुनिया का रोना दुगुना हो गया, क्योंकि अब उसे कोई संदेह नहीं रहा था। चकित ज्योत्स्ना रात माँ की तरह जाने कैसे विषण्ण नेत्रों से इन सब की ओर देख रही थी।



मानशुल्का

सुबोध घोष

साहित्य के
 नियमों का सम्पूर्ण
 रूप से पालन करते हुए
 उसी के माध्यम से अपने
 भावों को प्रकट करने में और उन भावों को
 सम्पूर्णता तक पहुँचाने की कठिन साधना में जिनकी
 असाधारण सफलता आज के तरुण लेखकों के लिए एक
 ज्वलंत उदाहरण है, उनमें सुबोध घोष का नाम सर्व प्रथम आता
 है। कहानी के दृढ़विन्यास में, उसे सुन्दर आकार देने में आप असाधारण
 रूप से दक्ष हैं। प्राचीन परम्परा के प्रति आप की श्रद्धा अगाध है, लेकिन वर्तमान
 के प्रति भी आपकी सहानुभूति कम नहीं है। यही कारण है कि आपके
 साहित्य में उस श्रद्धा व सहानुभूति का अद्भुत समन्वय मिलता है।
 आपका जन्म हजारी बाग में सन् १९१० में
 हुआ था। वर्तमान-काल में आप आनन्द बाजार
 पत्रिका के सहसम्पादक के पद पर नियुक्त हैं।
 त्रियामा, एकटि नमस्कार, तिलांजलि,
 शतकिया, नागलता, भारत-प्रेम
 कथा आदि आपकी अन्य-
 तम रचनाएँ हैं।

टैफिक का
 बड़ा साहब बीच-
 बीच में अपने
 शिकार किये हुए
 बाघ के शव को
 स्टेशन के मुसा-
 फिर खाने में
 रख दिया करता
 था उस दिन उसे
 देखने के लिए
 सुबह से शाम
 तक वहाँ दर्शकों
 की भीड़ लगी
 रहती । आज
 भी भीड़ लगी
 हुई थी — बहुत
 कुछ वैसी ही
 भीड़ । लोग
 भागे आ रहे थे,
 एक गोली से
 मारे गये बाघ
 को देखने का
 असीम कौतूहल
 मन में लिये ।
 स्कूल के विद्यार्थी
 जल्दी - जल्दी

मौन प्रेल्फा



साइकिल चलाते हुए आते और जोर से ब्रेक लगाकर सकते । साइकिल को झटपट
 रेलिंग पर ठेल कर भीड़ में किसी तरह सिर घुसा देते । जादूवाले की डुगडुगी सुनते
 हीं मुहल्ले के बच्चे जिस तरह एक दुर्दान्त प्रेरणा से चंचल हो उठते हैं उसी प्रकार
 बराचक स्टेशन की तरफ बच्चे, बूढ़े, जवान सभी दौड़े आ रहे थे । सब नहीं था
 किसी को भी ।

कई कुली भी वजन कांटे पर बैठ वहाँ का दृश्य देख रहे थे । अप-डाउन दोनों
 ट्रेनों आकर चली गयीं लेकिन उन्होंने उधर भ्रू-क्षेप तक नहीं किया । एक अपार्थिव

आनन्द की पुलक में पेट की ताड़ना भी भूल गये थे वे लोग ।

दर्शकों की दृष्टि जैसे लालायित हो उठी थी । भीड़ के बीच में तीन कॉन्स्टेबल बैठे थे, जो बीच-बीच में जनता के उपद्रव से तंग आकर घुड़की दे दिया करते थे । उनके हाव-भावों पर सफलता के चिन्ह उभर आये थे, मानों एक बहुत बड़ी घटना की लगाम थाम रखी हो उन्होंने ।

कॉन्स्टेबलों के पास ही एक लड़की बैठी थी । कौन जात थी यह तो ठीक समझ में नहीं आ रहा था, लगता था किमी जंगली जात की थी । कोई बीसेक साल की होगी । एक नई, मोटी धोती थी वदन पर जो थाने के दरोगा ने दी थी; क्योंकि इसके कपड़े दो दिन पहले एक कलंकित कहानी की साक्ष्य-वस्तुएं बन कर सदर अस्पताल की लैबोरेटरी में चले गये थे । आज पुलिस की हिफाजत में उसका शरीर जा रहा था सदर को ।

जनता आंखें भर भर कर देख रही थी—यही है वह लड़की, जलापुर की उस दुर्घटना की नायिका ! मनुष्य की शारीरिक भूख की वह हिंस्र कहानी आज तीन दिनों से सुनते सुनते गांवों के लोग सिहर उठे थे । और अब कुछ ही दिनों बाद सेशन कोर्ट में एक अत्यन्त विचित्र लज्जारसानुर मामले की परियादिनी बनने वाली थी वह लड़की ।

लड़की का नाम आगो था । साहा बाबुओं के नये मकान का तालाब खोदने जो औरतों-मर्दों का दल आया था, आगो उन्हीं के साथ आयी थी और काम भी अच्छी तरह कर रही थी । लेकिन अचानक दो दिन के लिए गायब हो गई थी कहीं । उसके बाद उस दिन स्वयं ही थाने में उपस्थित होकर उसने रिपोर्ट लिखायी । तीन पान वाले गिरफ्तार हुए, आगो ने उनकी शिनाख्त की थी । उसी विचित्र, वीभत्स घटना की नायिका वहाँ सशरीर उपस्थित थी । लड़की को अच्छी तरह देखने के लिए भीड़ में धक्का-मुक्की शुरू हो गयी ।

आगो बिल्कुल शान्त बैठी थी । सहज भाव से चारों तरफ नजर घुमाकर जनता की गतिविधि देख रही थी । बीच-बीच में मुँह नीचा करके मुस्कुरा भी पड़ती थी । देखने वालों को उसकी यह मुस्कुराहट ही सबसे ज्यादा अजीब लग रही थी । लोगों की दृष्टि के शरजाल में घिरी हुई थी वह, लेकिन तब भी जैसे उसके शरीर पर कुछ भी असर नहीं हो रहा था, ऐसा लग रहा था जैसे एक अपरिचित पृथ्वी के बासर घर (सुहागरात का कमरा) में सबने मिलकर जबर्दस्ती उसका घूँघट उठा दिया हो और वह लज्जा से विव्रत होने के वावजूद भी हँसे बिना न रह पा रही हो । सिर्फ आँख की पुतलियाँ रह-रह कर चमक उठती थीं ।

संध्या होने के कुछ देर पहले से ही भीड़ छँटनी शुरू हो गयी, रात की

आखिरी ट्रेन तक ठहरना पड़ता नहीं तो लोगों को । एक सिपाही ने हलवाई की दुकान से कुछ लाकर आगो के सामने रख दिया, बोला—“खा ले, अगर पेट न भरे तो कह दीजो और ला दूँगा । आज की रात भर बाहर मत जइयो वावा, कहीं हमें नौकरी से भी हाथ न धोने पड़ें ।”

आगो का खाना खतम हुआ । अब भीड़ खतम हो गयी थी । तीनों सिपाही कम्बल बिछा कर लेट गये ।

आगो एक बेचैनी-सी महमूस कर रही थी और एक लज्जा, कातरता व वेदना-भरी दृष्टि से बार-बार सिपाहियों की तरफ देख रही थी । सिपाही समझ तो गये थे पर उतनी छूट देने लायक उदारता दिखाने के लिए उनमें से कोई भी राजी नहीं था ।

एक बूढ़ा-सा सिपाही बोला—“तुम्हें बाहर जाना हो तो वहाँ हमारे सामने ही जाओ, दूर नहीं जा पाओगी ।”

आगो की आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगीं । चिल्ला कर बोली—“मुझे गाय बेल समझ लिया है क्या ?”

तीनों सिपाहियों ने उलटकर डाँट बतायी—“अरे बाहरी हमारी पर्दानशीन औरत ! शर्म तो देखो जरा । जैसा हुकुम दिया है, चुप-चाप कर ले, नहीं तो बैठी रह वहीं, उठी तो अच्छा नहीं होगा ।”

आगो चुपचाप बैठी रही ।

कम्बल पर लेटे सिपाहियों ने आगो से प्रश्न किया—“अच्छा सच-सच बता-इयो, पान वालों ने तुम्हें रुपये दिये थे या ऐसे ही.....।”

आगो ने सिर हिलाकर बताया—रुपये नहीं दिये ।

—“तूने माँगे थे ?”

—“हाँ ।”

—“थाने में यह बात कही थी ?”

—“हाँ ।”

तीनों सिपाही एक साथ हँस उठे । बोले—“तब तो चल चुका यह केस ! उल्टे कहीं तुम्हें ही कैद न हो जाय ।”

बूढ़ा सिपाही अनमना-सा हो गया, कुछ देर तक न जाने क्या सोचता रहा, फिर बोला—“सचमुच, इस जवर्दस्ती से बड़ा पाप कुछ नहीं होता । बहुत से बदमाश-फुसला-फुसलू कर जो कुछ करते हैं वह तो समझा भी जा सकता है, पर यह कैसा जुल्म है ? गुंडों की तादाद बहुत बढ़ गयी है आजकल, थाना भी कुछ नहीं कहता, नहीं तो.....”

बूढ़े सिपाही को अचानक न जाने क्यों गुस्सा आ गया, आगो की तरफ देख कर मुँह बिचकाकर बोला — “तुम्हारी तकदीर के बारह बज गये हैं अब । अभी क्या हुआ है, आगे देखना, अभी और कितनी बेइज्जती होगी । डाक्टरों रे, सवाल रे, जिरह रे ! क्यों आयी थी तू इस कच्ची उमर में यहाँ परदेश में मजदूरी करने ?”

कोई जवाब नहीं दिया आगो ने । मुसाफिरखाने की दीवाल पर टँगी किरा-सिन के धुएँ में धिरी बत्ती की ओर देखती हुई चुप बैठी रही, सफेद मोटे कपड़े में लिपटी एक शान्त, सुस्थिर देह ।

*

रात के दस बजे थे । बराचक स्टेशन क मुसाफिरखाने में कानून के तीनों सतर्क पहरेदार खरट्टे भर रहे थे और इधर पैसंजर ट्रेन ने उस वक्त आसनसोल पहुँच कर फिर से कलकत्ते की तरफ अंधकार में दौड़ना शुरू कर दिया था । एक थर्डक्लास के डिब्बे में बेंच के नीचे डरी-सहमी मुर्गी की तरह सिकुड़ी-सिकुड़ी पड़ी थी आगो । चलती ट्रेन से निकलते शब्द ऐसे लग रहे थे जैसे किसी के आभरण एक ताल और लय के साथ सुछंद में बज रहे हों और उसी की ताल के साथ ताल मिलाकर आगो का हृदयपिंड आसन्नमुक्ति की आशा में नाच रहा हो ।

एक सज्जन संतरोँ से भरी दस-बारह टोकियाँ लेकर डिब्बे में चढ़े । बेंच के नीचे झाँका, वहाँ किसी को पड़े देखा तो गुस्से से धमकाते हुए बोले — “ए चोट्टे, निकल जल्दी, नहीं तो अभी चेकर को बुलाकर पकड़वा दूँगा ।”

जैसे ही इन सज्जन ने आदमी को बाहर निकालने के लिए हाथ बढ़ाया कि डिब्बे में बैठे दूसरे यात्री हँसते हुए चिल्ला उठे — “अरे-रे-रे क्या कर रहे हैं ?”

सज्जन पुरुष — “क्यों क्या मामला है ?”

यात्री — “औरत पड़ी है, उसके पास टिकट नहीं है ।”

सज्जन पुरुष — “हे भगवान ! ऐसी भी औरतें होती हैं । इस तरह क्या लाज-शरम सब घोलकर पी जायी जाती है कहीं ।”

सज्जन पुरुष धिक्कारते हुए हाथ खींचकर खड़े हो गये ।

सारी रात ट्रेन चलती रही, आसनसोल से कलकत्ते की तरफ । बेंच पर बैठे नाना जाति के लोगों के दस जोड़े पैर साँपों की तरह नीचे झूलते रहे । जहाँ तक

सम्भव था आगो अपने शरीर को उस सपिल संपर्श से बचाए रखने की भरपूर चेष्टा कर रही थी, लेकिन व्यर्थ हो रही थी उसकी यह चेष्टा । बूट पहने, खड़ाऊँ पहने, चप्पल पहने पाँव सारी रात तरह-तरह के कौशल से क्षुधार्त नाखूनों की तरह बेंच के नीचे ग्रंथकार में माँस टटोलते रहे । कभी बेपरवाही से उसके शरीर का कोई हिस्सा जकड़ लेते, तो कभी पीस देते । कोई श्मशान में पड़ा शव तो था नहीं । एक चोर लड़की का जीता-जागता शरीर था, उस शरीर का एक अद्भुत स्वाद था, जरा आघात व यन्त्रणा पहुँचाए बिना वह स्वाद पूरा कैसे मिलता भला ।

एक रेलवे मिस्री बगल की बेंच पर बैठा था । अचानक रसिकता करने की सूझी उसे और वह उछल पड़ा, बेंच के नीचे सिर झुकाकर चिल्लाने लगा—

“बिच्छू ! बिच्छू ! इतना बड़ा बिच्छू ! निकल आगो जल्दी ।”

डिब्बे में बैठे यात्री हो-हो करके हँसने लगे ।

सुबह हुई । हावड़ा स्टेशन के सात नम्बर प्लेटफार्म के गेट से यात्री अपने पोटले-पोटली लिये टिकट दिखाकर बाहर निकलने लगे । उसी जन-प्रवाह के साथ आगो भी आगे बढ़ने लगी, पर रूकावट पड़ी फाटक पर । टिकट दिखाने के लिए टिकट-चेकर उत्सुक नेत्रों से उसके मुँह की तरफ देखने लगा । टूटी-फूटी हिन्दी में आगो ने जो कुछ कहा उसका कुछ भी मतलब उसकी समझ में नहीं आया ।

खड़ी रहो ! टिकट चेकर के हुकुम से आगो एक तरफ हटकर खड़ी हो गयी । चेकर महाशय आगो के शरीर से करीब-करीब सटे हुए बाकी यात्रियों के टिकट चेक करते-करते भीड़ को सम्भालने लगे ।

भीड़ खत्म हो जाने पर फिर आगो की तरफ मुखातिब हुए वह । दाँतों से ओठ के कोने की मूँछ दबाकर दो बार हँसे । इधर-उधर देखा और फिर आगो के भीरु शरीर से जरा और सटकर खड़े हो गये । अचानक चौंक कर पीछे हट गयी आगो ।

चेकर के लोभी हाथ ने आगो के उद्विग्न शरीर पर एक आघात किया था । टिकट चेक करने वाले यन्त्र से आगो की पीठ जरा दबाकर व्यस्तता से चेकर बोला—“जल्दी भाग यहाँ से । किसी दूसरे ने देख लिया तो और भी बहुत कुछ वसूल करके छोड़ेगा ।”

*

आगो जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई वहाँ से चली गयी । आश्चर्य हो रहा था उसे यह देखकर कि सिर्फ पानवाले ही नहीं, सारी दुनिया के लोग जैसे एक जुलम

के रोमांच में मतिभ्रष्ट हो गये थे । सिर्फ जोर और जबर्दस्ती । लेकिन माँगने से तो बहुत कुछ दिया जा सकता है, अच्छी तरह कोई कहे तो बहुत बातें सुनी जा सकती हैं, अनुरोध करने पर बहुत कुछ विनिमय किया जा सकता है । किन्तु सिर्फ जोर और जबर्दस्ती ! यह कहाँ की रीत है ?

*

कलकत्ता शहर ! विस्मय से फैली दोनों आँखों से देखती फिरती आगो । सड़क के बाद सड़क, मानों जो सिर्फ चलने के लिए हों, जिनका कोई गन्तव्य न हो । तब भी उस जनपद का रूप उसे अत्यन्त विचित्र लग रहा था । उसके वर्ण, शब्द और गति का रूप आगो के शरीर व मन को एक नये परिचय-मुख के आवेश से अभिभूत कर रहा था ! बराचक स्टेशन की धुद्र जनता की तरह वह शहर सिर्फ आगो के शरीर की तरफ लोलुप दृष्टि से ताकता नहीं रहता । एक विराट ऐश्वर्य के मेले में जैसे सबको आश्रय मिल गया हो । सभी अगल-बगल चलते थे मगर कोई किसी का नहीं था । साहा बाबुओं का तालाब, बराचक स्टेशन, रात की ट्रेन, हावड़ा का सात नम्बर वाला गेट—एक-एक करके सब घटनाएँ याद आने लगीं उसे ।

वहाँ जैसे पान वालों का गमछे से नारी-देह के मुँह-हाथ-पाँव बाँधने का एक आयोजन हमेशा मौके की ताक में रहता है । पर लगता है, कलकत्ता शहर वैसा नहीं है । आगो ने संतोष की साँस ली । बलात्कृत नारी के गुस्से की ज्वाला कुछ क्षणों के लिए कम हो गयी ।

*

पैदल चलती रही आगो । सुबह से दोपहर हो गयी थी । सड़क के किनारे एक नल से पानी गिर रहा था, उसके नीचे एक भैंस आराम से पड़ी थी । बहुत प्यास लगी थी आगो को । पानी पीने के लिए जैसे ही वह आगे बढ़ी कि भैंस ने सींग हिलाये । पर आगो ने उसकी परवाह नहीं की, भैंस की बगल में उकड़ू बैठ कर निश्चिन्त मन अंजलि भर-भर कर पानी पीने लगी ।

सींग हिलाना बंद करके भैंस निर्वोध दृष्टि से आगो के पानी पीने का दृश्य देखती रही ।

पानी पी चुकी थी आगो, लेकिन तब भी उस जगह से उठकर जाने का जैसे

मन नहीं चाह रहा था उसका। इसी बीच भैंस ने अपना कीचड़ से सना गला बढ़ाकर आगो की पीठ पर रख दिया था। यह स्पर्श आगो को एक प्रिय सुख के स्पर्श की तरह लगा। उस पानी में भोगी भैंस के प्यार में उसे कोई डर दिखाई नहीं दिया। और वह जैसे और भी निश्चिन्त होकर कल्पना में खोयी बैठी रही, उठकर जाने की इच्छा नहीं हुई।

अचानक गमछा पहने एक आदमी पास आकर खड़ा हो गया, शायद भैंस का मालिक था। पहले तो कुछ देर वह आगो के मुँह की तरफ गम्भीरता से देखता रहा, फिर उसकी बगल में बैठकर कीचड़ साफ करने के लिए भैंस के गले पर पानी डालने लगा।

आदमी को देख लेने पर भी वैसी ही अन्यमनस्क बैठी थी आगो; पर उस अन्यमनस्कता का आनन्द और अधिक देर टिका नहीं रहा। अचानक चौंक उठी वह, फिर आश्चर्य हुआ उसे; गमछा पहने आदमी एक हाथ से बाघ के पंजे की तरह एक अजीब लोलुपता से लुब्ध होकर उसका घुटना पकड़ रहा था।

गमछा पहने बाघ का हाथ झटककर उठ खड़ी हुई आगो और आगे चल दो, पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।

बहुत देर से बहुत-सी सड़कों पर अलग-अलग दिशा में चल चुकी थी वह सुबह से अब तक। इतनी देर बाद अब उसे ऐसा लगा कि जादूगर के बनाये इस शहर में रास्ते तो बहुत हैं, पर उनका अंत नहीं है। सिर्फ चला जा सकता है, रुका नहीं जा सकता। सिर्फ क्लान्त हुआ जा सकता है, पर उस क्लान्ति को दूर करने के लिए किसी शाल या महुआ-वृक्ष की छाया नहीं मिल सकती।

धूप में चलते-चलते काफी देर बाद खड़े रहने लायक एक जगह दिखाई दी आगो को। जगह पर छाया थी। आगे बढ़ी वह।

अचानक एक आदमी पर नजर पड़ी उसकी, जो थोड़ी दूर पर खड़ा उसी की तरफ ताक रहा था। रुग्ण बगुले की तरह पतला चेहरा, सिर पर लम्बे-लम्बे बाल, हाथ में एक छड़ी। आगो के साथ आँखें मिलते ही आदमी हँसा और काले-काले दाँत व पान खाने से लाल हो गयी जीभ दिखाई दे गयी। कैसी तो घिनावनी-सी लगी आगो को।

इतने सुन्दर शहर में यह भेड़िया कहाँ से आ गया ? गत तीन काल-रातों का आतंक फिर आगो पर सवार हो गया। फिर दूसरे रास्ते पर घूमकर जाना पड़ा उसे।

चलते-चलते बार-बार मुड़कर देखती आगो और आदमी को छाया की तरह पीछे लगे पाती। आँखें मिलते ही उसके काले दाँत एक अद्भुत हँसी से चमक उठते।

कभी-कभी आदमी अदृश्य हो जाता और आगो के मन से आशंका का भार उतर जाता ।

कारखाने जैसे एक मकान के सामने आकर खड़ी हुई आगो, देखते-देखते उसके चारों तरफ एक भीड़ इकट्ठी हो गयी ।

भीड़ में से नाना मुखों से नाना प्रकार के प्रश्न सुनायी पड़ने लगे—‘घर कहाँ है ? कहाँ जा रही हो ? क्या काम करती हो ?’ आदि । पर किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया आगो ने । भीड़ ने प्रेरित होकर और भी घनिष्टता से घेर लिया उसे ।

उत्तर देने की चेष्टा की आगो ने पर क्या कहे, सोच न पायी; क्योंकि वह स्वयं भी तो नहीं जानती थी कि वह कहाँ जा रही है । बस इतना याद था कि वह अदालत और डाक्टरी जाँच के डर से भाग आयी है और अभी भी भाग रही है । जबर्दस्ती मत करो, दो बातें पूछ लो, जरा सोच लेने दो, राजी होती हूँ कि नहीं जरा प्रतीक्षा करके देख लो—हाथ जोड़कर, जमीन पर सिर रगड़कर, आँखों में आँसू भर कर और अभिशाप का डर दिखाकर बार-बार अनुरोध करने पर भी जिस पृथ्वी पर कोई फल नहीं होता उसी पृथ्वी से किसी तरह स्वयं को छुड़ाकर भाग आयी है आगो । लेकिन तब भी पीछे से अभी तक शिकारियों का एक भुंड उसके जीते-जागते शरीर को पकड़ने के लिए भागा चला आ रहा है ।

भीड़ में ही खड़ा हुआ एक आदमी अचानक पीछे से उसका आँचल खींचकर खिसक गया । मुंह फिराकर देखने की कोशिश नहीं की आगो ने, सिर्फ दोनों हाथों से गिरते हुए पल्ले को संभाल लिया और सावधान हो गयी । वह समझ गयी थी कि उसकी ढीली हो गयी धोती और विवस्त्र शरीर के साथ बिल्कुल घनिष्ठ हो जाने के लिए भीड़ जैसे और भी आगे सरकी आ रही थी ।

सामने की तरफ से दो आदमियों के आगे आकर आगो के शरीर से सटकर खड़े होने की चेष्टा करते ही बगल से हट गयी वह और जल्दी से भीड़ को चीरती हुई बाहर निकल आयी । इसी बीच उसने अनुभव किया कि अंदर से एक लंबा उसकी कमर में जोर से चिकोटी काटकर अदृश्य हो गया ।

द्रुत कदमों से आगे बढ़ी आगो । कानों में आवाज आयी , पीछे भीड़ में कोई कह रहा था—“पागल है, बिल्कुल पागल ।” दूसरा बोला—“बदमाश औरत है ।” इसके बाद एक और आदमी ने न जाने क्या कहा, आगो सुन नहीं पायी, तब तक वह भीड़ से काफी दूर आ गयी थी ।

आगो अपने बारे में यह विश्वास करती थी कि वह पागल नहीं, बदमाश

है। वह स्वयं यह बात जानती थी और वे सब लोग भी, जो आगो को जानते थे। उसके गाँव के लोग, पास के गाँवों के लोग, रिश्तेदार सभी जानते थे कि आगो का चरित्र अच्छा नहीं है। मादा जन्तु अपने बारे में जितनी सतर्क रहती है, मनुष्य जाति की औरत होकर भी आगो उतनी सतर्क नहीं थी। जितनी बार भी वह गाँव के बाहर कोयले की खान में काम करने गयी थी, किसी न किसी तरह की घटना में पकड़ी गयी थी। हार कर एक दिन मुखिया ने विरक्त होकर उसे दल से भगा दिया। नये दल में भर्ती हुई आगो, लेकिन फिर एक दिन आधी रात को सड़क पर एक रहस्यमय मोटर का हार्न सुनकर झोंपड़ी से निकल गयी वह। जिस वक्त लौटी, सुबह हो गयी थी और आगो के कानों में नकली सोने के फूल थे, बालों में चमेली के तेल की खुशबू थी और आँचल के छोर में बँधे हुए थे दो रुपये।

काफ़ी चल चुकी थी अब तक आगो, जरा सुस्ता लेने के लिए एक लैम्प-पोस्ट के पास आकर खड़ी हो गयी। सड़क पर आदमियों की भीड़ स्रोत की तरह उमड़ती चली जा रही थी, देखकर दम बंद होने लगा उसका। इतने आदमी भी हैं पृथ्वी पर और इतने आदमियों के रहने के लिए जगह भी है !

अनमनी हो गयी आगो। अचानक मन पीछे भागकर जैसे भेलूडिहि के पास रोड़ी बिछी नयी सड़क के किनारे खजूर के पत्तों से बने एक कुली-शिविर के अंदर आश्रय ढूँढ़ने लगा। बहुत बार याद आयी है, बार-बार याद आयी है और आज तो न जाने क्यों वह भेलूडिहि वाली बात बहुत ही याद आ रही थी उसे। एक मिट्टी खोदने वाले दल के साथ मजदूरी करने भेलूडिहि की नयी सड़क पर गयी थी वह। सिर्फ़ सात दिन बाद ही जब वह सुबह एक पहाड़ी स्रोत पर पानी लेने गयी थी, राखाल के साथ उसका साक्षात् हुमा था, जिसके उलभे बालों में कंधी खुंसी हुई थी। शाल के पत्ते का दोना बनाकर उसमें पत्रके गूलर लाकर दिये थे उसने आगो को। उसके बाद स्वयं ही उसके हाथ से कलसी लेकर स्रोत से पानी भर लाया था वह और कंधे पर कलसी रखकर आगो के खजूर के पत्तों से बने घर तक पहुँचा गया था।

उसके बाद उसी शाम को जब उस कुली-शिविर पर चाँद अपनी शीतलता उड़ेल रहा था, पास के एक शालवृक्ष की छाया के अंधकार में वंशी बज उठी और घर में बैठी न रह सकी आगो। उस वंशी का आह्वान व्यर्थ नहीं गया।

वंशी के सुर से भी तो बुलाया जा सकता है, जरा मुस्करा कर भी तो अनुरोध किया जा सकता है। चाहे एक दोना गूलर हो या चमेली के तेल की खुशबू हो, दो रुपये हों या नकली सोने के कान के एक जोड़ी फूल हों—जो भी हो, कुछ उप-

हार या मूल्य भी तो दिया जा सकता है। पर चीते, बाघ की तरह पजों में दबोचकर, गमछे से मुँह बाँधकर सब इच्छा-अनिच्छाओं को चुप कर देना, यह कहाँ की रीति है? ऐसी रीति, जो कोई जानवर भी वर्दाश्त नहीं करेगा। आश्चर्य है, इतनी सामान्य-सी बात भी आदमी नहीं समझता। शोभ से सड़क पर चलती जनता की ओर देखने पर आगो को लगा कि इस संसार में शायद ऐसे अनसमझों की संख्या ही अधिक है।

आगे बढ़ी आगो। यद्यपि उसे यह नहीं मालूम था कि वह कहाँ जा रही है, लेकिन तब भी अब वह समझ गयी थी कि उसका मन क्या ढूँढ़ रहा था; पर उस शहर में तो शालवृक्ष था नहीं। वहाँ संध्या हो जाने पर कोई वृक्ष के नीचे बैठकर वंशी बजा सकता है इसमें भी शक था आगो को। यहाँ संध्या के बाद आकाश में चाँद दिखाई देता है कि नहीं, कौन जाने। गलती हो गयी है, भागने लगी तो गलत रास्ते पर चलकर बिल्कुल नये व अजीब एक जंगल में आ पहुँची है वह। लेकिन एक आश्रय चाहिए उसे।

थोड़ी दूर पर घास से ढका एक छोटा मकान दिखाई दिया उसे, जिसमें यहाँ-वहाँ कुछ छिटपुट वृक्ष भी थे। एक पेड़ की छाया में बैठी एक बुढ़िया चूल्हा जला कर टीन के वर्तन में भात राँध रही थी। आगो आगे जाकर बुढ़िया की बगल में बैठ गयी और उबलते भात की भाप की ओर देखने लगी।

बुढ़िया बोली—“तुम यहाँ क्यों आयी हो। ऐसा शरीर रहते तुम्हें किस बात की फिक्र है।”

बुढ़िया की भाषा न समझ पाने पर भी आगो इतना अवश्य समझ गयी कि बुढ़िया उससे खाने के लिए नहीं कह रही है।

उठना पड़ेगा, पर उठने को मन नहीं चाह रहा था। जाना तो था ही पर किस रास्ते से जाये और जाने कहाँ पर पहुँचेगी, कुछ भी समझ नहीं पायी आगो।

नज़र उठाकर चारों ओर देखा उसने और देखते ही चौंक उठी। जरा दूर पर, मैदान में ही एक पेड़ के नीचे वही काले दाँत व लाल जीभवाला आदमी खड़ा-खड़ा आगो की तरफ देखता हुआ हाथ की छड़ी घुमा रहा था।

उठ खड़ी हुई आगो और आँखों के सामने जो गली दिखाई दी उसी में घुस कर जल्दी-जल्दी चलना शुरू कर दिया। काफी दूर चले आने पर मुँह फिरा कर पीछे की तरफ देखा और देख कर निश्चित हुई कि अब कोई काले दाँत व लाल जीभ वाला मुस्कुराता हुआ भेड़िया धावा करने के लिए उसके पीछे भागा नहीं आ रहा था।

एक मकान सामने देखकर अचानक रुक गयी आगो । समझ गयी कि वह भगवान् का घर था, एक मन्दिर । आगो के गाँव से धनवाद जाने के रास्ते में, भील के किनारे भी ठीक उसी तरह का एक मंदिर था, जहाँ शाम को घंटा बजता और साधु लोग दरवाजे पर पड़े रहते थे ।

मंदिर के दरवाजे तक गयी आगो और चुप खड़ी रही । अंदर से मोटे-मोटे तीन आदमी निकले । उनके सिर पर बड़ी-बड़ी चोटियाँ और माथे पर लम्बे-लम्बे तिलक थे । ऐसे आदमी आगो ने पहले भी देखे थे ।

आगो के मुँह की तरफ देखकर एक आदमी ने जोर से निश्वास छोड़ा, एक ने जम्हाई ली और एक उँगलियाँ चटकाने लगा । आगो ने पूछा — “गिरजा जाने का कौन सा रास्ता है ?”

— “गिर्जा ? वयों, कौन जात है तू ?”

— “ईसाई वनूंगी ।”

तीनों जने एक साथ जैसे खाने पड़ने को दौड़े, फिर मजाक करते हुए बोले — “उससे तो अच्छा है कि विलायत चली जा, वहाँ तेरे समुर का लड़का बैठा है । पागल, बदमाश ।”

घुड़की खाकर आगो फिर पीछे हट गयी । सामने नज़र पड़ते ही दिखाई दिया, काने दाँत वाला वही आदमी जरा दूर खड़ा हँस रहा था ।

एक पल की भी देर किये बिना करीब-करीब भागती हुई चली गयी आगो वहाँ से । फिर कहीं नहीं रुकी, मुड़कर एक बार देखा भी नहीं, मानों मरुभूमि में चलते हुए क्लान्त घोड़े की तरह मरती-गिरती भागी जा रही हो वह और अब जब तक औंधे मुँह गिर कर मर नहीं जायगी, रुकेगी नहीं ।

✱

शाम हो गयी । मैदान के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गयी आगो । गत रात से कुछ नहीं खाया था । अवसाद से शरीर पत्थर की तरह चेतनाहीन होता जा रहा था । प्यास से गला सूखकर काँटे लगने लगे थे ।

बहुत घूमी थी वह । एक गिर्जा भी ढूँढ़ लिया था उसने । लेकिन गिर्जे का फाटक इतना बड़ा था कि वहाँ बहुत देर खड़ी रहकर लौट आयी थी वह, अंदर घुसने को हिम्मत नहीं पड़ी ।

वैसाख का सूर्य काफी देर पहले पश्चिम की गोद में चला गया था । गिर्जे का घंटा काफी देर तक बज कर रुक गया था । चौरंगी के दालानों पर पड़ती

हुई किसी बहुत दूर के जलते हुए नक्षत्र की रक्तिम ज्वाला जैसे अब ठंडी होकर बिखर गयी थी। आगो के जीवन में ऐसी संध्या बिल्कुल नयी थी। ढोर चराकर शालबन पार करके घर लौटने वाली थीकी हुई शाम नहीं थी यह। शब्दों के आनन्द से इस शहर के प्राण जैसे दिन के अवशेष पर नये रूप से भूमर गा उठे हों।

पकौड़ियों का खोमचा लगाकर, किरासिन की कुप्पी जलाकर एक आदमी पास ही बैठ गया। आगो ने एक बार उसकी तरफ देखकर मुँह फिरा लिया। पैसे नहीं थे, उस खाने की तरफ देखने से कोई लाभ नहीं था। इसके बाद कब नींद से उसकी आँखें बंद हो गयीं, यह वह स्वयं भी नहीं जान पायी।

भूल टूट गयी आगो की। इतनी रोशनी, इतने सुशब्द, इतनी हँसी खुशी—जैसे एक बहुत बड़ी मशीन चल रही हो। यह भी एक तरह की उल्टी पुरी है—सिर्फ रास्ता ही रास्ता है, आश्रय है ही नहीं। यहाँ कोई दिल देकर दिल नहीं ढूँढ़ता, वंशी के सुर से पास नहीं बुलाता, मन पाने के लिए कीमत अदा नहीं करना चाहता; सिर्फ शरीर के जोर से रास्ता रोकना चाहते हैं सब।

प्रयोजनहीन मिट्टी के ढेले की तरह पड़े रहने से कोई फायदा नहीं है। कल सुबह ही यह शहर छोड़कर चली जायगी वह, वस आज की रात किसी तरह जान बच जाय।

अचानक एक बार आँख खोली आगो ने। देखा, पकौड़ियों का दूकानदार अभी तक कुप्पी जलाए बैठा था और उसके सामने एक आदमी हाथ में दोना लिये बैठे-बैठे पकौड़ियाँ खा रहा था। कौन है वह ? नज़र पड़ने ही चौंक उठी आगो, दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। आदमी के काले दाँत एक आनन्द की हँसी से चमक रहे थे और लाल जीभ उसी की तरफ देखकर काँप रही थी।

आगो की इच्छा हुई कि मैदान के उस किनारे से उठकर उसी क्षण उस कुप्पी के टिमटिमाते प्रकाश के षड्यन्त्र से दूर भाग कर मैदान के अन्दर घने अन्धकार में छुप जाय। सारी रात प्राणपण से जोर लगाकर दोनों हाथों से जमीन को जकड़े आँधी पड़ी रहे ताकि पृथ्वी का कोई मांसभक्षी पुरुषत्व रूपी जानवर उसकी उस नारीदेह का गर्व कठोर आघात से चूर्ण करने की हजार चेष्टाएँ करे, तो भी उसे खींचकर उठाने में समर्थ न हो सके।

चारों तरफ का प्रकाश कब बुझेगा, सियार कितनी देर बाद बोलेंगे ? मैदान के घने अंधकार की ओर देखती हुई आगो सोचने लगी, लगता है आज की रात

यहीं शरीर को छुपा कर रखना पड़ेगा। उस अंधेरे में मैदान की घास में मुँह छुपाकर अपने विश्वास की आवाज तक छुपा लेगी आगो। लाल जीभ और काले दाँतों वाले उस भेड़िए की नज़र बचाकर एक छलाँग में उसे मैदान के अंधकार में छुपना पड़ेगा, जिससे पीछे से धावा करने के लिए फिर कोई रास्ता न मिले उस आदमी को।

आदमी क्या अब भी उसकी ओर देख रहा है ? मुँह फिराकर तिरछी नज़र से देखते ही आगो सिहर उठी, हाथ दिया ! मर गयी मैं तो अब, आदमी तो बिल्कुल बगल में ही खड़ा है। लगता है उसके पाँव मनुष्यभक्षी बाघ के पंजों की तरह नरम हैं कि चलने से आवाज ही नहीं होती। बिल्कुल बिना आवाज किये वह आदमी कब और कैसे पास चला आया, कुछ भी नहीं समझ पायी आगो।

डर लगने लगा उसे और दिल धक्-धक् करने लगा। मुँह फिराकर बैठी-बैठी दिल की आतंकित श्वासों को सँभालने की कोशिश करने लगी आगो। पर ज्यादा देर नहीं बैठी रही। अचानक एक आक्रान्त जंगली जानवर की तरह एक हिंस्र आक्रोश आगो के मन की सारी भीरुता को नष्ट करके जाग्रत हो उठा। उसके शरीर पर हाथ लगाने से पहले ही आदमी का गला दबाकर लाल जीभ को खींच लेने के लिए बदन भाड़कर उठ खड़ी हुई आगो।

पर जरा अप्रस्तुत एवं विस्मित होकर आदमी की तरफ देखती रह गयी वह। एक दोने में पकौड़ियाँ लिये खड़ा था आदमी। आगो की तरफ दोना बढ़ाता हुआ बोला—“उठ क्यों गयीं ? बैठी, यह खा लो और फिर सड़क-किनारे के उस नल पर जाकर पानी पी आओ।”

जवाब नहीं दिया आगो ने कुछ भी। हाथ बढ़ाकर दोना भी नहीं ले सकी, सिर्फ अपलक नेत्रों से आदमी की तरफ देखती रही।

दोना जमीन पर रखकर आदमी बोला—“शर्म मत करो, डरने की भी कोई बात नहीं है। जल्दी से खा लो। मैं देख रहा हूँ आज सुबह से तुमने कुछ नहीं खाया है।”

अप्रस्तुत हो गयी थी आगो, अब विचलित भी हो गयी। सच तो है आदमी भेड़िया भी नहीं है और जलापुर का पान वाला भी नहीं। पास आकर भी शान्त खड़ा है। शरीर की तरफ हाथ बढ़ाना तो दूर रहा अभी तक लोभ की एक बात भी मुँह से नहीं निकली है आदमी के। मैदान के एक विभूत कोने में जबर्दस्ती करने का सुयोग मिलने पर भी आदमी एक दोना उपहार उसके पाँवों के पास रखकर मंदिर में खड़े भक्त की तरह खड़ा है।

भूल हुई है मुझसे । अपनी भूल समझ गयी वह और मन ही मन जरा अनु-
तप्त हो गयी । आज सुबह से उस अपरिचित शहर में जो आदरमय आह्वान उसके
पीछे-पीछे घूम रहा था उसी पर मन की भूल से कितना बड़ा सन्देह कर बैठी
थी वह ।

आदमी के मुँह पर दूर जलती कुष्पी की कम्पित शिखा से जरा-जरा प्रकाश
आकर पड़ रहा था, उसी प्रकाश में दिखाई दिया, वह शान्त भाव से खड़ा हँस रहा
था । आँखें हटायी नहीं आगे ने वरन् आग्रह-सहित देखती रही, आदमी का मुँह
कैसा खूबसूरत दिखाई दे रहा था ।

क्या तो कहने जा रही थी आगे कि बीच में रोकते हुए आदमी बोला—
“पहले तुम खा लो, बातें पीछे होंगी ।”

अब एक क्षण की भी देर किये बिना आगे घास पर बैठ गयी और दोना हाथ
में उठाकर निःसंकोच व लज्जाहीन भाव से खाना शुरू कर दिया ।

खाते-खाते आगे के मुँह पर हँसी फूट उठी । अब इतनी देर बाद जैसे उसकी
आत्मा धन्य हुई थी जाकर । सारे दिन की भीड़ में से जैसे अब जाकर एक आदमी
उसे मूल्य देने के लिए, उपहार देकर अपना बनाने के लिए, मान देकर मन जीतने
के लिए निकल कर आया था ।

डरना तो दूर रहा अब, जरा व्यस्तता से खाने लगी आगे क्योंकि आदमी
के हाथ में हाथ देने के लिए उसका मन जैसे आकुल हो उठा था । कैसा आश्चर्य
था !

आगे का खाना खतम हुआ । आदमी बोला—“तुम यहीं ठहरो, मैं पानी
ले आऊँ ।”

पकौड़ी वाले की दुकान से दो कुल्हड़ लेकर सड़क किनारे के नल की तरफ
पानी लेने चला गया आदमी । आगे बैठी-बैठी देखती रही । जान नहीं, पहचान
नहीं और एक आदमी उसकी प्यास बुझाने के लिए भाग-दौड़ कर रहा है; यह
देखते-देखते ही जैसे आगे की प्यास बुझती जा रही थी । ऐसे मनुष्य के हाथ में
निश्चित होकर स्वयं को छोड़ देने में आगे को कोई अपात्ति नहीं थी ।

पानी लेकर आदमी लौट आया । आगे ने अपने दोनों ओठों को कुंठाहीन
इच्छा से सुस्मित करते हुए आदमी के मुँह की तरफ देखा और हाथ बढ़ा कर पानी
के कुल्हड़ ले लिये ।

दो घूंट पानी पीकर मिट्टी के दोनों कुल्हड़ अँधेरे में दूर, जोर से फेंक दिये,
आँचल से रगड़कर मुँह पोंछ लिया । भवें टेढ़ी करके देखा, जरा मुस्कुरायी और
एक अँगड़ाई लेकर क्लांत देह के अलस संयम को निर्लज्जता से तोड़ती हुई बोली—

“अब कहो, क्या कह रहे थे ?”

आदमी हँसा—“तुम कहो ।”

आगो—“तुम जो कहोगे वही होगा ।”

आदमी जैसे कृतार्थ हो गया हो; बोला—“मेरे साथ चलो ।”

दोनों एक साथ उठ खड़े हुए और मैदान का निभृत कोना छोड़ कर चलते-चलते रास्ते के किनारे आ पहुँचे ।

चलती हुई वसों एक के बाद एक आकर रुकतीं और चली जातीं । आदमी उत्सुकता से हर बस का नम्बर पढ़ता और फिर चुपचाप खड़ा रहता, जैसे उसे कोई मनपसन्द बस मिल ही नहीं रही थी ।

एक नीले रंग की बस आकर रुकी, बहुत दूर जाने वाली बस, कलकत्ता शहर की सीमा छोड़कर एक जूट मिल के इलाके में जाकर रुकती थी । आगो को लेकर आदमी बस की तरफ बढ़ा पर दूसरे ही क्षण रुक गया और थोड़ी दूर पर एक लैम्पपोस्ट की तरफ सतर्क दृष्टि से देखने लगा ।

नीले रंग की बस चली गयी । आदमी वेचैन हो उठा । आगो के मुँह की तरफ देखकर बोला—“मेरे साथ तुम्हारा जाना नहीं हो सकता ।”

आगो ने इसमें अपना अपमान महसूस किया, जरा विरक्त होकर बोली—
“क्यों ?”

आदमी परेशान स्वर में बोला—“पुलिस मेरा पीछा कर रही है, तुम साथ रहोगी तो मैं भाग नहीं पाऊँगा ।”

आगो चौंक उठी; लेकिन तुरन्त ही गम्भीर बनकर, दूसरी ओर मुँह फिराकर बोली—“भाग जाओ, जल्दी भाग जाओ ।”

आदमी विपण्णता से हँसा—“तुम्हें कोई अमुविधा तो नहीं होगी ?”

आगो तीखे स्वर में बोली—“नहीं कोई अमुविधा नहीं होगी ।”

कुछ क्षण जाने क्या तो सोचा आदमी ने; उसके बाद पूछा—“तुम्हारे पास रहने के लिए जगह तो है न ?”

आगो—“इन सब चीजों की खोज-खबर लेने की तुम्हें क्या ज़रूरत है ?”

आदमी—“जान-पहचान का कोई आदमी नहीं है ?”

आगो—“मालूम नहीं ।”

आदमी ने फिर थोड़ी देर कुछ सोचा, उसके बाद परेशान होकर बोला—
“जल्दी से बताओ ।”

आगो—“क्या बताऊँ ?”

आदमी—“क्या करना है बताओ । तुम्हारी कोई ब्यवस्था किये बिना मुझ

से भागा भी तो नहीं जा रहा है ।”

आगो—“तुम जाओ ।”

आदमी—“तुम कहाँ जाओगी ?”

आगो—“मैं यहीं रहूँगी ।”

आदमी—“इसी मैदान में ?”

आगो—“हाँ ।”

आदमी—“तुम्हारा कुछ बाकी बचेगा क्या सुबह तक ?”

आगो—“इससे तुम्हें क्या ?”

फिर कुछ क्षणों के लिए सोच में पड़ गया आदमी । इसके बाद पूछा—
“तुम्हारा घर कहाँ है ?”

आगो—“जामूडिहि ।”

आदमी—“स्टेशन कौन सा है ?”

आगो—“धनवाद ।”

एक साथ चार बसें आकर रुकीं । यात्रियों के चढ़ने-उतरने से हो-हल्ला हो रहा था । आगो का हाथ जल्दी से खींचता हुआ आदमी बोला—“भटपट चली आओ ।”

दोनों जने एक बस में चढ़ गये ।

*

हावड़ा स्टेशन । धनवाद का एक थर्डक्लास का टिकट खरीद कर आदमी बोला—“जरा जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाकर चली आओ, वक्त नहीं है ।”

सचमुच अब ज्यादा वक्त नहीं था । धनवाद जाने वाली गाड़ी का इंजिन रवाना होने के लिए प्रस्तुत होकर धुँआ उगल रहा था । औरतों के थर्डक्लास के डिब्बे में आगो को चढ़ाकर आदमी बाहर प्लेटफार्म पर डिब्बे की खिड़की के पास खड़ा हो गया । हाँफते-हाँफते खुशी मन से बोला—“बस अब मुझे कोई फिक्र नहीं है ।

आगो आँखें फाड़कर इस अद्भुत आदमी की तरफ देखती हुई बोली—
“किसकी फिक्र ?”

आदमी—“तुम्हारे बारे में ही फिक्र थी । तुम हो बिल्कुल जंगली, जरा भी अकल नहीं है तुममें । इस उम्र में रात के वक्त एक मैदान में किसी औरत के पड़े रहने पर उसके शरीर की क्या एक बोटी भी बाकी बचती ? तुम तो

बच्चा हो अभी, तुम्हें क्या मालूम, कलकत्ता शहर एक जंगल से भी ज्यादा भयानक है।”

और हो-हो करके हँस उठा आदमी। उस हँसी की आवाज से आगो का हृदय-पिंड न जाने कैसा उल्टा-पल्टा होने लगा। एक आक्रमण के व्यूह से निकालकर आगो को निर्भयजगत में पहुँचाने आया था आदमी और उतना-सा कर पाते ही कितना खुश हो गया था। ऐसा आदमी जो औरत की अपमान से रक्षा करने के बारे में सोचे, उपहार देकर और उपकार करके एक किनारे खड़ा हो जाय, आगो ने जीवन में पहली बार देखा था।

एक झटका देकर ट्रेन हिली और धीरे-धीरे सरकना शुरू कर दिया। आदमी खिड़की पकड़े साथ-साथ चलते-चलते बोला—“अच्छा मैं चलूँ।”

आगो—“कहाँ जाओगे?”

आदमी—“पुलिस जहाँ ले जायगी।”

चौक उठी आगो। उसका मुख विवर्ण हो गया। दृढ़ स्वर में उससे प्रश्न किया—“पुलिस क्यों लेकर जायगी?”

आदमी हँसा—“वक्त रहते भाग नहीं सका न, बहुत देर हो गयी!”

जंगली आँखों की वेदनाभरी दृष्टि उठाकर आगो ने पूछा—“पुलिस तुम्हारा पीछा क्यों कर रही है? क्या कुसूर किया है तुमने?”

—“मेरी बदनामी जो फैली हुई है।”

—“कैसी बदनामी?”

प्लेटफार्म की चंचल भोड़ की ओर सतर्क वन्यपशु की तरह ताककर आदमी ने कहा—“लोग मुझे गुन्डा कहते हैं। मुझे कलकत्ते में रहने की मनाही है।”

व्यथित विस्मित स्वर में आगो जैसे आर्त्तनाद कर उठी—“तुम गुंडे हो?”

आदमी हँसा—“हाँ भई हाँ, और तुमने क्या मुझे साधू-महात्मा समझा था?”

ट्रेन की गति जरा तेज हो गयी। अपने दोनों हाथों से आगो ने आदमी का गोदना गुदा हुआ हाथ कसकर पकड़ लिया और उस पर धीरे-धीरे सिर रख दिया।

ट्रेन की गति और भी तेज हो गयी। प्लेटफार्म की भोड़ ने जोर से हल्ला मचाया। दुनिया के हर शोर को पीछे छोड़कर ट्रेन ने जैसे बिना किसी की परवाह किये, बिना किसी की तरफ देखे आगे दौड़ना शुरू कर दिया।

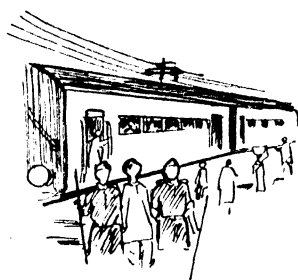
कसकर पकड़ा हुआ हाथ कब डिब्बे की खिड़की से हट गया, आगो समझ नहीं पायी। ट्रेन ने प्लेटफार्म करीब-करीब छोड़ दिया था। खिड़की से सिर निकालकर

आगो ने प्लेटफार्म की ओर देखा तो पाया पुलिस के दो आदमी उस आदमी को पकड़े हुए थे । सचमुच भाग नहीं पाया वह ।

काफी देर बाद फिर एक बार चौंक उठी आगो । उसकी बगल में जो विलास-पुर की बुढ़िया बैठी थी वह उससे हाथ से ठेलती हुई कह रही थी —“अगर रोना ही है तो मरद को छोड़ दूर जाती ही क्यों हो ?”

आगो को अब समझ में आया कि उसकी आँख से आँसू भर रहे थे । उसे लगा, जीवन में आज पहली बार मर्द के संग-सुख से वंचित होकर उसका वह बदनाम शरीर रोते-रोते जा रहा था । उसकी तकदीर खराब थी जो ऐसे मर्द को पाकर भी खोना पड़ा; उसे सुख पहुँचाने का कोई मौका ही नहीं मिला ।

उसके बाद ही जरा दिमाग लगाकर अपने मन को समझाया आगो ने— आदमी शायद कोई साधू-महात्मा ही था । अच्छा ही हुआ जो वह ऐसे मनुष्य के हाथ से सिर छुआ कर ही दूर हट आयी । नहीं तो इसके अलावा अगर कुछ और होता तो बहुत बुरा होता, बड़ा पाप होता ।



फरारों

मति नन्दी

ग्रेनाइट पत्थर में अगर
कुछ सौन्दर्य है तो
मति नन्दी की रचना
की इसमें तुलना
की जा सकती
है । बिना

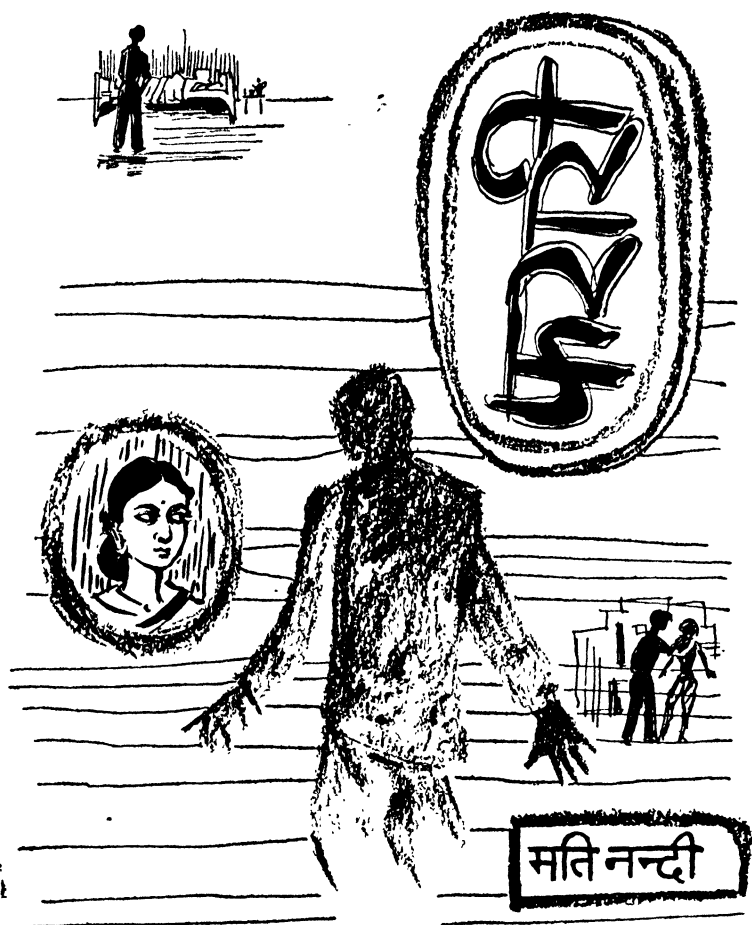
प्रयोजन एक शब्द भी ये व्यवहार में नहीं लाते । विषय-
वस्तु की मूल युक्तियों को छोड़कर आप भावावेग में बह नहीं
जाते । आपने अपने लेखन को आभरणहीन बनाकर नाटकीय
विशेषताओं से विभूषित कर दिया है । पहले प्रेम, दुख, दारिद्र्य,
वंचना व स्नेह आपकी रचना की विशेषताएं थीं और अब आपकी रचना
में मनुष्य को अपने विवेक के बंदीत्व से मुक्त होने का उपाय
खोजने की चेष्टा में लीन पाया जाता है ।

कलकत्ते में एक मध्यवर्गीय परिवार में आपका जन्म
सन् १९३२ में हुआ । किशोरावस्था क्रिकेट
के मैदान में गुजारी है और शिक्षा ली
है मोटर मेकेनिक की । आजकल
स्वतन्त्र रूप से संवाददाता का
कार्य कर रहे हैं । क्रीड़ा,
अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति
व साहित्य स्तम्भों
में लिखते हैं ।

आपका अभी

एकमात्र

उपन्यास 'नक्षत्रेर रात' प्रकाशित हुआ है ।
मानिक स्मृति प्रथम पुरस्कार ले कर आप
आधुनिक लेखकों की अग्रपंक्ति में आ गये हैं ।



कुछ देर से खटखट हो रही थी। सीमा ने समझा ऊपर के कमरे में गगन बाबू खिड़की के पास खड़े तमाखू का पाइप साफ कर रहे हैं या जूते के तले से मिट्टी झाड़ने के लिए एड़ी ठोक रहे हैं। महाशय धोती के साथ फीते वाले जूते पहनते थे, पर थे चुस्त; नियमित रूप से मुर्गी का मांस खाते थे। विधुर थे।

सीमा को आवाज फिर सुनाई दी। ऐसा लगा जैसे आवाज ऊपर के नहीं, बगल के कमरे से आ रही है। कमरा टंक-सन्दूक, पुरानी पत्रिकाओं, फटे गद्दों, और जाने किस-किस चीज से ठसा हुआ था। कमरे के बाहर गलियारे में विष्ट सो रहा था। बगल के कमरे का दरवाजा इस कमरे में से ही था। ड्रेन के पाइप के सहारे-सहारे ऊपर दुर्मांजले पर जाया जा सकता था और खिड़की पकड़कर बरामदे में पहुँचा जा सकता था।

आवाज फिर हुई। सीमा ने उठकर बत्ती जलायी। नजर पड़ी टेबिल के फूल-दान पर, जो एक किनारे पर पड़ा हुआ था। करीब एक हफ्ते पहले कपिल की खोज में पुलिस आयी थी, टेबिल के सब कागज उलट-पलट गयी थी। बगल के कमरे का दरवाजा खोला उसने। छोटा, संकीर्ण कमरा। एक खिड़की थी, वह भी बन्द रहती थी। बासी, उमसी हवा का भोंका निकल जाने की प्रतीक्षा की सीमा ने, फिर अन्दर जाकर स्विच ढूँढ़ने के लिए हाथ बढ़ाया। पास के फ्लैट की दीवाल-घड़ी ने टन्-टन् कर के दो के घंटे बजाये। स्विच खोलने पर बत्ती नहीं जली, याद आया बल्ब ही नहीं है। था तो पर न जाने कब फ्यूज हो गया था।

खिड़की पर आवाज हुई खट-खट की।

“कौन ?”

श्वासनली में हवा जम गयी थी। स्वर घरघराता-सा निकला। गला खरखारने तक का साहस नहीं था, तब भी सीमा ने फिर एक बार पूछा।

अबकी बार आवाज ने अधीरता का परिचय दिया। कोई भी हो, चोर नहीं है। भूत भी नहीं है। पाँव रखने की भी जगह नहीं थी। सावधानी से एक-एक पाँव रखकर सीमा खिड़की के पास गयी, खोलने से पहले खिड़की पर मुँह रखकर फिर बोली, “कौन ?”

उस तरफ से दबे, भरपूर स्वर में किसी ने न जाने क्या कहा। झटपट चिट-कनी खोली और दोनों पल्ले पकड़कर खींचे सीमा ने। जम गये थे। पूरा जोर लगाया उसने। उस पार से भी धक्का पड़ा। अचानक आवाज करते हुए किवाड़ खुल गये। धक्का लगने से सीमा गिर पड़ी।

उस तरफ मनुष्य की छाया थी। सींखचों पर माथा टिकाकर छाया ने पूछा, “विष्टू सो रहा है ?”

सीमा आगे गयी, बोली—“हाँ।”

“बरामदे का दरवाजा खोलो। बत्ती मत जलाना। देखो विष्टू नहीं उठे। जल्दी।”

सीमा जल्दी से निकलकर सोने वाले कमरे में आयी। बत्ती जल रही थी, खिड़की खुली हुई थी। बत्ती बुझाकर खिड़की बन्द की। बिना आवाज किये चिट-कनी खोली। अन्दाज लगा लिया विष्टू कहाँ सो रहा है। दबे पाँव गलियारा पार करके रसोई, बाथरूम के बगल से जाकर बरामदे के दरवाजे की चिटकनी खोली।

छाया सदृश मनुष्य बरामदे की दीवाल लाँघकर अन्दर घुस आया और स्वयं अपने हाथों से चिटकनी लगायी। अँधेरे में विष्टू की जगह का अन्दाज लगाकर

दबे पाँव सोने के कमरे में घुसी। बिल्कुल उसी तरह सीमा भी उसके पीछे-पीछे आयी।

दरवाजा बन्द करके चिटकनी लगाकर दबे, भरिये स्वर में पूछा, “दोनों खिड़कियाँ बन्द हैं न ?”

घरघराते स्वर में सीमा बोली, “हाँ।”

उसके बत्ती जलाते ही सीमा ने दोनों हाथों से आँखें ढक लीं। भागकर खाट पर झिंझी पड़ गयी।

भयभीत नेत्रों से कपिल ने उसकी ओर देखा। उसके बात करने से अगर विष्ट की नींद टूट जाय, बगल के या ऊपर के फ्लैट के लोग सुन लें तो ! खिड़की बन्द थी। कपिल ने चिटकनी लगा दी। पर्दा समेट कर ऊपर उठाया हुआ था, नीचे गिरा दिया। कमरे में चारों ओर एक बार नजर फिरा कर सीमा के ऊपर झुककर फुसफुसाया, “पुलिस आयी थी ?”

सीमा ने सिर हिलाया।

“उसके बाद ?”

अधीर की तरह सीमा ने तकिये में मुँह रगड़ा। जवाब न पाकर कपिल को गुस्सा आ गया। दोनों हाथों से कसकर सीमा को उठाते हुए दाँत भींचकर बोला, “रोना-धोना बाद में, उन लोगों ने क्या कहा पहले यह बताओ।”

“कुछ नहीं कहा।”

“धीरे।”

“कुछ नहीं कहा। खोजा पहले और फिर पूछा दो दिनों के अन्दर घर आये थे या नहीं, कई जनों का पता लिया।”

“और ?”

सीमा असहाय की तरह कपिल के मुँह की तरफ देख रही थी। धीरे-धीरे कपिल कुर्सी पर बैठ गया। आमने-सामने बैठे एक-दूसरे को देखते रहे वे लोग। कपिल ने ही पहले शुरू किया, “खाना है ?”

“नहीं है शायद, देखती हूँ।”

सीमा उठी। अबकी बार बत्ती बुझाये बिना ही कमरे से निकली। विष्ट बेखबर सो रहा था। दरवाजा खोलकर रसोई में घुसते ही बाल्टी से पाँव लगा। हड़बड़ा कर विष्ट उठ बैठा।

कपिल उछलकर बगल के कमरे में घुस गया। दरवाजा बन्द करके कान लगाये। सीमा उसको सोने को कह रही थी। समझा रही थी, कुछ भी नहीं हुआ, सुराही का पानी खत्म हो गया है इसलिये पानी लेने रसोई में आयी थी।

सीमा ने लौटकर आते ही दरवाजा बन्द कर दिया। कपिल निकल आया। बाहर विष्ट्र जाग रहा था। छोटे कमरे में घुसकर दरवाजा बन्द करके ही अब बात की जा सकती थी। इशारे से कपिल ने सीमा को बुलाया।

“मैं इस कमरे में ही सोता हूँ। बाहर से जैसे साँकल चढ़ी हुई थी, चढ़ा दो। बेडकवर और तकिये दे जाओ।”

जगह नहीं थी, बिना आवाज किये सामान ठेलठाल कर जितनी जगह कर पाया कपिल उसमें किसी प्रकार पाँव फैलाये जा सकते थे। धूल और तेलचिट्टों की गंध से कमरा भरा हुआ था। जमीन पर बेडकवर बिछाकर कपिल सो गया। सीमा ने बाहर से दरवाजा बन्द करके साँकल चढ़ा दी।

खिड़की खुली ही रह गयी थी। रहे, कपिल की उठने की इच्छा नहीं हुई। ऐसा लग रहा था जैसे नस-नस से पत्थर बाँध कर लटका रखा हो। खिड़की बन्द करने से वायु का पथ बन्द हो जायगा। खिड़की के नीचे ही गली थी; तब भी कपिल को लगा खिड़की बन्द कर देना ही अच्छा है। उठूँ उठूँ करते हुए कपिल उठ नहीं पाया। नींद आ रही थी। ये कुछ दिन मार खाये ुत्ते की तरह भागता फिरा था वह। खाना, सोना कुछ भी नहीं हुआ था। दीर्घश्वास छोड़ा कपिल ने। सोचा, जो कुछ भो हो, मुझे जिन्दा रहना ही पड़ेगा।

सोने वाले कमरे में बत्ती जल रही थी। सर्वहारी की तरह सीमा खाट पर बैठी थी।

२

कपिल की नींद टूटी किसी के जोर-जोर से चिल्लाने की आवाज सुनकर। चुपचाप पड़ा रहा। सामने के घर की अनु की माँ की आदत ही है यह। पानी डालते-डालते मेहतरानी के साथ भगड़ा जरूर करेगी। तो क्या बज गया? हड़-बड़ा कर कपिल उठ बैठा। कलाई में नँधी घड़ी देखी। चार बजे थे उसमें। कान में लगाकर देखी तो पता लगा बन्द हो गयी थी। खिड़की से धूप आ रही थी। आगे बढ़ने ही वाला था कि जैसे साँप देख लिया हो। पीछे हट गया। खिड़की पर जाने का कोई उपाय नहीं था, देख लेगी।

धीरे से दरवाजा खींचा। बाहर से बन्द था। दोनों किवाड़ों के बीच की संधि में आँखें लगायीं। दिखाई देता था पर बहुत कम। खाट का थोड़ा-सा हिस्सा, टेबिल का कोना, दरवाजा। सीमा कहाँ है? स्कूल चली गयी है शायद।

पाँव में जाने किस चीज की ठोकर लगी। कपिल ने उठाकर देखा—हथौड़ी! इस घर में आते ही कील ठोकने की जरूरत पड़ी थी। ऊपर के गगन बावू के यहाँ से माँग कर लायी गयी थी, फिर वापस गयी ही नहीं। कपिल जमीन पर बैठ गया।

दिन में वह स्वयं से ही बातें करता, दोपहर को उनकी जुगाली करता और रात को हजम करता। एक सन्दूक से सिर टकराया उसकी, आवाज हुई। कपिल जानता था यह आवाज कोई नहीं सुन पायेगा। हजारों आवाजों के बीच किसी के कान में यह आवाज नहीं जायेगी। वह भी तो इसी आवाज की तरह लाखों आदमियों के बीच छुपकर रह सकता है। जरा खखारा वह। कोई नहीं सुन पाया। अचानक डर से दिल बैठ गया उसका। शायद बगल के कमरे में ही विष्ट हो। कौतूहलवश अगर इस कमरे में आ जाय तो।

दरवाजे की तरफ ताकता रहा कपिल। उस कमरे में यदि कोई रहे या चले-फिरे तो यहाँ से वह नहीं सुन पायेगा। एक ही कारण है, लाख-लाख आवाजों के बीच वह दब जायेगी। कितने बजे हैं? घुटनों के बल बैठे-बैठे खिसककर खिड़की के पास आया वह। किवाड़ जरा सरकाकर सामने के घर के चबूतरे पर एक नजर डाली। गमछा पहने उपले थाप रही थी अनु की माँ। दृश्य भद्दा था, कपिल हट गया।

भूख लगी थी। बाथरूम भी जाना था। शरीर में चेतना लौट रही थी। कपिल ने देखा खटमल के काटने से कनउँगली के पास सूजन आ गयी थी। दाढ़ी बनानी थी। कुर्त्ता भी बदलना चाहिये था पर बिना सीमा के कुछ भी सम्भव नहीं था और वह थी कि आ ही नहीं रही थी।

कपिल गुस्से में भरा बैठा रहा। बगल के कमरे में आवाज हुई। किवाड़ों से भाँककर देखा उसने। दिखाई नहीं दे रहा था कौन है। अचानक उसका दृष्टिपथ अंधकाराच्छन्न हो गया, हाँ सीमा ही थी।

दरवाजा खोले सीमा ही सामने खड़ी थी। चटपट खाने की थाली एक बक्स के ऊपर रख दी।

“विष्ट को बाजार भेजा है, आता ही होगा। यह थाल-ग्लास यहीं रखवा रहेगा, मैं खाना दे जाया करूँगी। सुराही ला देती हूँ, और क्या चाहिये?”

“बाथरूम जाऊँगा।”

सीमा का मुँह फक पड़ गया।

“वह कैसे हो सकता है, विष्ट अभी आता होगा।”

“फिर से बाजार भेज देना।”

“तुम क्या इसी तरह छुपे रहोगे?”

“और उपाय ही क्या है।”

सीमा के मुख पर विस्मय के, व्याकुलता के भाव आये और चले गये। बातें करने का समय नहीं था, तुरंत ही स्कूल जाना था उसको।

“पागल हुए हो क्या, कैसे रहोगे।”

यह सब बातें कहने या सुनने की इच्छा इस वक्त कपिल को नहीं थी। कैसे रहेगा, यह बाद को ठीक किया जायगा। इस वक्त तो पाखाना जाना ही उसके लिए सबसे ज्यादा जरूरी था। दरवाजे से झाँका उसने। जाने के लिए दालान पार करना पड़ेगा। पश्चिम की ओर दालान खुला हुआ था, बैठे-बैठे जाया जा सकता था। कपिल ने ऐसे ही जाने का निश्चय करके सीमा से कहा, “जब तक मैं न आऊँ, जाना मत। विष्टू आये तो उसे फिर बाजार भेज देना।”

“मुझे स्कूल जो जाना है।”

“यह उससे भी बड़ी बात है, मेरे लिए तुम्हें यहाँ ठहरना पड़ेगा।”

एक महीने पहले जिस स्वर में बात कहा करता, उसी लहजे में कहा कपिल ने। दीवाल के किनारे-किनारे घुटनों और हाथ के बल जाते-जाते एक बार मुँह फिरा कर देखा उसने। आश्चर्य हुआ उसे यह देखकर कि सीमा ऐसे ताक रही थी जैसे कोई अजीब चीज देख रही हो।

जैसे गया था उसी तरह लौट आया कपिल। स्नान वगैरह निपटा सकता था पर विष्टू के आ जाने के डर से नहीं किया। नल की आवाज सुनकर वह अवश्य जानना चाहता कि गुसलखाने में कौन है? लेकिन अभी तक विष्टू लौटा नहीं था। स्नान किया जा सकता था। सीमा खाट पर बैठी थी; जाने के लिए तैयार। कपिल नरम स्वर में बोला, “आज नहीं ही जातीं। तुम्हें पूरी चीज खोल कर बताता फिर।”

परेशान-सी होकर अस्वाभाविक स्वर में सीमा बोली, “नहीं-नहीं आज जाना ही पड़ेगा, सेक्रेटरी आयेगा। गवर्नमेन्ट ग्रान्ट और प्रमोशन के बारे में जरूरी बातें करनी हैं।”

भवें सिकोड़ीं कपिल ने। टेबिल से बैग उठाकर सीमा ने पैर बढ़ाये, कपिल ने हाथ पकड़ लिया।

“विष्टू आयेगा तो दरवाजा कौन खोलेगा? बैठो, जब तक वह नहीं आये बैठो रहो।”

असहाय की तरह सीमा ने देखा, बोली, “इस तरह कब तक छुपे रहोगे।”

“जब तक सम्भव होगा, जब तक जिंदा रहूँगा।”

सीमा आँखें फाड़े देखती रही, बात का मतलब समझ में नहीं आ रहा था उसकी। “जिंदा रहना चाहते हो? इस घर के, इस मुहल्ले के सब लोग जानते हैं कि तुम खून करके फ़रार हो। बाहर निकलते ही सब मुझ पर उँगली उठाते हैं, कोई हमारे घर नहीं आता अब।” बोलना बंद किया उसने, कोई कुंडी खट-

खटा रहा था, ज़रूर विष्टू होगा। छोटे कमरे में घुसकर दरवाजा बन्द करते-करते कपिल बोला, “जल्दी लौटना, मुँह सिधे रखना अपना, याद रखना कुछ भी कहने का मतलब—”

तब तक सीमा दरवाजा खोलकर विष्टू को एक छोटी डाँट पिला रही थी।

३

सोने वाले कमरे का दरवाजा खुला ही रहता था। विष्टू विश्वस्त नौकर था। करीब चार साल पहले कपिल ने उसे रक्खा था। लम्बे अरसे से उसके एक दोस्त के यहाँ काम करता था; उम्र के साठ पर पहुँचते-पहुँचते मालिक समझे अब उससे काम नहीं होगा। पर इतने दिनों से काम कर रहा था, एकदम से निकालना भी दिल में खटक रहा था। कपिल उसका उद्धार करके ले आया। सीमा से शादी करके इस फ्लैट में आने पर घर की रखवाली करने, नौकर-चाकर, महाराज का काम जानने वाले एक आदमी की ज़रूरत पड़ी थी। विष्टू बिल्कुल असमर्थ नहीं था इन सब कामों के लिए।

दरवाजे की संधि पर आँख रक्खे थोड़ी देर तो कपिल खड़ा रहा, फिर लेट गया। खिड़की खुली रहने पर भी किसी के लिए उसे देख पाना सम्भव नहीं था, इस बारे में वह निश्चित था। चीज-वस्तु की वजह से कमरा गरम हो रहा था। सामान ठीक से लगा देने पर जगह निकल सकती थी, लेकिन अगर उस वक्त विष्टू कमरे में हो तो आवाज सुनकर देखने के लिए ज़रूर आयेगा उस कमरे में। यह सोचकर सामान लगाने का ख्याल छोड़ दिया कपिल ने। हथौड़ी पाँव में लग रही थी, उसे उठाकर बक्स पर रख दिया।

इसके बाद उसने दाढ़ी बनाने की बात सोची। सिर्फ दो ही ब्लेड थे उसके पास। खत्म होने पर सीमा को ही खरीद कर लाने पड़ेंगे। अब से उसकी ज़रूरत की चीजें सीमा को ही खरीदनी पड़ा करेंगी। पर ब्लेड खरीदने से तो दुकानदार को शक हो जायगा। औरत को ब्लेड की क्या ज़रूरत। पुलिस की नजर भी इस घर पर ज़रूर होगी। सीमा का पीछा भी करती होगी। ब्लेड खरीदते देख कर समझ जायगी कि कपिल घर में ही छुपा हुआ है। फिर दल-बल के साथ पुलिस आयेगी। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द नहीं होता इसलिए आसानी से अन्दर घुस जायेंगे। खींचकर उसे बाहर निकालेंगे और हथकड़ी लगा देंगे। गली से होकर बड़ी सड़क पर खड़ी प्रिजन-वेन में बैठाकर ले जायेंगे। उसके बाद कोर्ट आँर हवालात, हवालात और कोर्ट। फिर एक दिन जज फेसला सुनायेगा—‘मुहम्मद मन्सूर हमीद की हत्या करने के अपराध में कपिलचन्द्र बसु एम० ए० को प्राणदंड दिया जाता है’ और यह खबर सब अखबारों में हेडिंग पर छपेगी। और फिर एक

दिन सुबह, अँधेरे-अँधेरे उसे फाँसी के तख्ते पर ले जाया जायगा ।

आँखें बन्द हुई जा रही थीं कपिल की । अपनी मृतदेह जैसे अपनी आँखों के सामने ही दिखाई दे रही थी उसे । सिर झटका जरा उसने । आश्चर्य है ! क्यों मारा उस आदमी को मैंने । बेचारा निरपराध था । अखबार में नाम आया था, मुहम्मद मंसूर हमीद, कोलूटोला में फुटपाथ पर जूते बेचता था । इससे पहले जीवन में कभी उसे देखा तक नहीं था, नाम सुनना तो दरकिनार रहा, लेकिन तब भी उसे मार दिया । खून करने के ख्याल से तो नहीं मारा था, पर हाँ काफी गुस्से में प्रहार किया था । उसका अपराध ? उसका अपराध था कि वह देखने में हव्वा उस आदमी जैसा था । वही आदमी, जिसे एकबार सिर्फ कुछ क्षणों के लिए देखा था ।

कपिल ने उस आदमी की शक्ल-सूरत याद करने की प्राणपण से चेष्टा की । सड़क पर प्रकाश बहुत उज्ज्वल नहीं था । ट्रामस्टाप पर खड़ा कपिल ट्राम की प्रतीक्षा कर रहा था । रात के नौ बज गये थे । आफिस की छुट्टी के बाद कैन्टीन के हॉल में थियेटर की रिहर्सल होने लगी थी, निकलते-निकलते देर हो गयी थी ।

ट्रामस्टाप निर्जन था । आदमी उसके बदन से बदन घिसता हुआ निकल गया था, “वाबू मालिश कराइयेगा ?”

कपिल ने देखा; पायजामा-कमीज पहने, बाल छोटे कटे हुए, एक अघेड़ उम्र का आदमी था । व्यापार समझ गया वह । लड़कियों का दलाल था । बेरुखी दिखाता हुआ कपिल दूर सड़क पर देखने लगा । आदमी ने फिर न जाने क्या-क्या कहा । उसी तरह उदासीन रहते हुए कपिल ने कहा, “नहीं ।” आदमी जैसे पागल था, उसी तरह बके जा रहा था । ट्राम भी नहीं आ रही थी । समय काटने के ख्याल से ही कपिल ने पूछा, “लड़की कहाँ है ?” “बोलिए, जहाँ कहिए ला दूंगा । रेस्टोरेन्ट में चलिए, आपके साथ-साथ जायगी, बात-चीत करेगी, कमरा ठीक कर दूंगा ।

“कितना पड़ेगा ?”

“दस रुपये ।”

ट्राम आ रही थी । बैठा जायगा पर सामने की सीट पर खिड़की के पास नहीं । सोचा दूसरी ट्राम में चढ़ेगा । कपिल ने बातचीत शुरू की । सारे दिन के लिए एक कमरे व लड़की का इन्तजाम कर देगा, खर्च पच्चीस रुपये पड़ेंगे । और आज अगर कपिल जाना चाहे, अकेले कमरे में सिर्फ बातचीत करे, ‘लव’ करे और कुछ नहीं, तो सिर्फ कमरे के किराये के पाँच रुपये लगेंगे । कपिल सोचने लगा बुरा क्या है; पाँच रुपये में एक अनजान लड़की का सानिध्य । आदमी कह रहा है,

उसका बदन छू सकेगा वह । इसमें चरित्र-हीनता की कोई बात नहीं है । सीमा के प्रति मेरी अनुरक्ति इससे लेशमात्र भी कम नहीं होगी । सड़क पर चलती बहुत-सी लड़कियों को देखते ही मन में अश्लील भावना आ जाती है, इसको भी ठीक उसी तरह की एक चीज समझा जा सकता है ।

कुछ देर तक कपिल तर्क करता रहा स्वयं के साथ । आदमी बीच-बीच में बक-बक किये जा रहा था । दो-चार ट्रामें और आकर चली गयीं । कपिल ने सोचा उसका मन, आत्मा या चेतना शुद्ध ही रहेगी क्योंकि लड़की को उसने देखा नहीं है । प्यार या प्रेम का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । मात्र एक अभिज्ञता । जरा मजा लेने के, कौतूहल मिटाने अतिरिक्त के और कुछ नहीं है यह । इसके अलावा देह का कोई सम्पर्क भी इसमें नहीं है । इसलिए कुछ रुपये के बदले....., जिस तरह सिनेमा देखने में रुपये खर्च होते हैं, उसी तरह यह भी है । इसमें मेरी, सीमा की या दूसरों की कोई क्षति नहीं होगी ।

“कहाँ जाना होगा ?”

“सामने गली में ।”

आदमी आगे बढ़ा । कपिल पीछे-पीछे चला । आफिस की तरफ का इलाका अंधकारमय था । थोड़ी दूर जाकर आदमी रुक गया । बोला, “कमरे के लिए रुपये दीजिए ।”

“वह क्यों ?”

“हाँ बाबू, पेशगी दिये बिना कमरा नहीं मिलेगा ।”

इतनी दूर आकर अब बहस करना बेकार है । आदमी अनाड़ी समझेगा मुझे । कपिल ने रुपये दे दिये । उसको खड़ा रहने को कह कर आदमी अदृश्य हो गया । सिगरेट जलाने के लिए दियासलाई जलाने गया तो कपिल के हाथ काँप गये । कुछ क्षण बाद ही वह आदमी आया, कपिल को साथ लेकर कुछ दूर आगे गया और एक रास्ते के मोड़ पर खड़ा कर दिया ।

“आप यहाँ ठहरिये, मैं लड़की को लेकर आता हूँ । उस गली में कमरा है ।”

कपिल खड़ा-खड़ा एक के बाद एक सिगरेट पीता गया; लेकिन आदमी लौट कर नहीं आया । पंद्रह मिनट बीतने पर भी जब नहीं आया था, कपिल तभी समझ गया था कि वह अब नहीं आयेगा, तब भी उसने करीब आधा घंटा और इन्तजार किया और नहीं आने पर उसी समय तय कर लिया कि अब कभी मिलेगा तो बूट-सहित एक लात जमायेगा दोनों जाँघों के बीच में । रुपये गये इसलिए नहीं, आदमी लोभ दिखा कर उसको ओछा बना गया, इस एक भीतरी कुल्हाड़ी से उसके व्यक्तित्व की फैली हुई शाखाओं पर प्रहार कर गया, वह, दूसरे लोगों को जिस

तरह ठगता था, उसको भी उसी तरह ठग गया। वह जरूर सोच रहा होगा कि यह आदमी भी छिछोरा, लोभी, व्यक्तित्वहीन था।

ड्राम में बैठकर कपिल ने सोचा, सचमुच उसका पतन हुआ है। जरूर कहीं न कहीं एक कमी रह गयी है, नहीं तो ऐसी दुर्बलता दिखाई क्यों देती। ड्राम से उतरने से पहले कपिल की बुद्धि का अधिकांश भाग बेकाम-सा हो गया।

इसके बाद उग्रता से आदमी को ढूँढ़ने लगा। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे उसका गुस्सा बढ़ता जा रहा था। छोटी-छोटी बातों पर भगड़ पड़ता। उसे ऐसा लगता जैसे वह चारों तरफ से एक षडयन्त्र में घिरा हुआ है। मनुष्य के रूप में मैं छोटा बनता जा रहा हूँ, यही बात दिनरात उसके दिमाग में घूमती रहती। हर एक के व्यवहार में उसने दोष निकालना शुरू कर दिया। उसे लगता सब उसे ओछा समझ कर उसका अन्याय करते हैं, नीची निगाह से देखते हैं, सब सोचते हैं, वह चरित्रहीन आदमी है।

उस दिन आफिस की छुट्टी होने पर शशांक उसके साथ ही निकला। शशांक मुँहफट आदमी था। कपिल को चाय पिलाने के लिए एक ऐसी दुकान में ले गया जहाँ लड़कियाँ ही काम करती थीं। कपिल बड़ा भयभीत-सा हो गया। शायद शशांक ऐसा कुछ कर बैठे जो सभ्य आदमी के लिये उचित न हो। शशांक का ध्यान फिराने की गरज से कपिल ने पूछा “तेरा बड़ा लड़का स्कूल में भर्ती हो गया?” शशांक ने जवाब दे दिया। कपिल ने फिर पूछा, “मकान-मालिक के साथ जो तेरा भगड़ा चल रहा था उसका क्या हुआ?” शशांक ने जवाब दिया और साथ ही साथ चाय का प्याला हाथ में लिये लड़की के चूतड़ में कर्नूंगली चुभो दी। कपिल ने देख लिया। लड़की ने घूम कर विस्मित नेत्रों से शशांक और कपिल को और देखा। मुँह लाल करके पागलों की तरह कपिल दुकान से बाहर निकल गया। अगर वह एक क्षण भी और वहाँ ठहरता तो शशांक पर भपट पड़ता और उसका गला दबा देता।

ड्राम में बेतहाशा भीड़ थी। इतनी धक्का-मुक्की में कपिल कभी ड्राम में नहीं चढ़ता था, उस दिन गुस्से में चढ़ गया। चढ़ते ही समझ गया कि दूसरे लोग उसके चढ़ने से खुश नहीं थे। इसकी वजह से बहुतों को और भी मिंच कर खड़ा होना पड़ा था। क्षमाप्रार्थी की तरह दबा-सिकुड़ा खड़ा रहा कपिल।

ड्राम आगे के स्टाप पर खड़ी हुई। आफिस से लौटने वाली एक लड़की ने चढ़ना चाहा। कपिल की बगल में खड़े आदमी ने एक अश्लील मन्तव्य प्रकट किया। लड़की ने मुँह उठा कर देखा—किसने कहा था? कपिल से आँखें मिल गयीं इसकी। उन दोनों आदमियों के बीच सुई बराबर भी जगह नहीं थी, तब

भी लड़की को उनके बीच से ही जाना था। कपिल असहाय-सा हो गया। लड़की आगे बढ़ी। ऐसा लगा कपिल जरा हिला, संकोच से, लज्जा से, शालीनता बनाये रखने के लिए। अचानक लड़की बोली, “असम्भ्य कहीं का।”

कपिल क्या, सारी ट्राम के लोग चुप थे। बगल वाले आदमी ने फिर मन्तव्य प्रकट किया। दिमाग जैसे शून्य होता जा रहा था कपिल का।

चलती ट्राम से उतर गया वह। ट्राम के एक आदमी की बात कान में पड़ी, “किराया भी मार गये।”

कपिल को चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई दे रहा था। सिर में जैसे आग लग रही थी और उसके धुएँ में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। अचानक ऐसा लगा कि सामने का आदमी वही है, वही आदमी, जिसने उसके व्यक्तित्व का वजन कम कर दिया था। कपिल दौड़ कर गया उसकी तरफ।

आदमी की शक्ल-सूरत याद करने की चेष्टा की उसने, मात्र कुछ क्षणों के लिए तो देखा था। सड़क का प्रकाश भी बहुत उज्ज्वल नहीं था। क्यों लात मारी मैंने, बेचारा निरपराध था। प्रतिशोध की भावना में गलती कर बैठा। यदि भूल नहीं होती, यदि यह वही आदमी होता तो क्या यह अनुताप होता? जरूर होता, क्योंकि इस आदमी या उस आदमी की कोई बात नहीं है। अनुताप तो इसलिये है कि वह एक आदमी था, जिसे भूख-प्यास लगती थी, जो हँसता था, रोता था; मेरी जैसी ही जिसकी अनुभूतियाँ थीं, भावनाएँ थीं। ये सब गुण संसार के प्रत्येक मनुष्य में ही तो होते हैं। इसलिये किसी के ऊपर हाथ तो नहीं उठाया जाता। कपिल ने सोचा, मुझे पकड़ पाने पर शायद ये लोग फाँसी देंगे, पर क्यों देंगे? इसलिये कि मैं समाज के लिए अवांछित हूँ? वह आदमी भी तो मेरे लिए अवांछित है। फिर किसकी जरूरत अत्यावश्यक है, समाज की या मेरी? समाज की जरूरत सबकी भलाई के लिए है, उसमें मेरी भी भलाई है। तो मेरे फाँसी लगाने से किस-किस की भलाई होगी? विष्ट की? सीमा की? ऊपर वाले गगन की? सामने के घर की अनु की? शशांक की? सीमा ने अवश्य सुन लिया है कि मैंने एक आदमी का खून किया है। संभाव्य कारणों को लेकर जो बातें उड़ी होंगी, वे भी शायद सुनी होंगी। वह जरूर इस आशा में होगी कि मैं उसे असली कारण बताऊँगा। पर बताऊँगा नहीं। बताया भी नहीं जाता। कारण, अवश्य है—। उसे मैं प्यार करता हूँ और इसके लिए मुझे खुशी भी है। सीमा भी मुझे प्यार करती है, इस बात की भी मुझे खुशी है। एक कहानी गढ़कर कह दूँगा। ऐसी सब व्यक्तिगत मिथ्या बातों से समाज अवश्य रसातल में नहीं जायगा। कुछ ऐसा बताना पड़ेगा जिससे सीमा की दया, सहानुभूति को जाग्रत

किया जा सके। किसी दुर्घटना या आत्मरक्षा की बात बतानी पड़ेगी। इससे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, सीमा का भी नहीं, किसी का भी नहीं।

कपिल चिन्ता-मुक्त हुआ पर साथ ही साथ उसने महसूस किया गर्मी बहुत हो रही है। बड़े कमरे में पंखा था पर जाने का कोई उपाय नहीं था। विष्ट बाहर दालान या रसोई में था। वह अगर न हो तो सीमा की अनुपस्थिति में सारे प्लेट में धूम-फिर सकता है वह, कल ही उसे भगाने की व्यवस्था करेगा—कपिल ने सोचा।

विष्ट को निकालने की बात सोचते-सोचते कपिल को नींद आ गयी।

४

नींद टूटने पर कपिल ने हल्कापन महसूस किया। सोचा सीमा लौट आयी है। अचानक उसे उसकी सुबह की दृष्टि याद आ गयी। घुटनों के बल चलते देख कर उसने जरूर एक कुत्ते की कल्पना की होगी। ऐसी कल्पनाओं में मजा आता है। कपिल हमेशा से अपने बारे में प्रायः सोचा करता है कि सारे दिन में किसी न किसी समय वह अवश्य कुत्ते-जैसा दिखाई देता है। सीमा के साथ बिस्तर पर या आफिस में मुर्परिटेन्डेन्ट की टेबिल के सामने, रास्ता चलती लड़कियों से सामना होने पर भी वह संकुचित हो जाता है।

खिड़की के बाहर देखा कपिल ने। प्रकाश मद्धिम-सा हो गया था, संध्या जैसा नहीं था, ऐसा लग रहा था जैसे सुबह हो रही हो। सावधानी से, दूर से ही हाथ बढ़ाकर—खिड़की के दोनों पल्ले भेड़ दिये कपिल ने। जरा-सी दरार में से देखा, अनु दीवाल पर कोहनी टिकाये एक दूसरी छत की तरफ देख रही थी। इस तरह खड़ी थी कि कोई देख न पाये। कपिल समझ गया कि सितांशु इस वक्त छत पर है। अच्छा लड़का है, फोर्थ इयर में आया है इस बार। माँ बहुत रूढ़िवादी है।

कपिल को मजा आ रहा था। लड़की सीमा के पास प्रायः आया करती है। मुहल्ले भर की खबर उसके पेट में रहती है। कपिल से भी बोल-चाल है। बगल के कमरे में खटपट आवाज हुई। जरूर सीमा आ गयी है, अंधेरे कमरे में कपिल प्रतीक्षा करने लगा लेकिन शब्द की धारणा से पता लगा सीमा नहीं विष्ट है। सीमा अभी तक लौटी क्यों नहीं है? आज तो जल्दी लौटने की बात थी। विस्मय से विरक्ति पर पहुँच गया कपिल।

सीमा लौटी शाम के करीब। विष्ट रसोई में था। कपड़े बदलने के लिए सीमा ने दरवाजा बन्द किया। बगल के कमरे का दरवाजा खोलते ही कपिल गुस्से में भरा बाहर निकला।

“तुमने मुझे समझ क्या रखा है ?”

दबे स्वर में कपिल ने पूछा । सीमा उसकी तरफ ऐसे देख रही थी जैसे प्रश्न से विरक्त हो गयी हो ।

“मुझे क्या कुत्ता समझ रक्खा है ? इतनी देर से क्यों लौटी ?”

“देर कहाँ हुई है ?”

“नहीं तो क्या शाम होने के बाद कोई स्कूल की छुट्टी नहीं होती । मालूम तो है तुम्हें कि यह सब मैं पसन्द नहीं करता ।”

“क्या पसन्द नहीं करते ?”

कपिल चुप रहा ।

“अपनी मर्जी से तो आ नहीं सकती । यदि पसन्द नहीं करते तो नौकरी छोड़ दूँगी ।”

“इस वक्त यह कहने का मतलब ! पहले भी तो कहा करता था पर ऐसा जवाब तो कभी नहीं दिया ?”

सीमा साड़ी उतारने में व्यस्त रही, बोली नहीं । कपिल फिर बोला, “यह क्यों भूलती हो कि सिर्फ मेरे लिए नहीं, तुम्हें भी खा-पहन कर जिंदा रहना है, कैसे जुड़ेगा वह अबसे ?”

सीमा ने बिना कुछ भी कहे साड़ी बदली । उतारी हुई साड़ी तह करके उठा कर रखी । कपिल चुपचाप देखता रहा ।

“कमरे में जाओ, दरवाजा खोलूँगी ।”

अब कपिल को सचमुच ऐसा लगा कि वह एक कुत्ता है, सीमा के स्वर में चाबुक है । सिर झुकाये वह अन्दर चला गया ।

कुछ देर बाद ही सीमा ने पुकारा लेकिन कपिल बाहर नहीं निकला । सीमा ने अन्दर जाकर उसके शरीर पर हाथ रख कर कहा, “खाने चलो । विष्णू को बाहर भेज दिया है ।”

“कहाँ ?”

“भैया के पास चिट्ठी देकर ।”

“कैसी चिट्ठी, क्यों ?”

कपिल संश्रुत हो उठा ।

“वे कह रहे थे कि अकेली हूँ इसलिये भानू को रहने के लिए भेज देंगे, उनको मना कर दिया है ।”

पराठे और आलू का साग था । मुँह का कौर चवाते-चवाते कपिल बोला, “विष्णू को निकाल दो ।”

खिड़की बन्द थी तब भी पर्दे अच्छी तरह खींच दिये थे सीमा ने; अवाक् हो गयी वह, “क्यों ?”

“मैं क्या दिन-रात चौबीस घंटे इसी कमरे में रहूँगा ? उससे तो जेल कहीं अच्छी । हर वक्त घर में रहता है, इधर से उधर घूमता रहता है । वह न हो तो मैं कमरे से बाहर आ-जा सकता था ।”

“ऐसा नहीं हो सकता ।”

“क्या नहीं हो सकता ?”

“विष्ट की बात कह रही हूँ । बूढ़ा आदमी कहाँ जायेगा । दोनों कुलों में कोई नहीं है और उसे काम भी कौन देगा इस उम्र में ।”

“दुनिया में दयालुओं की कमी नहीं है । इसके लिए तुम्हें सोचने की जरूरत नहीं है । इसके अलावा उसके प्रतिपालन की जिम्मेदारी हमें लेनी ही पड़ेगी ऐसी कोई शर्त तो है नहीं ।”

“प्रतिपालन कहो या जो...भी कहो, उसकी जिम्मेदारी अब से अकेले मेरे ऊपर है । और सिर्फ इसको क्या तुम्हें भी तो.....।”

सीमा रुक गयी । कपिल के मुँह के भाव बदल गये थे । खाना बन्द कर दिया था, बस एकटक सीमा के मुँह की तरफ देख रहा था ।

“रुक क्यों गयी ?”

“धृन्ध-सी होकर सीमा बोली, दयालुओं पर तो सब जिम्मेदारी डाली नहीं जाती । नया आदमी रखने से और भी मुश्किल में पड़ना पड़ेगा । इस घर के बारे में हर कोई उत्सुक हो उठा है । विष्ट बूढ़ा आदमी है, आदमी भी अच्छा । किसी से बातचीत नहीं करता ।”

“तो मुझे हर वक्त उस कमरे में ही बंदी बनकर रहना पड़ेगा ? बीच-बीच में जब तुम दया करके निकालोगी तभी बाहर निकलूँगा ?”

“तो फिर मैं क्या कर सकती हूँ । सारे दिन तो घर में बैठी भी रह नहीं सकती हूँ । विष्ट को भी नहीं हटाया जा सकता । दया-व्या की वजह से नहीं, काम की वजह से । इतने कम खर्च पर दिन-रात रहनेवाला ऐसा विश्वासी आदमी कहाँ मिलेगा ? तुम्हारी अशुविधा के लिए मैं अवश्य जिम्मेदार नहीं हूँ ।”

कपिल चुप रहा, सीमा भी । पास-पड़ोस की आवाजें प्रकट होने लगी थीं । अनु की माँ चिल्ला रही थी । पति के साथ रोज ही उसका झगड़ा होता है । लाउडस्पीकर पर बज रहे रिकार्ड की आवाज सुनाई दे रही थी । बगल के फ्लैट में कई आदमी हो-हो करके हँस पड़े ।

बाहर के दरवाजे पर कुंडी खटखटाने की आवाज हुई । कपिल ने चौंककर

सीमा के मुँह की तरफ देखा। इतनी जल्दी विष्ट के लौटने की बात नहीं थी। कुंडी की आवाज भी विष्ट के हाथ की नहीं थी। सीमा के इशारा करते ही कपिल अपने छोटे कमरे में घुस गया। दरवाजा बंद करके कान लगाये बाहर की तरफ।

किसी पुरुष से बात कर रही थी सीमा। स्वर कपिल को पहचाना-सा लगा। कोन है? क्या कह रहा है? जरा देर बाद ही सीमा लौट आयी। कपिल भी कमरे से निकल आया। उसके पूछने से पहले ही सीमा बोली,—“गगन वावू थे, रोज खबर ले जाते हैं आकर। बड़े सज्जन पुरुष हैं।”

“पहले तो किसी से बात तक नहीं करते थे। मैं तो स्वार्थी समझता था।”

“मैं भी यही सोचता थी। अब बस वही मुझसे बात करते हैं या अनु करती है। जिस दिन पुलिस आयी, वही थे।”

कपिल लक्ष्य किये बिना नहीं रह सका कि सीमा का स्वर सिक्त हो गया था। समझ नहीं पाया किसलिए, कृतज्ञता की वजह से, भरोसे की वजह से, या आवेग की वजह से! पर कैसा आवेग?

“कई दिनों से अनु रोज शाम को आ रही थी, आज नहीं आयी। लौटने में ही देर हो गयी, आयी थी क्या?”

“बया मालूम, मैं तो सो रहा था, उठकर देखा, वह अपनी छत पर खड़ी थी।”

“तुम्हारे कमरे की खिड़की से दिखाई देता है। देखो कोई देख न ले।”

कपिल को लगा सीमा का यह उद्वेग अकृत्रिम था। खुशी हुई इससे उसे।

“पुलिस ने क्या कहा?”

“उन्हें कुछ मालूम नहीं था, कारण ढूँढ़ रहे थे।”

“किसका कारण?”

सीमा चुप खड़ी देखती रही। सकुचा रही थी कहने में, कपिल समझ गया।

“उन लोगों ने क्या पूछा?”

“बहुत बातें। अच्छा तुम क्या उधार लिया करते थे?”

कपिल चुप रहा।

“क्या रेस खेलते थे क्या?” और जरा हिचकिचाते हुए सीमा ने कह ही डाला, “कहीं किसी दूसरी लड़की से मेल-जोल है?”

“किसने कहा?”

“उन्होंने सब पता लगाया है।”

प्रतिवाद् के स्वर में कपिल बोला, “उनकी बातों पर तुमने विश्वास कर लिया?”

कुछ कहा नहीं सीमा ने ।

“वे लोग तो ऐसी बहुत-सी बातें कहते हैं, डर दिखाकर बात कहलवाते हैं । तुमने क्या-क्या कहा ?”

आग्रह सहित देखता रहा कपिल । सब कुछ झूठ है । पर उस पर से क्या सीमा का विश्वास हट गया है ? उसे तो अच्छी तरह मालूम है कि कपिल किस तरह का आदमी है । जो आदमी मनुष्य का खून कर सकता है, उस पर शायद किसी तरह का विश्वास नहीं रहता ।

“बोलो न ?” कपिल अधीर हो उठा ।

“क्या कहूँ । मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है । तुमने ऐसा काम किया कैसे ?”

सब कुछ उलझा जा रहा था कपिल का । दुर्घटना या आत्मरक्षा की कोई कहानी अब कही जा सकती थी । कौन सी कहे, किस तरह कहे ।

“तुम क्या सोचती हो, यह कि ऐसे ही बिना बात आदमी को मार दिया मैंने ?” आदमी शब्द क्षीण स्वर में निकला कपिल के गले से । खखार कर फिर बोला, “नशे में धुत होकर ट्राम में चढ़ा था । लेडीज़ सीट के पास जाकर असभ्यता कर रहा था । सभी आपत्ति जता रहे थे । आदमी अश्लील बातें बक रहा था । मुझे बहुत गुस्सा आ गया । आगे जाकर कालर पकड़कर खींच ले आया । उता-हूँ उसने भी मुझे धक्का देकर गिरा दिया । मैं गिर गया । वह गाली-गलौज हा था । बस रोक नहीं पाया अपने को ।”

कपिल बोलने के साथ-साथ लक्ष्य करता जा रहा था कि सीमा चकित हो है । बहुत जल्दी बात खत्म हो गयी । और जरा बात बनाकर, बढ़ाकर कहनी थी जिससे सीमा घटना में अपराध नहीं एक दड़ा महत्व देखती ।

“इतना गुस्सा करना शायद उचित नहीं हुआ । पर आदमी प्रकट में जो व्यवहार कर रहा था उससे तुम्हें भी गुस्सा आ जाता । दूसरों की भाव-भंगिमा देखकर गुस्सा और भी बढ़ गया, किसी ने प्रतिवाद तो नहीं किया, आगे आकर रोका तो नहीं लेकिन आपस में बोले जा रहे थे ।”

पसीना आ गया था । कपिल ने स्वयं को असहाय महसूस किया । झूठ बोलने में शरीर को भी कष्ट होता है शायद । इस झूठ में तो किसी का भी नुकसान नहीं है ।

“कलकत्ता भी एक अजीब जगह है । आदमी आँधे गिरा । भीड़ इकट्ठा हो गयी और मेरी तारीफ करने लगी, सब बोले शराबी को सजा देकर ठीक किया तुमने । लेकिन मैं समझ गया कि मैंने क्या किया था । धीरे-धीरे बिना परेशान

हुए आगे बढ़ना शुरू किया मैंने ।”

“लेकिन आदमी तो शराबी नहीं था ।”

“किसने कहा ?”

“गगन बाबू ने । वे थाना भी गये थे । अस्पताल की रिपोर्ट भी देखकर आये थे ।”

“झूठा, लायर ।”

“चुप, धीरे, चिल्लाओ मत ।”

कपिल उठकर खड़ा हो गया । डर गया वह । सीमा ने उसकी बात पर रती भर भी विश्वास नहीं किया । अब से वह उसके बारे में सुनी हुई हर बात पर विश्वास करेगी, उसके मुँह की हर बात पर अविश्वास करेगी । जरूर वह उससे घृणा करने लगी है ।

सीमा उठकर टेबिल के पास जाकर खड़ी हो गयी । मुँह स्याह पड़ गया था उसका । व्यस्त होकर टेबिल के चारों ओर जाने क्या तो ढूँढ़ने लगी । कपिल को कहने लायक कोई बात नहीं मिल रही थी । सामने रहने में भी शर्म आ रही थी उसे । अब सच बात बताने पर भी वह विश्वास नहीं करेगी । यंत्रवत् कपिल छोटे कमरे में घुस गया ।

५

कपिल गुमगुम बना बैठा था । विष्ट का खाना खत्म हो गया था । बूढ़ा आदमी था, जल्दी ही सो जाता था । कमरे का दरवाजा बन्द करके सीमा ने बुलाया । कपिल निकला नहीं । खाने की इच्छा नहीं थी । दूसरी बार नहीं बुलाया सीमा ने । खाना ढककर रख दिया और कागजपत्र लेकर बैठ गयी वह ।

करीब घंटे भर बाद कपिल ने झाँका । लाइट जल रही थी । सीमा बिस्तर पर चित सो रही थी, हाथ दोनों आँखों पर थे । साफ चिट्ठा बिस्तर था, दो जने आसानी से सो सकते थे । मोटा गद्दा था । इस घर में आने के साथ ही साथ यह सब खरीदा गया था । कपिल ने मन ही मन सोचा, मेरे पैसे से, मेरे परिश्रम के पैसे से खरीदा हुआ है यह सब, इस बिस्तर का मालिक मैं ही हूँ । बिल्कुल नाबालिगों जैसी भावना थी । पर आखिर कैसे इन सब कल्पनाओं से रिहाई मिले । इन सब ओछी कल्पनाओं ने पहले तो कभी प्रश्रय नहीं लिया, अब क्यों ले रही हैं ।

लाइट बुझाकर कपिल खाट पर सीमा के पास बैठ गया । ऐसा लगा सीमा जग रही थी । कपिल ने झुककर कमर जकड़ ली उसकी ।

“मैं कहाँ सोऊंगा ?”

आँखों पर से हाथ हटा लिये सीमा ने, बोली नहीं कुछ ।

“तुम्हें हो क्या गया है ?”

कपिल ने हल्का-सा झटका दिया । सीमा तन्दुरुस्त थी, परिश्रमी थी, लावण्य-मयी थी । कपिल उसके कान के पास मुँह लाया ।

“बोल क्यों नहीं रही हो ? इतना सोचने की क्या बात है । सरक कर सोओ ।”

सीमा सरकी नहीं । कपिल प्यार जताने गया । सीमा ने एक आवाज निकाली मुँह से । कपिल अलग हटकर बैठ गया । फिर उसे गुरसा आ रहा था । इस वक्त बात सिर्फ शरीर की थी, इसके साथ लम्पट या खूनी पति का कोई सम्पर्क नहीं था ।

कपिल ने बाहुओं में कस लिया सीमा को और गालों पर ओठों पर चुम्बन लेना शुरू कर दिया । सीमा हड़बड़ा कर उठने जा रही थी लेकिन कपिल ने उसे दबाये रखा ।

“क्या बात है ?” रुक्ष स्वर में कपिल ने पूछा, “दस दिन पहले तो ऐसा नहीं करती थीं ।”

“दस दिनों में बहुत समय निकल गया ।”

“मालूम है, समय ने तो हम लोगों के बचपन से ही जाना शुरू कर दिया है पर उससे कोई बड़ा परिवर्तन तो नहीं आया । दस दिनों में इतना बदलने लायक तो ऐसा कुछ हुआ नहीं है ।”

“कुछ नहीं हुआ है ?”

चौंक उठा कपिल । कमरे का अंधकार जैसे विस्मित नेत्रों से देख रहा हो ।

“हम लोगों की इतने दिनों की जान-पहचान, इतनी बातें, इतना प्यार सब-कुछ क्या इन कुछ घंटों में, कुछ दिनों में बदल गया ।”

कपिल ने उलट कर विस्मय दिखाया । अंधकार चुप ।

“आश्चर्य की बात है । इतना कमजोर होता है आदमी का मन । तो फिर इतने दिनों तो तुमने जो कुछ कहा, जो कुछ किया सब भूठ था ?”

जरा गला खखार कर धीमे स्वर में सीमा बोली, “यह प्रश्न तो मैं भी कर सकती हूँ । मैं कैसे समझूँ कि इतने दिनों तक तुमने जो कहा है, जो किया है वह भूठ नहीं है ? पुलिस ने तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह शायद भूठ है । तुम्हारे कथनानुसार उन लोगों ने असलियत जानने के लिए डर दिखाया है । परन्तु तुमने ही क्या सच बात बतायी है ? अब आवेग अनुभूति नहीं है, सन्देह जब पैदा हो गया है तो बुद्धि की सहायता लेने के अलावा और उपाय ही क्या है ?”

“अब तक क्या बुद्धि सो रही थी ?”

“सन्देह जो पैदा नहीं हुआ था ।”

“इसका मतलब तुम बुद्धिमती हो गयी हो ! कब तक इस तरह रहोगी ?”

“क्या मालूम, शायद जीवन भर, सब कुछ तुम पर निर्भर रहेगा ।” खट्ट हो गया सीमा का स्वर । ओठों ही ओठों में फुसफुसायी, “यह तुमने क्या कर दिया । अच्छी थी; अब कैसे रहूँगी ।”

“क्यों, पहले की तरह ।”

कपिल ने उसको करीब खींचा । वह करीब आयी पर सिर्फ उतनी ही जितनी कपिल की सामर्थ्य थी ।

“पहले की तरह क्या रहा नहीं जा सकता ?”

व्यग्र होकर कपिल ने सीमा के ब्लाउज के बटन खोलने शुरू कर दिये । सीमा ने कसकर उसका हाथ पकड़ लिया ।

“नहीं, अब यह सम्भव नहीं है ।”

“सीमा तुम सुन्दर हो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ ।”

कपिल ने सीमा का हाथ भटक दिया और साथ ही साथ सीमा दोनों हाथों से छाती दबाकर उल्टी लेट गयी ।

“इसका कोई मतलब नहीं होता ।”

सिर हिलाते-हिलाते सीमा बोली, “होता है । अब यदि बाल-बच्चा होगा तो लोगों को क्या जवाब दूँगी ?”

“अब तक तो हुआ नहीं ।”

“हुआ नहीं, पर होने की सम्भावना भी नहीं है, यह तो किसी ने नहीं कहा । तब ?”

“तब की बात तब सोची जायगी ।”

अंधे की तरह सीमा के शरीर को टटोलने लगा कपिल । अपरूप था उनका शरीर इसीलिये तो उसे पसन्द आ गया था । सीमा के बाधा देते ही धर-पकड़ शुरू हो गयी । कपड़े फटने की आवाज हुई ।

“तुम मुझे लज्जा में डालना चाहते हो । छोड़ो, नहीं तो—”

“नहीं तो क्या ?”

यन्त्रणा से मुख विकृत हो गया कपिल का । सीमा ने कलाई में काट लिया था । खाट से उतर कर सीमा जल्दी-जल्दी कपड़े पहनने लगी ।

“बिना बात के डर रही हो तुम ।” रुक-रुक कर कहा कपिल ने । यन्त्रणा

से शरीर ँँठा जा रहा था। “डरने की कोई बात नहीं है। सन्तान कभी भी नहीं होगी।”

“क्यों?” तीव्र स्वर में सीमा ने पूछा।

“नहीं होगी।” उठ आया कपिल, बिल्कुल करीब आकर खड़ा हो गया। सीमा के शरीर की गंध आ रही थी उसके नथुनों में।

“होने का कोई उपाय नहीं है, एक दिन डाक्टर के पास गया था। परीक्षा करके बताया है उसने।” दबे स्वर में बोला, “डर तो है नहीं, अब मना मत करो।” सीमा को खींचा उसने। दोनों हाथों से मुँह ढक कर जमीन पर बैठ गयी सीमा।

कपिल को अपने चारों तरफ अँधेरा दिखाई देने लगा। सफेद झूठ था, तब भी कह डाला। कहना ठीक नहीं हुआ। ऐसी ही एक उत्तेजना में आदमी को मार डाला था। बिना मारे भी कुछ नहीं बिगड़ता। व्यक्तिगत झूठ बोले बिना भी काम चल जाता। सीमा बुड़-बुड़ा कर जाने क्या तो कह रही है। बाहर विष्ट ने खाँसना शुरू कर दिया है। बूढ़ा आदमी है, कहाँ जायेगा इस उम्र में; पड़ा रहेगा यहीं।

धीरे-धीरे कदम रखता हुआ कपिल छोटे कमरे में घुस गया। और साथ ही साथ ख्याल आया कि अब उसकी कोई गति नहीं है। उसने स्वयं ही अपनी गर्दन पकड़ कर स्वयं को इस निर्वासन में धकेल दिया है, यहाँ से कभी भी उसे मुक्ति नहीं मिलेगी। बाहर की दुनिया में दिन आयेगा, रात आयेगी, ऋतु बदलेगी, मनुष्य जन्म लेंगे, मरेंगे, रोयेंगे, हँसेंगे, यह सब वह कुछ भी नहीं देख पायेगा। दिन पर दिन इस छोटे श्वासरुद्ध अंधकारमय कमरे में उसका ह्लास होता जायेगा और जिन्दा रहने की जितनी ही वह चेष्टा करेगा उतना ही एक के बाद एक मैला कपड़ा उसके मुँह में ठूस कर उसका रूप, रंग, गंध नष्ट कर देगा। कौन, कौन कर देगा, नियति, मनुष्य, समय?

सीमा की तरह दोनों हाथों से मुँह ढँक कर जमीन पर बैठ गया कपिल और बोल पड़ा, “कौन से पाप से मैं मनुष्य होकर जन्मा।”

६

दिन की पहली ड्राम के चलने की आवाज सुनी कपिल ने। सुबह हो रही थी। आज रात को भी नींद नहीं आयी थी। प्राणों के डर से वह छुपने आया था, पर अब डर और भी अधिक था। उसके अस्तित्व का प्रत्येक पल अब सीमा पर निर्भर था। सीमा अगर चली जाय कहीं? अगर वह पुलिस को खबर कर दे? अगर वह मर जाय तो? इस बात की कल्पना से ही कपिल दिग्भ्रान्त-सा

हो गया। जिंदा रहने की चेष्टा एक बार शुरू करने पर फिर पीछे नहीं हटा जाता। जैसे भी हो उसे जिंदा रहना ही पड़ेगा। पर किस तरह? सारी पृथ्वी उसके लिए जैसे लोप हो गयी थी। पाखाना जाने की कल्पना तक से हँसी आती थी उसको। बिल्कुल रोजमर्रा की चीज थी लेकिन कैसी जानलेवा बन गयी थी।

चिल्ला रही है अनु की माँ। प्रतिदिन मुबह बच्चों को पढ़ाने बैठाने के कर्त्तव्य का पालन करती है। इसके बाद मेहतर का, पति का, गवर्नमेंट का, पड़ोसियों का, सगे-सम्बन्धियों का, एक-एक करके सबका नम्बर आयेगा। उनके ऊपर की मंजिल में एक पति-पत्नी रहते हैं, वे किसी से बोलते-चालते नहीं, मिलते-जुलते नहीं। बगल के मकान में अपने को सर्वज्ञ कहने वाले एक संवाददाता, विनयी ग्रध्यापक का वास है। इन लोगों के बारे में जानने के लिए कपिल कभी भी उत्सुक नहीं हुआ। अखबार आता है पर कपिल पढ़ता नहीं कभी, छपे हुए अक्षर हिलते-डुलते नहीं, आवाज नहीं करते, और बिल्कुल बेरंगे होते हैं। बाहर की दुनिया में जो मर्जी हो घटे, उससे कुछ आता-जाता नहीं वरन् इस कमरे की खिड़की से जितना दिखाई देता है वही कपिल के लिए सम्पूर्ण दुनिया है। अपने स्वयं के प्राणों के बाद ही वह इन लोगों के बारे में इच्छुक है।

मुबह विष्ट बाजार जाता, उसी समय कपिल बाथरूम का काम निपटा लेता। आजकल सीमा खाना कमरे में ही खाती थी। पहले विष्ट पास खड़ा रहता था अब सीमा उसे खड़ा नहीं रहने देती। विष्ट ने एक दिन कहा था “भाभी की भूख अब डबल हो गयी है।”

सीमा साढ़े नौ बजे स्कूल जाती, लौटती शाम को। कुछ देर बाद ही ट्यूशन के लिए निकल जाती। पहले तो नहीं करती थी पर अब करनी पड़ती थी। लौटती रात गये। तब मुक्ति मिलती कपिल को। पर कमरे से निकल कर भी चैन नहीं पड़ती उसको। सीमा गम्भीर, बलान्त, विरक्त बनी रहती।

आज रविवार का दिन था, सीमा देर से सोकर उठीगी। तब विष्ट चाय लेकर आयेगा। बिस्तर में लेटे-लेटे चाय पीने की आदत असल में कपिल की ही थी। उसकी अनुपस्थिति में भी विष्ट नियम-पालन करता आ रहा था। अब सीमा बिस्तर में चाय पीती। मुबह विष्ट के चाय देने का व्यापार कपिल रोज दरवाजे की संधि में से देखता। दुःख होता, और मन भारी हो जाता। एक इस काम में जैसे विष्ट ने उसे जिला रखा हो। उसके फालतू जूतों पर एक दिन पालिश करनी बाही थी उसने, सीमा ने नहीं करने दी। लाँट्री में दिये हुए कमीज-पैट उसी ने याद करके लाकर रख दिये थे। विष्ट में कोई भी परिवर्तन नहीं आया था। ऐसे भाव थे उसके कि उसके दादा बाबू घर में नहीं हैं।

सारी रात बिना सोये निकलने पर सुबह-सुबह इस असहाय वृद्ध की बात मन में आते ही दिल धड़कता कपिल का, आज उन दोनों की ही अवस्था एक जैसी थी। हर बात में दूसरे का मुँह देखकर हर पल टिके रहने की बात सोचनी पड़ती है। अनिश्चितता की चक्की में दोनों ही पिस रहे थे। इस घर के बाहर विष्ट का कोई आश्रय नहीं है। वह झूठ नहीं बोलता, चोरी नहीं करता, अवखड़ भी नहीं है लेकिन तब भी डरता है। किससे ? उम्र से, शारीरिक कष्ट से, मृत्यु से ?

विष्ट सजग कर देता कपिल को। उसके अन्दर के आराम, सजीवता, यौवन इत्यादि करवट लेने लगते; लेकिन ये सभी प्राण-रूपी पक्षी की तरह सीमा की मुट्ठी में थे। सीमा को हाथ में रखना पड़ेगा। जिस तरह भी हो जिंदा रहना होगा। सुबह-पुवह ऐसी बातों की कल्पना से दुख होता कपिल को। वह सोचता, 'हाथ में रखने' वाली बात उसके मन में आयी कैसे।

उठकर आकर दरवाजे की संधि में आँखें टिकायीं कपिल ने। देखा, सीमा नहीं थी खाट पर। कान लगाये, पर व्यर्थ। कलकत्ता शहर ने शब्द तैयार करने शुरू कर दिये थे, कुछ भी समझ में नहीं आया। कुछ परेशान-सी सीमा कमरे में आयी। संधि में से इतना ही दिखाई दिया कि सीमा कुछ कर रही थी। कपिल ने दस्तक दी।

जरा देर बाद ही दरवाजा खोला सीमा ने। उसके हाथ में पावरोटी काटने वाली छुरी थी। कपिल के कुछ पूछने से पहले ही सीमा बोली, "आज खाना नहीं बनगा। मक्खन, जाम, पावरोटी से ही काम चराना पड़ेगा, विष्ट अस्पताल गया है।"

"क्यों ?"

"कई दिनों से दबादबा-सा बुखार था, इसलिए आउटडोर में दिखा आने को भेज दिया है। बुढ़ापे में हारी-बोमारी अच्छी नहीं, सावधान रहना उचित है।"

कपिल चुपचाप सीमा का रोटी काटना देखने लगा।

"अगर मर-मरा गया तो फिर भमेले में पड़ना पड़ेगा।"

कपिल ने 'तो फिर' शब्द को लेकर मन में तर्क-वितर्क शुरू कर दिया। सीमा ने क्या किसी खास उद्देश्य से कहा है या इस शब्द के प्रयोग करने की उसे आदत है।

"नया आदमी कोई रख लूँ, यह भी नहीं हो सकता, तनखाह इतनी माँगते हैं कि बस पूछो मत। उस पर चोरी-चारी करेंगे, वह अलग।"

"नहीं, नहीं, विष्ट को हटाने की जरूरत नहीं है। जब है तो इस उम्र में हारी-बोमारी तो देखनी ही पड़ेगी।"

“अगर घर में पड़ा-पड़ा मर गया तो कौन उठाकर फेंकेगा उसे ?”

“उसकी व्यवस्था भी है, ‘सत्कार-समिति’ को खबर देने से सब कर देते हैं वे लोग ।”

सीमा ने ऐसे देखा जैसे आश्चर्यचकित हो गयी हो । चेहरे की विरक्ति काफी कम हो गयी, स्लाइस पर जाम लगाकर कपिल की तरफ बढ़ा दिये उसने । खाट पर बैठ गया कपिल । एक खिड़की खुली थी लेकिन तब भी बाहर से दिखाई नहीं दे सकता था । दरवाजे पर पर्दा पड़ा था, कमरे में कुछ-कुछ अँधेरा-सा था । बाहर से कुछ पता नहीं लग सकता किसी को यह दोनों जने जानते थे ।

“कब लौटेगा वह कौन जाने, मुझे फिर बाहर जाना है ।” स्लाइस का टुकड़ा मुँह में लिया सीमा ने । कपिल सुराही से पानी लेने के लिए उकड़ूँ बैठा था, लक्ष्य किया सीमा ने फिर ‘फिर’ शब्द का प्रयोग किया था । लगता है आदत है । सहज स्वर में बोला, “क्या जरूरत है, आज तो छुट्टी है तुम्हारी ।”

“काम तो छुट्टी के दिन ही ज्यादा होता है ।”

“नहीं किया तो क्या, चलो —” कपिल ने रुक कर सोचा, इस तरह बहुत बार कहा है उसने, ‘चलो छोड़ो रसोई-वसोई, आज ट्रेन में ही सारा दिन घुमेगे, या कोई सिनेमा देखेंगे । बहुत दिनों से ग्रामोफोन नहीं बजाया ।’

हँस पड़ी सीमा, कपिल ने पानी का ग्लास उसकी तरफ बढ़ा दिया, “सोच रही हूँ ग्रामोफोन बेच दूँ । हमारे स्कूल की समीरा को बहुत शौक है । कितने दाम बताने चाहिये ?”

“बेचोगी क्यों ?”

“रखने से ही कौन-सा फायदा है, वही पुराने रिकार्ड हैं, कब तक अच्छे लगेंगे । नये रिकार्ड खरीदने की तो सामर्थ्य नहीं है ।”

सीमा ने उठकर आलमारी से स्कूल की साड़ी निकाली, “तुम अभी नहाना-धोना निपटा लो, बिष्टू को लौटने में जरूर देर होगी । फिर मुझे सेक्रेटरी के घर जाना है, रुपये-पैसे को लेकर कुछ गोलमाल है ।”

कपिल उत्सुक हो उठा । पूछा, “कैसा गोलमाल ?”

“ज्यादा नहीं, कोई तीन सौ रुपये का है । मेरी गलती से ही फर्नीचर वाले को दिये गये । कमेटी की मीटिंग में किसी-किसी ने इस बात को लेकर बुरा इशारा किया है यद्यपि सेक्रेटरी मेरे पक्ष में है, तब भी सोचती हूँ, कि हर महीने तनख्वाह में से काट लेने के लिए कह दूँ ।”

“जब तुम्हारी गलती नहीं है तो रुपये क्यों दोगी, गलती तो हर किसी से हो सकती है ।”

“तब भी सम्मान खोकर नौकरी नहीं की जा सकती। रुपये पूरे चुक जाते ही कहीं दूसरी जगह नौकरी ढूँढ़ूँगी। एक चिट्ठी भी आयी है जमशेदपुर से, असिस्टेंट हेडमिस्ट्रेस की नौकरी है, तनखाह भी यहाँ से ज्यादा है।”

कपिल सिहर उठा। यह घर छोड़कर सीमा चली जायगी। उसका क्या होगा? सीमा के साथ जाना पड़ेगा, पर कैसे जायेगा सब की नजरें बचाकर? वहाँ भी क्या ऐसा सुयोग, ऐसी सुविधा रहेगी जिससे छुपकर रहा जा सके। पुलिस क्या हर वक्त सीमा पर नजर नहीं रखती?

“यहाँ तुम्हारी नौकरी करीब आठ साल की है, इस तरह छोड़ देना ठीक नहीं होगा। पुरानी जगह बहुत सुविधा रहती है। और रही मान-सम्मान की बात, तो वह तो स्वयं को उसके अनुकूल बनाकर चलना पड़ता है, और अगर तुम उसे अपने ढंग से लो तो उससे मन में एक हिंसा पैदा होने के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। ऐसी कौन-सी जगह जाओगी तुम जहाँ पूरा मान-सम्मान रखा जा सके? टिके रहना ही असली बात है, तुम क्या टिकी नहीं हो?”

“कहाँ हूँ?”

जरा अस्वाभाविक रूप से मुंह फिराया सीमा ने, कपड़ा तह करना बंद हो गया, दो कदम आगे आ गयी।

“एक के बाद एक ऐसे ही मेरे दिन कटेंगे। मैं बुढ़िया नहीं हुई अभी, कम-जोर नहीं हुई, मैंने कोई अन्याय नहीं किया, पाप नहीं किया; फिर मैं क्यों सजा भुगतूँ? इसको कैसे टिके रहना कहूँ?”

“तो फिर तुम चाहती क्या हो?”

“जिन्दा रहना चाहती हूँ, जिस तरह दूसरे लोग स्वतन्त्रता से जीते हैं।”

“सीमा, मैं भी तो यही चाहता हूँ।” निस्तेज गले से पाँव की उँगलियों की तरफ देखते-देखते कपिल बोला, “हम दोनों की ही वही समस्या है, तुम मेरी बात क्यों भूल जाती हो? तुम तो तब भी बाहर निकलती हो, ट्राम-बस में चढ़ती हो, परिचित-अपरिचित का मुँह देखती हो, मैं तो वह भी नहीं कर पाता।”

“मेरी इस हालत के लिए तुम, सिर्फ तुम जिम्मेदार हो।”

जवाब के लिए कपिल ने बुद्धि दौड़ायी, वह किसे जिम्मेदार ठहराये? चुप हो रहा। सीमा जो चाहे कहे, सुनता ही पड़ेगा। गुस्सा, अभिमान करने से कोई फायदा नहीं है। जहाँ चाहे चले जाने की क्षमता उसमें है। ईर्ष्या की जा सकती है पर उसे हाथ में रखना ही पड़ेगा। मान-सम्मान जाने के डर से वह डर गयी है। डरने दो, नहीं तो वह मनमानी शुरू कर देगी।

“बैठे मत रहो, कामकाज निपटा लो। मैं बाहर से ताला लगाकर चाबी अनु

के पास रखे जा रही हूँ। विष्ट उससे ले लेगा। उसका खाना रसोई में रख दिया है। मेरे लौटने का कुछ ठीक नहीं है।”

निकलने से पहले शीशे में मुँह देखा सीमा ने। काफ़ी दिनों से न देखने के कारण आज कपिल को नया लगा। पाउडर का पफ मुँह पर फिराते-फिराते सीमा ने तिरछे होकर देखा, बैग खोलकर रुमाल की खुशबू सूँधी, दोनों हाथों से दबाकर बाल जरा फुलाये और कपिल की तरफ देखे बिना बाहर निकल गयी। कपिल को ख्याल आया कि पहले बाहर जाते वक्त सीमा माँग में सिंदूर भी भरा करती थी।

स्नान करने से ताजगी आ गयी थी बदन में। अगर घुटनों के बल चलने वाली भ्रंश न रहती तो और भी अच्छा लगता। एक तरफ से पूरा खुला हुआ था, उधर के घरों से सब दिखाई देता था और पर्दा टाँगने से तरह-तरह के प्रश्न उठते। गीली साड़ी अवश्य सूखती रहती थी पर उससे सब कुछ नहीं ढकता था। सात-आठ हाथ लम्बी दीवार पार करते ही कपिल को सीमा की प्रथम दृष्टि याद आ गयी। उससे स्नान करने का सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता है। खाट के नरम बिस्तर पर जाता है। खाट के नरम बिस्तर पर लेटने के साथ ही साथ आँखों की पलकें भारी होने लगें। टेबिल की टाइम-पीस पर नजर रखकर वह करवट लेकर लेट गया। नौ बजने पैं तीन मिनट थे। कपिल ने सोचा बाहर के ताले की चाबी अनु के पास है। सोना हो तो छोटे कमरे में जाकर सोना चाहिये। ठीक है। जोर से नींद आयेगी तो उठ जाऊँगा।

नींद धीरे-धीरे जोर पकड़ रही थी कि अचानक टूट गयी, उठकर बैठ गया कपिल। बाहर का ताला खोल रहा था कोई। कपिल उठ खड़ा हुआ। कोई एक जन अन्दर घुसा। देखने के लिए आगे बढ़ ही रहा था कि लगा जो आया है वह भी इसी तरफ आ रहा है। कपिल ने जल्दी से अपने छोटे कमरे में घुस कर दरवाजा बन्द कर लिया। संधि में से देखा अनु घर में घुसी। यह घर अनु के लिए अपरिचित नहीं था तब भी उसकी दृष्टि कैसी भटकी हुई सी लगी। चारों तरफ घूम-घूम कर देखा उसने, अचानक चौंक कर कुछ सुनने की चेष्टा की, फिर बाहर की तरफ चली गयी। कपिल दबे पाँव कमरे से निकला। बातों की फुसफुसाहट सुनाई दी। उसने फिर कमरे में घुसकर दरवाजा भेड़ लिया। संधि में से नजर कमरे पर रखी। अनु आयी, कुछ क्षण बाद ही सितांशु आया। वह हाँफ रहा था। मुँह पर अस्थिरता के भाव थे, पसीना-पसीना हो रहा था। कुछ भी बोले बिना दोनों एक-दूसरे को देख रहे थे। अनु हँसी, सितांशु भी।

“कोई आ तो नहीं जायगा?”

“आयेगा तो क्या हुआ, बाहर के दरवाजे की तो चिटकनी लगी है।”

“उसके बाद किसी ने पूछा तो ?” सितांशु की आवाज काँप रही थी। अनु की तरफ एक कदम आगे आया वह। इसके बाद कपिल को कुछ नहीं दिखाई दिया।

“तुम बड़े डरपोक हो।”

“ठीक कह रही हो, जैसे मैं आया ऐसे डरपोक ही तो आते हैं ?”

“आते ही हैं, ऐसा कौन सा वहादुरी का काम है। जहाँ मेरे या तुम्हारे किसी के भी घर के आदमी नहीं देख पाये, और दूसरा भी कोई नहीं देख पाये, जान पाये, ऐसी जगह जाने में भी हिम्मत चाहिये, क्यों ?”

अनु भी कपिल की आँखों की आड़ में हो गयी। दबे स्वर में बातें कर रहे थे वे लोग। कपिल मुन नहीं पाया। मुनने के लिए सावधानी से दरवाजे को जरा-सा खोल दृष्टि उठाते ही देखा वे लोग चुम्बन ले रहे थे। एक बीस साल का लड़का और सोलह साल की लड़की।

“मैं हर वक्त तुम्हारे बारे में ही सोचती रही हूँ।”

“मैं भी।”

“कब ?”

“हर वक्त।”

“कालेज से इतनी देर करके क्यों लौटते हो ?”

“लास्ट पीरियड प्रैक्टिकल होता है न।”

“शाम होते ही मन छटना लगता है। तुम्हारी खिड़की की तरफ ताकती रहती हूँ। जानती हूँ कि तुम लौटे नहीं हो तब भी खाली देखती रहती हूँ, तुम्हें तो मालूम ही है !”

“हूँ।”

“आ हा।”

“इतने छोटे-छोटे जवाब क्यों देती हो ?”

“वाह, इतना लिखने का वक्त मिलता है न।”

इस बार भी वे लोग कपिल की दृष्टि की आड़ में हो गये। खाट की तरफ बढ़े। देखने के लिए दरवाजा जितना खोलना पड़ता वह विपदजनक था। कपिल ने कान लगाये। पूरी बात तो नहीं, कुछ शब्द सुने। उन शब्दों का मतलब वह जानता था। पहले-पहल सीमा से ही सुने थे उसने।

“और कितने सालों में हमारी शादी होगी ?”

“नौकरी मिलते ही हो जायगी।”

“तब तक और किसी को तो प्यार नहीं करने लगोगे ?”

“नहीं ।”

“बदन ठूकर कसम खाओ ।”

“कभी भी किसी और को प्यार नहीं करूँगा ।”

कपिल को याद आया क्रिकेट का बैट हाथ में लिये सितांशु को कई बार देखा है । सुना है अच्छी डिबेट करता है, कहानी भी छपी है उसकी शायद । अनु को मुहल्ले की दुर्गापूजा के मंडप में वालिटियर बनते देखा है, औरतों की सरस्वती पूजा का चंदा इकट्ठा करते देखा है । जो भी हो इस वक्त वह अब सब बातें याद करके उन के बारे में कोई राय नहीं बनाना चाहता । उनको देखने की इच्छा भी नहीं थी और बातें सुनने की भी नहीं । वे लोग प्यार करने आये हैं, करें ।

“पर अगर शादी न हो तो ?”

“वयों नहीं होगी ।”

“तुम्हारी माँ मुझे देखते ही भँवें सिकोड़ती है ।”

“अगर राजी नहीं हुई तो अलग होकर शादी कर लूँगा ।” स्वर सितांशु का था ।

“मा लूम है शादी की बात वयों पूछ रही हूँ । अगर कुछ हो-हवा गया तो गले में फंदा लगाने के अलावा कोई चारा नहीं रहेगा ।”

“तुम्हें अकेले क्यों मरने दूँगा, मैं भी...”

लगा अनु ने सितांशु के मुँह पर हाथ रख दिया । अन्दर की तरफ आकर कपिल पाँव फैला कर बैठ गया । जिंदा रहने का उपाय है शादी कर लेना । सोचकर हँसी आती है । हँसने में भी कष्ट हुआ उसे । सीमा को बया पहले की तरह लौटाया जा सकेगा अगर वह उससे फिर शादी कर ले । इन कम उम्र के लड़के-लड़कियों की तरह बया हम लोग परस्पर एक-दूसरे को चाह सकेंगे ? वह क्षमता बया है अब हम लोगों में ? सीमा अब प्यार नहीं करती । काश वह नये रूप में उसे प्यार कर सकता ! किस तरह, कौन-सा आकर्षण है मुझमें ? रूप बदल नहीं सकता अपना, युवकों की तरह मस्ती लौटा नहीं सकता, अपने करतब दिखा नहीं पाऊँगा, कुछ भी नहीं कर पाऊँगा । सब कुछ हार कर, सब कुछ खोकर इस छोटे अँधेरे कमरे में निर्वासन लिया है मैंने, कीचड़ छान रहा हूँ, बूढ़ा होता जा रहा हूँ, क्रूर होता जा रहा हूँ । पर कभी मैंने भी सीमा को प्यार किया था, सीमा ने भी मुझे किया था । अब बया पहले जैसे संबंध नये रूप में स्थापित नहीं किये जा सकते ! ओह, मैं भी कितना मूर्ख हूँ, यह कोई गाड़ी, ब्रिज, कारखाना, पेन्सिल तो है नहीं जो बना लिया जायेगा । पर चाहे कुछ भी कहूँ हम लोगों में वह आकर्षण नहीं

रह सकता जो इन नौजवान लड़के-लड़कियों में है ! क्यों ? क्यों नहीं रह सकता ? फिर से शुरूआत कर सकता हूँ, जिस तरह हमारे प्रथम-मिलन के बाद हुई थी, जिस तरह अनुराग उपजा था। उस तरह फिर से शुरू क्यों नहीं हो सकता। आश्चर्य है, सब युक्तियाँ अजीब हैं, अब शायद पीछे नहीं लौटा जा सकता। सीमा को पहली बार देखकर सीटी बजायी थी। वह अवश्य अब नहीं कर सकता, कोई सुन लेगा, सुनकर पुलिस को खबर कर देगा, पुलिस आकर पकड़ कर ले जायेगी। घर तक उसे टैक्सी से छोड़ गया था, वह भी अब संभव नहीं है। मिलने का वचन देकर भी नहीं मिला था, यह भी अब असंभव है।

उठ कर खड़ा हो गया कपिल, इन असम्य छोकरे-छोकरों को गर्दन पकड़ कर बाहर निकालना पड़ेगा। इसको क्या इन लोगों ने होटल का कमरा समझ लिया है ?

बाहर के दरवाजे की चिटकनी लगाने की आवाज आयी। कपिल ने जल्दी से दरवाजे की संधि में आँख रखी, देखा कमरा खाली था। खाँसी का खों-खों शब्द और अपने-आप से बातें करते हुए कुछ वाक्य सुने। विण्डू लौट आया। तो वे लोग कब चले गये। कपिल फिर पाँव फैला कर बैठ गया।

*

सीमा काफी देर करके लौटी। कपड़े बदल रही थी वह जब कपिल कमरे में आया। आते ही वापस लौट गया। बात बिल्कुल नयी-सी थी। शादी के शुरू-शुरू के दिनों में सीमा कपिल के सामने कपड़े नहीं बदलती थी, कपिल भी कमरे में नहीं रहता था, बाहर चला जाता था। लेकिन बाद को आदत हो गयी थी, कोई हिचक नहीं होती थी।

आज के चले जाने पर सीमा ने कोई लक्ष्य ही नहीं किया। कुछ देर बाद कपिल फिर कमरे में घुसा। सीमा पानी पी रही थी, कपिल मुस्कराया। शीशे पर नजर पड़ी उसकी। घनी दाढ़ी, अस्तव्यस्त लम्बे बाल, इन सब के साथ हँसने से कैसा लगता था वह, प्रागैतिहासिक जैसा ? फिर से एक बार हँसकर देखने की इच्छा हुई उसकी।

हँसी सीमा ने लक्ष्य की। उत्सुक नेत्रों से भी देखा। कपिल शर्मीले स्वर में बोला, “आज एक चीज देखी मैंने।” जरा रुककर सीमा के मनोभावों का अन्दाज़ा लगाते हुए बोला, “अनु को तुम चाभी देकर गयी थीं, मालूम है उसने क्या किया ?” शायद उत्सुक हो गयी थी सीमा, बोली, “ताला खोलकर घर में आयी थी वह ?”

सीमा ने जल्दी से टेबिल पर, अलमारी पर दृष्टि दौड़ायी।

“अकेली नहीं, साथ में एक जून और भी था।”

“कौन ?”

“अन्दाज लगाओ ।”

अन्दाज लगाने की चेष्टा का कोई चिन्ह सीमा के चेहरे पर दिखाई नहीं दिया। कपिल की ओर देखती रही। बाहर विष्ट ने खांसना शुरू किया। कपिल ने अशान्ति महसूस की।

“समझ नहीं पायी ?”

“कौन था ?”

“सितांशु ।”

भँवें सिकोड़ीं सीमा ने, भारी गले से बोली, “क्यों आयी वह ? ताला खोलकर घर में रहने के लिए तो मैंने कहा नहीं था, और फिर वह लड़का क्यों आया ?”

“वह अपने-आप नहीं आया, उसे अनु लायी थी। समझ सकती हो क्यों, एकान्त का सुयोग मिला था इसलिये ।”

“लेकिन अगर कोई देख लेता तो इसको लेकर दस बातें बनतीं, तब ?”

“यह वे लोग जानें, तुमने आने को कहा नहीं था ।”

जरा आश्वस्त हुई सीमा, तब भी एक कदुता-सी रह गयी मन में। बात उसे अच्छी नहीं लगी थी, उसका जो पहलू सीमा ने देखा था कपिल ने वह नहीं दिखाना चाहा था। कच्ची उम्र के लड़के-लड़कियाँ ऐसा सुयोग नहीं छोड़ते; और सुयोग मिलने पर इस क्षेत्र में जो कुछ होता है वही हुआ या नहीं, यही पूछना सीमा के लिए स्वाभाविक था क्योंकि ऐसी घटनाओं में एक मजा आता है। यही मजा कपिल सीमा को दिखाना चाहता था।

“तब भी लड़की कहीं विपत्ति में न पड़ जाय ।” सुनकर सीमा चौंकी जरा। “बहुत बड़ी गलती की है ।” सीमा ने भँवें सिकोड़ीं। “लेकिन मुझे तो यह सब अस्वाभाविक नहीं लगता ।” उत्सुक नेत्रों से देख रही थी सीमा। “जो कुछ हो गया है उसे स्वीकार कर लेना ही उचित है, प्यार एक ऐसी चीज है जो मन के अलावा और बहुत-सी चीजों पर निर्भर करता है ।” कपिल को ऐसा लगा कि सीमा मन लगाकर सुन रही है। “सिर्फ दूसरे किसी को खुश करने के लिए स्वयं का आत्मसमर्पण करना ही तो प्यार नहीं है, स्वार्थपरता मनुष्य-मात्र में होती है, वह स्वयं भी तो खुश होना चाहता है। यही मनुष्य का स्वभाव है; इसलिये उन लोगों ने कोई अन्याय नहीं किया है। लेकिन सब चीजों के बावजूद हम लोग चंद सामाजिक नियमों के अधीन होते हैं न, इसीलिए कह रहा था कि अनु शायद विपत्ति के मुँह में पड़ सकती है ।”

बात खत्म करते ही कपिल को लगा कि वह कुछ ज़्यादा बोल गया। प्रचार

जैसा हो गया। भले ही प्रचार पर बात तो ठोस थी; इससे सीमा की समझ में आ जायगा कि मैं बिल्कुल ही बेकार आदमी नहीं हूँ। काम-धंधा नहीं कर सकता, दैहिक आनन्द नहीं दे सकता, सुन्दर सुगठित चेहरा भले ही न रहे अब; पर सोच-विचार तो सकता हूँ।

सीमा खाट पर करवट लेकर लेट गयी। बीच की दूरी को इसी तरह रखते हुए कपिल कमरे में पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। गाल पर हाथ फिराते-फिराते बोला, “बताओ तो, शवल कैसी दिखायी दे रही है।”

सीमा ने हँसने की चेष्टा की—“ऐसी दूरी भी क्या है।”

कपिल अप्रतिभ हो गया। उसने सोचा था, सीमा कोई विशेष उपमा देगी।

“साफ़ कर देने से कैसा लगेगा, लड़के जैसा लगने लगूँगा, क्यों?”

“हाँ, साफ़ कर सकते हो, इसकी वजह से तकलीफ़ तो जरूर होती होगी।”

“थोड़ी तो होती है।” कपिल उत्साह में सीधा होकर बैठ गया, “क्या खुजली मचती है, लगता है खटमल फिर रहे हैं, कमरे में क्या नहीं है, छिपकलियाँ, तेलचिट्टे, मकड़ियाँ, चींटियाँ, दीमक।”

“दीमक! बाप रे बाप, बेंत की टोकरी तो सही-सलामत है न।”

कपिल चुप लगा गया। उस वक्त ऐसा लगा उसे जैसे वह बिल्कुल खोखला हो, रत्ती भर भी वजन न हो उसमें। अचानक बेंत की टोकरी के लिए परेशान होकर सीमा ने किस तरह उसकी अवहेलना करके उसे तुच्छ बना दिया था जब कि वह स्त्री-पुरुष के प्यार के विषय में कुछ कहने जा रहा था।

जम्हाई आयी सीमा को। अब वह जरूर कहेगी कि मैं सोऊँगी। लेकिन उसे यह कहने का मौका देने से पहले ही चले जाना उचित है। कपिल उठा।

“वे लोग क्या इसी विस्तर पर—“सीमा ने बात पूरी नहीं की।

“हो सकता है, कमरे से सब कुछ तो दिखाई देता नहीं।”

“नहीं देता। मैं तो सोच रही थी कि सब कुछ दिखाई देता है। अनु से कहना तो पड़ेगा।”

“क्या कहोगी? यहाँ आकर उन लोगों ने जो कुछ किया वह सब? पर तुम्हें पता कैसे लगा, यहाँ तो कोई था नहीं।”

मुझसे भी नहीं, यह सोचते हुए कपिल को कैसा तो लगा। और यह अस्तित्व-हीनता की जो अनुभूति है उस पर काबू पाना जरूरी है।

“वह जो ठीक समझूँगी कहूँगी! कहूँगी पड़ोसियों ने सितांशु को आते देखा था।”

कपिल को बुरा लगा। सीमा का इस तरह कहना उचित नहीं होगा। उन लोगों ने ऐसा कौन-सा अस्वाभाविक काम किया है। ऐसी जगह जो सब करते वही

उन लोगों ने भी किया है । मामला ही प्यार का है । इसे लेकर सीमा से तर्क किया जा सकता है, पर इस वक्त उसे नींद आ रही है, सुनना नहीं चाहेगी ।

कपिल छोटे कमरे में घुस गया । जरा देर बाद ही सुना, सीमा उठकर विष्णु से उसकी तबियत के बारे में पूछ रही थी । दो बार कहा, अस्पताल जाकर फिर से दिखाने की तारीख का ख्याल रखे । कपिल को याद आया सीमा स्कूल के सेक्रेटरी से मिलने गयी थी । तीन सौ रुपये का गोल-माल किया है सीमा ने; क्या बातचीत हुई उन लोगों में यह तो पूछा ही नहीं उसने ।

कपिल फिर आया सीमा के पास । सीमा लेट गयी थी ।

“स्कूल के उस मामले के बारे में बात हुई ?

“हूँ ।”

कपिल ने बाकी बात सुनने की प्रतीक्षा की ।

“देने नहीं पड़ेंगे, सेक्रेटरी मैनेज कर लेगा । उसके मकान का एक पोर्शन खाली है, सस्ते किराये पर देने को कह रहा है ।”

सीमा की बात खत्म होने की प्रतीक्षा की कपिल ने ।

“मुझसे लेने को कह रहा था । एक अच्छी ट्यूशन भी है उसके हाथ में । मैंने कहा है सोचकर बताऊँगी ।”

सुबह से कपिल जिस डर से मुक्त था वही फिर उस पर सवार हो गया । दूसरी किसी जगह क्या छुपे रहने के लिए ऐसा कमरा मिलेगा ? किस तरह सीमा को इस चौहद्दी में ही अटकाये रखा जा सकता है ?

अँधेरे कमरे में बैठकर कपिल ने सोचना शुरू किया । अधिक वेतन की नौकरी, सस्ते किराये का मकान, इन सबके लिए सीमा ने खोज-खबर लेनी शुरू कर दी है । यह भी स्वाभाविक ही है लेकिन कपिल को एक किनारे छोड़कर सोचना अस्वाभाविक है । दुश्चिन्ता के मुँह में पड़ गया कपिल । सीमा उसके लिए कितना सोचती है, कितना करती है ? निश्चय ही जरा भी नहीं । अब रिश्ता सिर्फ़ शादी भर का रह गया है । जिन कारणों से सम्बन्ध स्वाभाविक बन जाता है, उनमें से एक भी आज बाक़ी नहीं है । इस बारे में सीमा से कुछ भी कहने का वह अधिकारी नहीं है । तो फिर क्या किया जा सकता है ।

बाहर के दरवाजे की कुंडी खटखटा रहा था कोई । विष्णु से पहले ही सीमा ने उठकर दरवाजा खोला । गगन बाबू अपनी हमेशा की साहबी पोशाक में थे ।

हँसकर बोले, “कल खोज-खबर नहीं ले पाया, किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है।”

“नहीं नहीं, तकलीफ क्या होगी।” सीमा ने हँसकर जवाब दिया।

“सुना है आका नौकर बीमार है, सोदा-मुलुक कौन लाता है?”

“मैं ही ले आती हूँ।”

“आप कब तक लाइएगा। बीमारी अगर एक दिन में ठीक नहीं हुई तो। पशुपति से कहे देता हूँ, जो भी काम हो उससे कह दीजियेगा। भद्रता निभाने की कोई ज़रूरत नहीं है। बाहर वालों से प्रयोजन सिर्फ उन लोगों को नहीं रहता जो जिन्दा रहना नहीं चाहते, इसलिए आप सहज भाव से उससे काम करा सकती हैं। एक बात और। मुझे अभी काँचरापाड़ा जाना पड़ रहा है, एक चैरिटी शो का टिकट है आप उसका सद्व्यवहार कर सकती हैं।”

सीमा सोच में पड़ गयी, क्या जवाब दे। अटक-अटक कर बोली, “आपके टिकट पर मैं जाऊँ!”

“यदि अमुविधा हो तो और किसी को दे दूँगा, टिकट पर कोई नाम तो लिखा नहीं है कि मेरे अलावा कोई नहीं जा सकता।”

“नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं है, मुझे जरा काम है, एक जगह जाना है, नहीं तो ज़रूर चली जाती।”

“अच्छी बात है। हाँ, जो चाहिए पशुपति से मँगा लीजिएगा।”

गगन के चले जाने पर कमरे में जाने पर सीमा को ऐसा लगा जैसे कि कपिल कमरे के दरवाजे के पास खड़ा बातचीत सुन रहा था। कुछ देर लेटी रहकर सीमा उठी।

कपिल कमरे से नहीं निकला। सीमा अपने कमरे का छोटा-मोटा काम निपटा रही थी, खटपट सुनकर उसने इसका अन्दाज लगाया।

फिर दरवाजे की कुंडी खटकी। सीमा ने ही खोला। पशुपति खड़ा हँस रहा था, “बाबू जी ने आने को कहा था।”

“आओ।”

पशुपति अन्दर आया। कम उम्र का स्मार्ट लड़का था, कमरे में न घुसकर बाहर ही खड़ा रहा।

“विष्ट को क्या हुआ?”

पशुपति ने विष्ट की ओर ताक कर पूछा। दालान में एक किनारे विष्ट

लेटा था, उठकर बैठ गया। पाँच रुपये का नोट हाथ में लिये सीमा कमरे से निकली।

“बुखार आ गया है। बूढ़ा आदमी है, भाग-दौड़ नहीं होती उससे अब। तुम्हें एक पौंड की डबल रोटी, आधा सेर दूध और उबले हुए अण्डे मिल जायेंगे?”

“क्यों नहीं मिलेंगे, पर इतना क्या विष्ट खा लेगा?”

“इस वक्त खाना नहीं बनाऊँगी, दोनों वही खा लेंगे।”

“निरामिष क्यों, मांस ले आऊँ ? और रोटी ? बाबू जी तो कभी-कभी लाते हैं, बहुत अच्छा लगता है खाने में।”

“ठीक है, तो आठ साढ़े आठ तक ला देना, अच्छा ?”

पशुपति चला गया, दरवाजा खुला हुआ ही था, अनु आयी। सीमा गुसलखाने में थी; बाहर निकलते ही अनु बोली, “भाभी मुझे एक सिनेमा दिखाना पड़ेगा, तुम्हारे घर का पहरा दिया है।”

सीमा भीगे कपड़े सुखाने में व्यस्त रही। उसके बाद शीशे के सामने आकर खड़ी हो गयी। गर्दन पर पाउडर लगा रही थी कि अनु बोली, “तुम जूड़ा मत बनाओ भाभी। चोटी तुम्हारे मुँह पर बहुत अच्छी लगेगी; कर दूँ ?”

“नहीं रहने दे, बाहर जाना पड़ता है, स्कूल की किसी लड़की ने देख लिया तो ?”

“घर में चोटी किये रहो, बाहर जाते वक्त जूड़ा बाँध लेना।”

“किसको दिखाना है ?”

“भले न दिखाना हो किसी को, बैठो कर दूँ।”

सीमा को खींच कर कुर्सी पर बैठा दिया अनु ने और कंधा लेकर पीछे जा खड़ी हुई।

“तुम लम्बी खूब हो भाभी, तुम्हारे जैसे फिगर अगर मेरे होते न...”

“होते तो क्या होता ?”

अनु ने जवाब नहीं दिया।

“क्यों बताया नहीं, क्या होता ?”

“जो देखता है वही तुम्हारे फिगर की प्रशंसा करता है, क्या गढ़न है।”

“कौन प्रशंसा करता है ?”

“अच्छा भाभी, कपिल भैया तो अब आयेंगे नहीं, है न ? तो तुम अब क्या करोगी ?”

सीमा ने जवाब नहीं दिया।

“इसी तरह रहोगी ?”

जवाब के लिए अनु कोई बहुत उत्सुक नहीं थी। कंधे से बाल निकाल कर गली में फेंक दिये।

“मेरी एक दूर के रिश्ते की मौसी का भी ऐसा ही हुआ था। शादी के तीन दिन बाद ही पति गहने लेकर चम्पत हो गया था। सारा जीवन भाइयों की गृहस्थी चला कर एक दिन मर गयी। भाइयों ने दूसरी शादी करनी चाही थी पर वह किसी तरह भी तैयार नहीं हुई। अच्छा, तैयार हो जाती तो अच्छा ही करती, दुःख पाकर भी क्या मिला !”

“बहुत मत खींच, जूड़ा बांध दे।”

“तुम्हारी क्रीम की शीशी जैसी की तैसी पड़ी है, लगाती नहीं हो ? अगर नहीं लगातीं तो मैं ले जाऊँगी उठा कर।”

“नहीं, ले मत जाइयो री, हाँ सिनेमा जाने को कह रही थी, कितने बजे हैं इस वक्त ?”

“चलोगी ?” अनु उछल पड़ी, “साढ़े पाँच बजे हैं, अभी चलो तो टिकट मिल सकते हैं, आज छुट्टी का दिन वैसे है।”

“तो छोड़, रहने दे।”

“नहीं, नहीं, चलो भाभी, चलो ना, मेरी बड़ी अच्छी भाभी।”

सीमा के गले में हाथ डालकर लाड़ली लड़की की तरह गोद में लेट गयी।

“तू बड़ी बदतमीज हो गयी है।”

पाँच मिनट में तैयार होकर सीमा अनु को लेकर निकल पड़ी। विष्ट ने दरवाजा बंद कर लिया। कपिल ने छोटे अँधेरे कमरे में पाँव फैला दिये। इतने दिनों से जो नींद नहीं आ रही थी, वही नींद आँखों में भर आयी।

✱

गत सप्ताह तीन जने आये थे। विद्युत चार साल सीमा के साथ कालेज में पढ़ा था। उन दिनों घर के, बाहर के सबने कहना शुरू कर दिया था कि वे प्रेम में पड़ गये हैं। पहले शादी हुई विद्युत की। कई दिनों तक तो इससे सब आश्चर्यचकित रहे। अब एक तो परिचितों से मिलना-जुलना हो नहीं पाता और अगर हो भी जाता है तो वे लोग बातचीत वर्तमान तक ही सीमित रखते हैं। विद्युत आजक्ल राइटर्स बिल्डिंग में हेड-वलर्क है। हाथखर्च चलाता है रविद्वार

के समाचार-पत्र में छोटे-छोटे लेख लिखकर ।

सीमा अवाक हो गयी थी । चाय पीने के बाद विद्युत बोला, “अकेले दिन काट रही हो, तकलीफ नहीं होती ।”

सीमा सतक होकर बोली, “अकेले से क्या मतलब है तुम्हारा ?”

“अर्थात् गृहस्थी अकेली चला रही हो, स्कूल की तनखाह ही कितनी होती है । दिन पर दिन चीजों के दाम जो बढ़ते जा रहे हैं ।”

“वह तकलीफ तो है ही ।”

“सुना था यह फ्लैट कपिल बाबू ने ४० रु० महीने पर अपने एक दोस्त से लिया था, किराया अभी भी वही है ?”

“हाँ, उनके मित्र जाते समय हमें दे गये थे । क्यों ?”

“मेरी एक दूर के रिश्ते की साली जबलपुर से बी० ए० करने के लिए आ रही है, तुम उसे पेइंगगेस्ट रक्खोगी ?”

“मेरे पास दूसरा कमरा कहाँ है ?”

“क्यों, वह बगल का कमरा !”

“वह भी कोई कमरा है !”

“किसने कहा नहीं है, पहली बार जब आया था तो देखा था ।

सीमा के कुछ समझाने से पहले ही विद्युत ने छोटे कमरे का भिड़ा हुआ दरवाजा खोल दिया ।

“अंधेरा है, स्विच कहाँ है ?”

सीमा उठ आयी । विद्युत को रोकने की कोशिश करती हुई बोली, “बिजली नहीं है इस कमरे में ।”

“टॉर्च है ?”

“नहीं ।”

विद्युत जेब से दियासलाई निकाल रहा था, सीमा दरवाजा बंद करके बोली, “अरे हटो भी, पागल हुए हो क्या, मरे हुए आदमी को भी इस कमरे में नहीं रक्खा जा सकता और तुम शीला को लाकर रखने की बात कर रहे हो । मेरा जितना भी आलतू-फालतू सामान है सब उस कमरे में भरा हुआ है ।”

विद्युत का हाथ पकड़ कर सीमा खींचती हुई ले आयी । उसको खाट पर बैठा कर सामने खड़ी हो गयी ।

“है तो एक लड़की ही, इसी कमरे में दो जने आसानी से रह सकते हैं ।

उसमें तो तुम्हें कोई असुविधा होने की बात है नहीं, वरन् पचासेक रुपये ही मिल जायेंगे, तुम्हारा ही फायदा है।”

“वह तो ठीक है, पर कोई उपाय नहीं है, असम्भव है।”

“कह-सुन कर और दसेक रुपये बढ़वा सकता हूँ, मेरे घर में तो रस्ती भर भी जगह नहीं है इसलिये नहीं रख सकता, होस्टल में शायद सीट मिल सकती है। तुम्हारा ख्याल आया कि जरूर तंगी में होगी, आजकल रुपया-पैसा बड़ी चीज़ है, इसीलिए तो !”

सीमा हँसी, अबकी बार वह कुर्सी पर बैठ गयी। मुँह फिराकर शीशे में स्वयं को देखा।

“रुपया ? हाँ, है तो बहुत जरूरी चीज़।”

“हम तीन भाई नौकरी करते हैं, लेकिन तब भी हर महीने के अंत में जो हालत हो जाती है—”

विद्युत और थोड़ी देर बैठकर चला गया। छोटे कमरे में दरवाजे के पीछे कस कर हथौड़ी पकड़े कपिल सोच रहा था, बच गया। दियासलाई नहीं जलाने दी इसीलिए उसे सीमा के प्रति जीवन भर कृतज्ञ रहना चाहिए।

दूसरे दिन आया एक और आदमी, सीमा के स्कूल के सेक्रेटरी शान्तिसेन। करीब पचास के होंगे, नाटे, गोरे, शौक्तीन। कलकत्ते में पाँच मकान थे, दो सराफे की दुकानें थीं और ग्रेजुएट थे।

बैठाने की जगह थी वही सोने वाला कमरा। शान्ति को कुर्सी पर बैठा कर सीमा खाट से लगकर खड़ी हो गयी। सिर घुमाकर कमरे को अच्छी तरह चारों तरफ से देखकर वे बोले, “आप घर सजाना अच्छा जानती हैं।”

सीमा हँसी।

“मेरे घर में स्पेस खूब है तो क्या, कल्चर्ड ‘वे’ से रहना नहीं जानते; रोज कहता हूँ तब भी गंदा ही पड़ा रहता है। आप आ जाँयगी तो वे लोग देखकर सीख जाँयेंगी।”

“मैं !”

“हाँ, उस दिन कहा था न। बिल्कुल सैपरेट है, कोई असुविधा नहीं होगी। जो किरायेदार था वह चला गया है। अब सोच लिया है किराये पर नहीं दूँगा।”

सीमा के मुँह के भावों में परिवर्तन हुआ, उसको लक्ष्य करके शान्ति बोले, “समझ गया। आप क्या सोचती हैं वह तो नहीं मालूम ! कानाफूसी मेरे कानों तक भी पहुँची है, सोच कर देखा रुपयों के लिए इतनी बात बढ़ाना ठीक नहीं हुआ।

गर्ल्स स्कूल के सेक्रेटरी पर सभी शक करते हैं। आज मैं यह कहने आया था कि रुपये आप दे ही दीजिये।”

सीमा के मुँह के भाव गंभीर हो उठे। जेब में हाथ डालते-डालते शान्तिसेन बोले, “रुपय साथ ही ले आया हूँ, आप कल ही आफिस में जमा करके एक रसीद ले लीजियेगा।”

सौ-सौ रुपये के तीन नोटों की ओर देखकर सीमा ने बहुत आपत्ति की। लेकिन शान्तिसेन जिद पर अड़ गये थे। हालाँकि रुपये देने का उसका नैतिक अधिकार नहीं था, लेकिन मामला अब प्रेस्टिज-रक्षा के प्रश्न का हो गया था और सीमा की प्रेस्टिज खत्म होने पर उनकी भी नहीं रह सकती।

“अरे बाप रे, आपको अभी तक चाय भी बनाकर नहीं दी, देख रहे है मैं कितनी स्वार्थी हूँ।”

“नहीं, नहीं, आज मैं चाय पीने नहीं आया, फिर किसी दिन आकर—”

“अच्छा, आप इतने भुलवकड़ क्यों हैं ! कुर्त्ता नया है, पर ऊपर की जेब फाड़ दी है और वही पहने आ गये है, खराब लगती है, निकाल दीजिये सिलाई कर दें।”

शान्तिसेन बेवकूफ की तरह देखते रहे। सीमा आगे आकर बोली, “निकालिये, चाय बनेगी तब तक सिलाई हो जायगी।”

नोट बिस्तर पर रखकर कुर्त्ता उतारा उन्होंने। शर्म से संकुचित से हो गये वे। बनिआइन गंदी-सी थी, भुसकुराकर बोले, “आपके आगे चलनी मुश्किल है।”

“पानी चढ़ा आऊँ।”

सीमा के कमरे से निकलते ही कुर्त्ते की जेब से रुमाल निकालकर गर्दन जोर-जोर से रगड़ी शान्ति सेन ने, शीशे में मुँह देखकर बालों में हाथ फिराया। तभी बाहर के दरवाजे की कुंडी खटकी।

शान्तिसेन के कान खड़े हुए। किसी लड़की की आवाज थी, जानी-पहचानी-सी लगी, स्कूल की कोई थी।

“इसी मुहल्ले में आयी थी। तुझसे कहा नहीं था कि मेरी एक मौसेरी बहन तेरे ही मुहल्ले में ब्याही है। बच्चा हुआ है उसके, इसलिये देखने आयी थी, सोचा तेरे यहाँ भी होती चल्।”

कमरे की तरफ आती हुई चप्पलों की आवाज स्पष्ट होती जा रही थी। व्याकुल होकर शान्तिसेन ने चारों तरफ देखा, छुपने की जगह ढूँढ़ रहे थे। यहाँ तक कि

खाट के नीचे भी देखा। अचानक छोटे कमरे के दरवाजे पर नजर पड़ी। उछल कर दरवाजे के पास आये, ठेलते ही खुल गया। घुसते ही बन्द कर लिया।

कमरे में सीमा के साथ उसके स्कूल की ही एक सहकर्मिणी शिवानी घुसी। खाट पर बैठ कर ही बातें करनी शुरू की। सीमा की नजर कुर्ते पर पड़ी, शिवानी देखेगी तो शंका करेगी। पूछेगी कि यह यहाँ कैसे आया। अतः वहाँ से कुर्ता हटाने के लिए सीमा उद्विग्न हो उठी।

“जवाब नहीं दे रही है, खोज-खबर मिली कुछ ?”

“किसकी ?”

“चल मर ! इतनी बड़ी बात हो गयी और तू उदासीन बनी बैठी है ! पुलिस तो खोज-खबर कर ही रही है, तू भी कर—।”

“अब कहाँ करूँगी और करने से फायदा भी क्या है।”

कुर्ते पर नजर पड़ने से पहले ही उसे हटाना पड़ेगा। सीमा का लक्ष्य अब उसी ओर था। बात का जवाब तो कुछ भी दिया जा सकता था। शिवानी कुछ देर सीमा के मुँह की तरफ ताकती रही। चिन्ता उसके मुँह पर भी थी।

“तो फिर अब क्या करेगी ? रिश्तेदार क्या कहते हैं ?”

“कोई कहेगा क्या, रिश्तेदारी हो तब तो। सबके मना करने पर अपनी जिद की शादी की थी, अब दाँत निकाले हँस रहे हैं सब। लेकिन मैं भी उनके पाँव पकड़कर भीख माँगने नहीं जा रही हूँ। इतना याद रखना मेरे पास सब कुछ है। शरीर है, सामर्थ्य है, जिंदा रहने लायक विद्या-बुद्धि है, मित्र भी हैं, आखीर तक निभ ही जायगा।”

“जिंदा रहना तो मुश्किल नहीं है, लेकिन—”

“लेकिन क्या, कुछ मुश्किल नहीं है। बेवकूफ, डरपोक ही डर से परेशान होते हैं, जिंदा रहना और टिके रहना एक नहीं है, मैं जिंदा रहूँगी, जीवन में प्रयोजनीय सुखों का अभाव मुझे नहीं होगा।”

“तू क्या फिर से शादी करेगी ?”

हँस पड़ी सीमा। उसको हँसते देख शिवानी को भी हँसी आ गयी।

“चाय का पानी चढ़ा कर आयी हूँ। चल रसोई में चलें।”

कमरे से निकलते ही सीमा बोली, “तू केतली उतार कर रख, मैं जरा ड्राअर में चाबी लगा आऊँ। मेरा नौकर विश्वास का नहीं है।”

सीमा ने कमरे में आते ही कुर्ता गद्दे के नीचे छिपाकर रख दिया। इसके बाद चाय पीकर दसक मिनट बैठकर शिवानी चली गयी। और उधर अब तक अंधेरे

में हथौड़ी उठाये पसीने-पसीने हो गया शान्तिसेन की बगल में खड़ा कपिल सच्चे हृदय से प्रार्थना कर रहा था कि वह उसे देख न ले; क्योंकि कपिल को उनके जीवन से अपना जीवन कहीं अधिक प्रिय था। शान्तिसेन के चले जाते ही कपिल अवसाद से लेट गया।

और तीसरा था सितांशु। उसको देखकर भी सीमा अवाक् हुई थी। बुलाकर कमरे में बैठाया उसे। काँपते स्वर में सितांशु बोला, “अनु ने कहा था, आप मेरी कहानी पढ़ना चाहती थीं?”

“हाँ, उसी से तो सुना था कि तुम लिखते भी हो, क्या लिखते हो?”

चतुर स्मार्ट लड़का, लड़कियों की तरह हँसकर कुर्ते की बाँह से आँखें रगड़ें उसने, बोला, “ऐसा कोई खास काम नहीं, बस जब जो जी में आ जाता है लिख लेता हूँ थोड़ा बहुत।”

कहते-कहते जेब से कहानी निकाली उसने। हाथ से लिखे हुए करीब आधा दस्ता कागज थे। सीमा पन्ने पलटने लगी और सितांशु एकटक उसके मुँह की ओर देखता रहा। एक जगह कुछ पढ़कर सीमा बोली, “यह सब क्या लिखा है, है...मुझे लेकर लिखा है?”

वहाँ से निकलकर भागने के लिए सितांशु जैसे मौका ढूँढ़ने लगा। हताश होकर बोला, “आप उस रूप में क्यों देखती हैं, ऐसा तो किसी से हो सकता है।”

“वह तो ठीक है। पर यह जो लिखा है, सन्यासी बनकर चले जाने के बाद नायिका ने अकथनीय कष्ट के साथ संग्राम शुरू किया। किसी सगे-संबंधी का सहारा नहीं, रुपया-पैसा नहीं था, मित्र नहीं थे, सिर्फ एक बूढ़ा नौकर था और स्कूल-मास्टरी—”

“नहीं नहीं, आगे मत पढ़िये।”

सितांशु ने हाथ बढ़ाया, कागज छाती के पास हाथों से दबाकर सीमा पीछे को लेट-सी गयी। बच्चों जैसे बोली, “वाह, कहानी तो पढ़ने के लिए ही लिखी जाती है।”

“मेरे जाने के बाद पढ़ियेगा, अभी नहीं;”

“ऊँ हूँ, मैं तो सामने ही पढ़ूँगी।”

“तो फिर मैं जाता हूँ।”

भट से उठकर सीमा ने दरवाजा बंद कर दिया। मुँह पर हँसी थी, बोली, “किसी और के बारे में भी लिखा है शायद, कौन है वह? तुम ही हो क्या?”

“बिल्कुल नहीं, कोई भी हो सकता है। इसके अलावा मैंने लिखा है सन्यासी हो गया। आपके पति तो खून करके फरार हैं, दोनों एक हो जायेंगे ?”

“क्यों नहीं, वे लोग इन्सान के किसी काम आते नहीं, फालतू चीजों से अधिक उनका क्या मूल्य है ? तुमने लिखा है पति के अभाव में ही मुझे, साँरी तुम्हारी नायिका को कष्ट है। तुमने कैसे जाना ? मुझे क्या कष्ट है उसका क्या तुम अनुमान कर सकते हो ?”

दिग्भ्रान्त की तरह पहले तो सितांशु देखता रहा, अंत में सिर हिलाया उसने।

“तुमने तो कहानी के अंत में सन्यासी स्वामी को फिर से वापस लाकर गृहस्थ बना दिया, क्यों ? मुझे तो ऐसा ही लगा।”

सितांशु ने सिर हिलाया।

“मेरे पति को क्या तुम गृहस्थ बना सकते हो ? पर किस उपाय से, किस घटना के द्वारा ? सिर्फ एक उपाय है, यदि यह साबित कर दिया जाय कि जिसका खून किया था, असल में वह उसके मारने से नहीं किसी और कारण से मरा है या वह मरा नहीं; लेकिन यह तो संभव ही नहीं है क्योंकि खून सचमुच हुआ है। तो फिर क्या उपाय हो सकता है ?”

सिर हिलाया सितांशु ने।

“तो फिर मेरे लिए क्या बचा ? बचा इस अर्थ में कि जीवन का अभी काफी भाग पड़ा है, मान लो और चालीस साल बाकी हैं। इस लम्बे समय तक सिर्फ दुख, शोक, कष्ट, विरह आदि की ज्वाला में जलती रहूँ ? किस लिए, कौन से अपराध से ? शरीर को बचाये रखने का नाम जिंदा रहना नहीं है। जिंदा रहने की कोशिश करने का अधिकार सबको है, फिर मुझे क्यों नहीं होगा ? पर वह तुम भी जानते हो कि वह कोशिश करने की जरा क्षमता मुझमें नहीं है।”

सूखे गले से सितांशु बोला, “क्यों ?”

“इसलिये कि विवेक हर वक्त अपनी दो परोक्ष आँखों से मेरी गतिविधि को लक्ष्य करता रहता है, हर बात वह देखता-सुनता है, मेरे ऊपर पत्थर की तरह चढ़ कर बैठा है, उसको हटाने का कोई उपाय नहीं है और वह अपने-आप भी नहीं हट सकता। जीवन भर वह मुझे सजा देता रहेगा, हालांकि मैं अपराधी नहीं हूँ। एक उपाय है—वह यह कि उस विवेक का खून कर दूँ। लेकिन देखो जब बिना कोई अपराध किये मुक्त का उपाय ढूँढ़ पाना सम्भव नहीं है तो फिर अपराध करके दूसरे को भी सजा के बन्धनों में बाँधने के अलावा और क्या हो सकता

है। कितनी प्रबल होती है इस अपराध की इच्छा; हीन है तो भी अनिवार्य है। इससे मैं रिहाई पाना चाहती हूँ, यह क्या तुम जानते हो ?”

आँखें फाड़े देखता रहा सितांशु। कमरे में चहलकदमी कर रही थी सीमा, नथुने फूल गये थे, गालों की नसें थरते लगी थीं। अचानक रुककर बोली, “मान लो मेरा पति मेरे साथ ही रहता है, मान लो वह बगल के इसी कमरे में छुपा रहता है, अवश्य ही विरह जैसी कोई बात नहीं रहेगी, तब उस वक्त मेरी परिस्थितियाँ क्या होंगी ?”

सीमा ने छोटे कमरे का दरवाजा खोल दिया और वहीं खड़ी-खड़ी सितांशु से बोली, “आकर देखो, ऐसी जगह में कुत्ते-बिल्ली के अलावा और कोई नहीं रह सकता। यदि जान बचाने के ताकाजे से ऐसी जगह ही जीवन गुजारने को कोई ठीक समझे, यदि कोई यह सोचे कि इस संकीर्ण चारदीवारी में ही ज़िन्दा रहा जा सकता है तो तुम उसे मूर्ख कहोगे कि नहीं ? तब उस मूर्ख को ज़िन्दा रखने के लिए पत्नी के नाते, हाँ सिर्फ इस सम्पर्क के नाते मुझे जीवन भर कर्त्तव्य का बोझ उठाना पड़ेगा, जब कि मैं गधे की तरह ज़िन्दा नहीं रहना चाहती। और जो कुछ चाहती हूँ उसे पूरा करने में दीर्घकाल के अभ्यास से उत्पन्न कुछ धारणाएँ बाधा डालती हैं। अभ्यास की क्षमता बहुत अधिक होती है और उधर नयी इच्छाओं का आकर्षण भी कम नहीं होता। नये को स्वीकार कर लेने पर भी पुरानी धारणाएँ उससे लगी ही रहती हैं, बिल्कुल नहीं छोड़ी जातीं। यह मैं जानती हूँ, इसीलिए समझौता करते-करते सारा जीवन बीत जाएगा। पूर्णरूप से नयी अवस्था में कभी भी नहीं रहा जाता। इन दोनों के बीच में झूलना ही यन्त्रणादायक है। मेरी यह यन्त्रणा किस तरह मिट सकती है, यह क्या तुम बता सकते हो ?”

बेवकूफ की तरह सितांशु ने सिर हिलाया। नाक पर पसीने की बूंदें चमक आयी थीं, लेकिन सीमा पर से नज़र भी नहीं हटा पा रहा था।

“यह सब बातें तुमसे कहने का कोई फ़ायदा नहीं है, तुम उसका क्या जवाब दोगे, तुम तो बिल्कुल बच्चे हो।” क्लान्त भंगिमा से सीमा हँसी, “पर मान लो, वह इस वक्त आये, उस छोटे कमरे में से मानलो निकल आये तो...” सीमा कुछ कदम पीछे हटकर दरवाजे की तरफ मुँह करके खड़ी हो गयी, “तो उससे पूछती, अन्दाज़ लगाओ तो क्या पूछती ?” उत्तर की प्रतीक्षा में सीमा देखती रही।

गला खखार कर सितांशु बोला, “किस अधिकार से आप यन्त्रणा सहेंगी।”

“ठीक, बिल्कुल ठीक, देख रही हूँ बुद्धि है तुममें ! हाँ यही पूछूंगी।” सीमा

दरवाजे की तरफ घूमकर खड़ी हो गयी, “कहूँगी अधिकार का अर्थ होता है करार । कुछ शर्त मानकर चलना पड़ता है, तुमने पालन की हैं, वे शर्तें ? तब शायद वह कहेगा, जरूर की हैं, खाना-कपड़ा, आश्रय, सुख, आनन्द इत्यादि दिया है । सामाजिक मर्यादा के एक स्तर पर भी पहुँचा दिया है; इत्यादि, इत्यादि.....एक लम्बी फेहरिस्त देगा; अर्थात् उल्टे मुँह पर कृतज्ञता का दावा करेगा । तब क्या कहूँगी मैं ? कृतज्ञता भी अजर-अमर नहीं होती, शर्त पालन न होने पर उसका भी क्षय होने लगता है । कृतज्ञता को शोध करने की परिस्थिति में घसीट लाने पर अधिकार का दावा नहीं रह जाता । तुम क्यों लौट कर आये हो ? दावे के बल पर ही न । पर दावा करने लायक तुम्हारे पास है क्या ? तुम तो खत्म हो चुके हो, बेकार हो गये हो, समाज को तुम्हारी अब कोई जरूरत नहीं रही, अब कोई तुम्हें ग्रहण नहीं करेगा । अब तुम स्वार्थी हो गये हो, क्योंकि शरीर को टिकाये रखने के अलावा और कोई विचार तुम्हारे मन में आ ही नहीं सकता । उसके लिए मोटी-मोटी बातों को लेकर तुम्हें व्यस्त होना ही पड़ेगा । जैसे मान लो, क्या खाओगे, किस तरह छुपे रहोगे, उस तरह रहकर कितना सुख बटोरा जा सकता है आदि; भविष्य के लिए संचय करने की बात भी दिन-रात सोचोगे । इन सब में मुझे भी शामिल करोगे, मुझे भी हीनता के बीच घसीट कर ले जाओगे; लेकिन मैं क्यों जाऊँ ? एक मनुष्य को दूसरे को नष्ट करने का क्या अधिकार है ? वह कहेगा अधिकार नहीं है, दया करुणा है । यह सब ही तो पूर्वधारणाएँ हैं ।

“मुझे इस यन्त्रणा में भोंकने के लिए क्यों आये हो तुम । निकल जाओ, मैं कहती हूँ कि साहस हो तो निकल जाओ !”

चिल्लाने की वजह से सीमा हाँफने लगी थी । बीमार विष्ट दरवाजे के पास खड़ा विस्फारित नेत्रों से देख रहा था ! सितांशु ने आगे बढ़कर हाथ फैलाये, शायद सीमा को पकड़ना पड़े यह सोचकर । छोटे कमरे का दरवाजा खुला हुआ था । सीमा एकटक उधर देख रही थी मानों यह आशा कर रही हो कि उस कमरे से कोई निकल आयेगा ।

“भाभी ।”

धीरे से डरते-डरते विष्ट ने पुकारा । घूमकर देखा सीमा ने । “क्या है, क्या चाहिए तुम्हें ?” गले का स्वर और चढ़ गया । हाथ नचाकर बोली, “किसने कहा था इस कमरे में भोंकने के लिए ? किसी भी तरह रिहाई नहीं है, जरा सी देर के लिए भी चेन नहीं मिलेगी । जब तक रिहाई न मिल जाय, हर वक्त दया, माया, करुणा का बोझा सिर पर लिये फिरना होगा । क्यों वे लोग चले नहीं जाते ।”

खाट पर बैठ गयी सीमा । विष्टू धीरे-धीरे बरामदे के कोने में अपनी जगह लौट गया । सितांशु ने बिखरे हुए कागज समेटे और “चलूँ” कहकर विदा ली । छोटे कमरे का दरवाजा खुला ही पड़ा रहा ।

खुले हुए दरवाजे से दूसरे कमरे का प्रकाश आ रहा था । कपिल बैठा एकटक देख रहा था । हथौड़ी सामने ही रखी थी, जरूरत पड़ सकती है, यह सोचकर हाथ के पास ही रख ली थी, लेकिन जरूरत पड़ी नहीं । सीमा शायद अभी भी खाट पर उसी तरह बैठी थी । कपिल को भपकी आ रही थी । अनु की माँ किसी के साथ चिल्ला-चिल्ला कर बातें कर रही थी । खिड़की बन्द कर देने की इच्छा रहते हुए भी कपिल उठा नहीं । पास के प्लैट में मांस पक रहा था, खुशबू से दिल भर कर उसने सोचा जाने कब से भर पेट खाने को नहीं मिला । सोचते-सोचते फिर भपकी आ गयी उसे । सीमा बहुत अच्छा मांस बनाती है, कल अगर वह मांस ले आये तो कितना अच्छा हो । हे भगवान कल ऐसा ही हो । और कपिल सो गया ।

*

सीमा स्कूल से बुखार लेकर लौटी । आते ही लेट गयी । शाम से रात हो गयी । घर में बत्ती नहीं जलायी, उठी भी नहीं, खाया भी नहीं । विष्टू उसका खाना कमरे में ढक कर रख गया । कपिल ने उसमें से करीब आधा लेकर बाकी को जैसा का तैसा रख दिया ।

दूसरे दिन सुबह भी सीमा नहीं उठी । छटपटाहट शुरू हो गयी । अच्छी तरह समझ में आ गया बुखार है । विष्टू ने फिर उसे खाने को कुछ नहीं दिया । माथे पर पानी की पट्टी रखकर पंखा तेज कर दिया । कपिल भूखा ही रहा ।

दूसरे दिन भी बुखार उतरने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया । आफिस से लौटकर गगन खबर लेने आये थे, बुखार की बात सुन कर कमरे में आये । उनको देखकर कपड़े ठीक करके सीमा ने शालीन बनने की चेष्टा की । उद्विग्न होकर गगन बाबू बोले, “खा क्या रही हैं ?”

“कुछ भी नहीं ।”

“टेम्परेचर कितना है ?”

“देखा नहीं है, थर्मामीटर नहीं है ।”

सीमा के माथे पर हाथ रखकर बुखार समझने की कोशिश की ।

“इस तरह तो चलेगा नहीं, कुछ न कुछ करना चाहिए। अच्छा मैं आता हूँ।”

गगन बाबू एक ग्लास दूध और थर्मामीटर लेकर लौटे। बुखार देखा, एक सी दो।

“दूध रहने दीजिए। ग्लूकोस बना देता हूँ। चुपचाप लेटी रहिए। अगर कल बुखार कम नहीं हुआ तो डाक्टर को खबर देनी पड़ेगी।”

“बुखार भी ऐसी क्या बीमारी है, उसके लिए आपको बेकार परेशान होने की जरूरत नहीं है।”

सीमा की बात पर कान न देकर गगन बाबू चले गये। दूध का ग्लास ले जाना भी याद नहीं रहा। आधी रात को छोटे कमरे से निकल कर कपिल ने दूध पी लिया।

सुबह ही गगन बाबू आये। सीमा के माथे पर हाथ रखकर बुखार देखा। थर्मामीटर भी लगाया। सीमा वेसुध पड़ी थी। दूध के ग्लास की तरफ देखकर भवें सिकोड़ीं, मन ही मन बुड़बुड़ाते हुए विष्णू को बुलाया। विष्णू को आने में कुछ देर लगी, चूल्हा जला रहा था वह। अपने लिए कुछ न कुछ तो बनाना ही पड़ता। अवश्य उसके शरीर में भी रोगों ने डेरा डाल रखवा था। वृद्धावस्था के स्वाभाविक रोगों ने उस पर कब्जा जमा लिया था।

गगन बाबू काफी गंभीर स्वर में बोले, “ध्यान रखना, अब खाने की कोई भी चीज लाना ठीक नहीं होगा। कल दूध रख गया था, पी लिया है।”

विष्णू ने सिर हिलाया।

“मैं डाक्टर को बुलाने जा रहा हूँ।”

गगन बाबू चले गये। जरा देर बाद ही अनु आयी। कुछ काम नहीं था उसे करने को। बिस्तर पर बैठकर सीमा के साथ दो-चार बात करने की चेष्टा की पर कोई फल नहीं निकला। कमरे से निकलते ही विष्णू ने बुलाया—

“दिदिमणि, थोड़े से चावल दोगी?”

“क्यों?”

विष्णू हंसा, “क्यों क्या, इस वक्त तो चल जायगा पर उस वक्त क्या खाऊँगा? ऐसे तो भाभी के पास हैं।”

“भाभी कहाँ रखती हैं, मालूम नहीं है?”

“रखती तो बैग में हैं और बैग दराज में रहता है। पर पूछे बिना लेना ठीक होगा क्या?”

“अच्छा चावल दे जाऊँगी।”

अनु के जाने के बाद ही गगन बाबू डाक्टर को लेकर आये। देखकर डाक्टर ने कहा, खून लेना पड़ेगा। शुरु से ही सावधान रहना अच्छा है।

दोपहर को शान्ति-सेन आये। आद्योपांत सब कुछ सुनकर बहुत विचलित हो उठे।

“रक्त-परीक्षा की रिपोर्ट क्या कल ही मिलेगी?”

“मुझे तो मालूम नहीं।”

गुस्सा आया शान्तिसेन को विष्ट पर। उसे दवाकर मुलायम स्वर में बोले, “मालूम करके उसी के मुताबिक इन्तजाम करना पड़ेगा। ज्यादा हुआ तो किसी नर्सिङ्ग होम-वोम में भेजना पड़ेगा।”

कुछ देर बाद वे चले गये। शाम के करीब आकर अनु चावल दे गयी। सीमा के कमरे में भी कुछ देर बैठी। रात को गगन बाबू आकर सीमा को देख गये। जाते वक्त विष्ट से पूछा कौन-कौन आया था।

सोने से पहले, बत्ती बुझाने के लिए विष्ट कमरे में घुसा। स्विच-बोर्ड के नीचे टेबिल थी। सीमा का हैंडबैग ऊपर ही रखी था। रोज घर लौटते ही दराज में रख देती थी, उस दिन रखना भूल गयी थी। जरा हिचकिचाया विष्ट, बैग उठाकर सीमा के तकिये के नीचे रख दिया।

आधी रात को कपिल कमरे से निकला। इधर-उधर छानबीन की पर एक टुकड़ा भी खाने को नहीं मिला। अपने कमरे में लौटकर वह लेट गया। बहत्तर घंटों में सिर्फ एक ग्लास दूध मिला है, इसके बाद? आगे की बात ख्याल में आते ही कपिल के रोंगटे खड़े हो गये। मैं ज़िदा कैसे रहूँगा? सारी रात उसे नींद नहीं आयी।

*

रक्त-परीक्षा से बीमारी का पता नहीं चला। सेवा करने के लिए गगन बाबू ने छुट्टी ले ली। शान्तिसेन ने सीमा की समुदाय व पीहर खबर करनी चाही थी लेकिन गगन बाबू ने आपत्ति की थी, “उनमें से किसी के साथ भी इनका कोई सम्पर्क नहीं है, खबर देना बेकार है, कोई नहीं आयेगा।”

“आपने कैसे जाना?”

“क्यों, जब इतनी बड़ी बात हो गयी थी तब तो किसी को आते नहीं देखा। थाना-पुलिस सब मुझे ही करना पड़ा।”

शान्तिसेन का उत्साह ठंडा पड़ गया। तब भी अंतिम चेष्टा करते हुए बोले,

“दोनों तो एक चीज नहीं थी, वह था उनके पति के अपराध का मामला और यह है उनके अपने प्राणों की खींचतान का मामला। इन्होंने तो कोई अपराध नहीं किया।”

गगन ने विरक्ति दिखायी। वे लोप आकर भी क्या करेंगे, इससे अच्छी चिकित्सा की व्यवस्था तो हो नहीं सकती।

शान्तिसेन भी उत्तेजित होकर बोले, “औरतों की सेवा औरतों को ही करनी चाहिए। आत्मीय-स्वजन, अपने आदमी जो कर सकते हैं वह आप तो कर नहीं सकते। मेरे ख्याल से हास्पिटल या नर्सिंग-होम में रखना उचित है, नहीं तो यहीं पर नर्स रखनी चाहिए, खर्च मैं दूंगा।”

गगन बाबू ने जरा गुस्से से देखा। कहने के लिए जैसे बहुत कुछ था पर बिना कुछ कहे ही उत्सुकता-रहित स्वर में बोले, “ठीक है, तो नर्स ही रख लीजिये। और खबर भी विष्ट से पता लेकर भिजवा दीजिये।”

यह कह कर गगन बाबू चले गये।

शाम को विष्ट ने लौट कर खबर दी कि सीमा के भैया ने कहा है उनके दोनों लड़कों को बुखार आ रहा है, उनके जरा ठीक होते ही आकर देख जायेंगे। सुन कर खुश हुए गगन बाबू। शान्ति-सेन ने नर्स रखने पर बार-बार जोर दिया। सितांशु व अनु पूरी शाम सीमा के बिस्तर के पास बैठे अपनी-अपनी कहते-सुनते रहे। रात को कपिल ने कमरे से निकल कर फिर खोजा पर मिला कुछ नहीं। दूसरे दिन ही शान्ति-सेन नर्स बुला लाये।

जोर-शोर से सीमा का इलाज शुरू हुआ। दिन व रात की अलग-अलग दो नर्से थीं। उनके खाने का भार लिया गगन बाबू ने। सीमा का बुखार एक हफ्ते से एक सौ तीन से नीचे नहीं उतर रहा था। फिर से रक्त-परीक्षा करने पर पता चला टायफायड था। इन दिनों बुखार की तेजी में कुछ ग्रंट-संट बक रही थी।

सात दिनों तक कपिल अपने कमरे से नहीं निकल पाया था। सीमा के कमरे में दिन में बहुत जने रहते और रात को नर्स रहती। हथौड़ी वह हाथ के पास ही रखता, बाहर से सांकल लगी हुई नहीं थी, अगर कोई उत्सुकतावश इस कमरे में आ जाय तो! सात दिन तक कपिल बाथरूम नहीं जा पाया। सारा कमरा दुर्गंध से भर गया था। नाली नहीं थी, सारी जमीन भीगी रहती, चलने-फिरने तक का कोई उपाय नहीं था। दरवाजे की दरार पर आँखें रक्खे इन कुछ दिनों वह सिर्फ देखता रहता था। एक के बाद एक कई दिन और रात चले गये थे और उसको लगता था कि जैसे वह टूट-टूट कर मिट्टी में परिणित होता जा रहा

हो। बीच-बीच में नींद आ जाती थी उसे, नींद टूटते ही हथौड़ी ढूँढ़ता, हाथ भ्रवश होते जा रहे थे, दुर्गन्ध तीव्र हो उठी थी, कभी-कभी तो तबियत करती कि उस हथौड़ी से अपना ही सिर फोड़ ले नहीं तो अपना हाथ ही चबा डाले। जिस डर से वह कमरे से नहीं निकल पाता था उसी डर से वह यह भी नहीं कर पाता था और नहीं कर पाने पर वह सोचता, मैं खत्म किस तरह होऊँगा। अमानुषिक मृत्यु के लिए किस तरह स्वयं को तैयार करूँगा? मेरी चेतना ही जो खत्म होती जा रही है।

रात की नर्स उस दिन नहीं आयी। उसके बदले विष्ट आकर कमरे में सो गया; गगन बाबू व शान्तिसेन को गये काफी देर हो गयी थी। कमरे की बत्ती आजकल बुझायी नहीं जाती थी।

कपिल प्रतीक्षा कर रहा था कि कब विष्ट सोये और उसे मौका मिले, लेकिन विष्ट को सारी रात जागने की ताकीद की गयी थी। कपिल ने सोचा, विष्ट जरूर सोयेगा। बीमार बूढ़ा आदमी कब तक जागेगा। कपिल प्रतीक्षा करने लगा। उसके बाद मौका देखकर उसने दरवाजा खोला।

कमरे से निकलते ही प्रचुर हवा, प्रकाश एवं सुगंध का अनुभव हुआ। नजर दौड़ायी। टेबिल पर कई कटोरियाँ प्लेट से ढकी रखी थीं। जरूर खाने की चीजें होंगी उनमें। सोये हुए विष्ट की बगल से करीब-करीब भागता हुआ आया वह। कटा हुआ सेब, बीदाने का रस, लपसी वगैरह। जैसे एक कामातुर वृद्ध अनिच्छुक किशोरी पर झपट पड़ा हो। कपिल ने कटोरी ऐसी कसकर पकड़ी कि हाथ से फिसलकर जमीन पर जा गिरी। विष्ट की तरफ घूम कर खड़े होते ही कपिल कांप उठा, विष्ट उसी की तरफ देख रहा था, आँखों में उसकी नींद भरी हुई थी। धीरे-धीरे उसकी नींद टूट रही है, सिर उठा लिया है उसने, हाथ-पांव सिकुड़ गये हैं उसके, अब वह चिल्लायेगा और सुनते ही लोग दौड़े आयेंगे।

भट से कपिल उस पर झपट पड़ा। बूढ़े आदमी ने बाधा देने की चेष्टा की। थर-थर की जरा उसने और फिर चुप हो गया। सीमा ने दीर्घश्वास छोड़ा।

कान लगाकर कपिल प्रतीक्षा करने लगा कि कटोरी गिरने की आवाज सुनकर कोई आता है कि नहीं। आया तो गगन ही आयेगा, ऊपर की तरफ देखा, चलने-फिरने की आवाज सुनाई नहीं दी।

विष्ट को इसी तरह छोड़ देने से सुबह हो-हुल्लड़ मच जायगा, पुलिस आयेगी। बाहर अगर सड़क पर डाल दे तो? अधीर होकर हाथ रगड़े कपिल ने, बीदाने के रस से चिप-चिप कर रहे थे। असम्भव है, तब भी पुलिस आयेगी। तो फिर एकमात्र उपाय है छुपा देना।

बगल के नीचे से दोनों हाथों में विष्ट को पकड़ कर कपिल खींचता हुआ छोटे कमरे में ले आया। दरवाजा बंद करके अँवरे में खड़ा विष्ट की तरफ देखता रहा। देखते-देखते कपिल को लगा वह बहुत ही क्लान्त हो गया है, उसे तुरन्त सो जाना चाहिये।

जगह नहीं के बराबर थी। विष्ट को एक तरफ ठेलकर जरा-सी जगह करके किसी तरह गीली जमीन में ही सो गया। असह्य दुर्गन्ध में भी उसे लगा विष्ट के शरीर में एक ताजी खुशबू है। शरीर में अभी भी गर्मी है। विष्ट बड़ा अच्छा आदमी था। उसने मुझे बचा लिया। अब मुझे पता लगा कि पहले के खून का कारण बिल्कुल गलत था। एक बीमारी ने इतने दिनों में मुझे खोखला कर दिया था। अब मैं बच जाऊँगा, जरूर बच जाऊँगा।

सुबह करीब आठ बजे नर्स आयी। विष्ट के बदले जिसने दरवाजा खोला उसे देखकर बहुत चकित हुई। तुरन्त ही नहा कर इस्त्री किये हुए कमीज-पैंट पहने, दाढ़ी बनाये आदमी ने अपना परिचय देते हुए कहा कि वह उसके पेशेंट का पति है।



